श्री अभय जैन ग्रन्थमाला पुष्प ३०

शासनप्रभावक आचार्य जिनप्रभ
और
उनका साहित्य

लेखक

महोपाध्याय विनयसागर

प्रकाशक

यपुर निवासी श्री छुट्टनलाल वैराठी एवं श्री राजरूप जी टांक
प्रदत्त आर्थिक सहायता से
श्री अगरचन्द नाहटा
सचालक, अभय जैन ग्रन्थमाला
नाहटों की गवाड़, बीकानेर

हावीर निर्वाण
व वर्ष (सं० २५०१)

मूल्य ५.००

पुस्तक मिलने का स्थान

१. श्री अभय जैन ग्रन्थालय
नाहटों की गवाड़
बीकानेर (राजस्थान)

२. नाहटा ब्रदर्स,
४. जगमोहन मल्लिक लेन
कलकत्ता-७.

३. जौहरी श्री राजरूप जी टांक
जौहरी बाजार, टांक भवन,
जयपुर-३ (राजस्थान)

४. श्री छुट्टनलाल जी बैराठी
जौहरी बाजार
जयपुर-३. (राजस्थान)

महावीर निर्वाण सं० २५०१
विक्रम सं० २०३२

ईस्वी सन् १९७५

मुद्रक
महावीर प्रेस,
भेलूपुर, वाराणसी।

शासन प्रभावक श्री जिनप्रभ सूरि मूर्ति
(शत्रुंजय महातीर्थ खरतर वसही)

प्रकाशकीय

जैन-शासन को प्रभावना करने वाले महान् आचार्यों ने समय-समय पर शासन की रक्षा, प्रभावना और जैन-धर्म का प्रचार करके शासन का गौरव बढ़ाया है। भगवान् महावीर का शासन ढाई हजार वर्षों तक अविच्छिन्न रूप से सुचारु रूप में जो चला आ रहा है, यह उन्हीं आचार्यों की महान् देन है। जैन-धर्म में उन शासन-प्रभावक आचार्यों की बड़ी भक्ति-भाव से प्रशंसा और पूजा की जाती रही है, उनमें खरतर-गच्छ के महान् आचार्यों का विशिष्ट एवं उल्लेखनीय स्थान है। खरतर-गच्छ के आचार्यों में युगप्रधान श्री जिनदत्तसूरि जी, उनके शिष्य मणिधारी जिनचंद्रसूरि जी और उनकी परम्परा में प्रगट-प्रभावी श्री जिनकुशलसूरिजी और सम्राट् अकबर प्रदत्त युगप्रधान पद-धारक श्री जिनचन्द्रसूरि जी—ये चार तो दादा साहब के नाम से प्रसिद्ध और पूज्यमान हैं। उनकी प्रतिमाएँ, चरण दादावाड़ियों और जिनालयों में सैकड़ों हजारों की संख्या में भारत के कोने-कोने में विद्यमान-पूज्यमान हैं। उनकी जीवनी और स्तवना सम्बन्धी सैकड़ों रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। उससे भी अधिक अप्रकाशित स्तवनादि साहित्य ज्ञान-भंडारों में पड़ा है। इन चारों दादा गुरुओं के जीवन-चरित्र हम बहुत वर्ष पूर्व प्रकाशित कर चुके हैं और उनके संस्कृत व गुजराती अनुवाद भी छप चुके हैं, कुछ छपने वाले हैं।

युगप्रधान चारों दादा साहब की ही भाँति खरतर-गच्छ में एक पाँचवें दादाजी महान् शासन-प्रभावक और हो चुके हैं जिनके सम्बन्ध में जनसाधारण को बहुत ही कम जानकारी है। कई वर्ष पूर्व पं० लालचंद भगवान गांधी के लिखित "जिनप्रभसूरि अने सुलतान मुहम्मद" नामक गुजराती भाषा व देवनागरी लिपि में ग्रन्थ प्रकाशित हुआ था, उसके बाद हमने विधिमार्ग-प्रपा के प्रारम्भ में श्रीजिनप्रभकी जीवनी संक्षेप में प्रकाशित की थी। आव-

श्यकता थी ऐसे महान् विद्वान् और शासन-प्रभावक आचार्य के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर स्वतंत्र ग्रन्थ प्रकाशन की। महोपाध्याय विनयसागरजी के प्रस्तुत ग्रन्थ द्वारा उस आवश्यकता की पूर्ति बहुत अच्छे रूप में हो रही है। हमारी प्रेरणा व सहयोग से उन्होंने यह ग्रंथ कई वर्ष पूर्व तैयार कर दिया था पर अभी तक प्रकाशन-सुयोग नहीं मिल सका था।

जयपुर के श्रीमालवंश-विभूषण [illegible] सेठी एवं श्री राजरूपजी टांक ने प्रकाशन के लिए आर्थिक सहयोग देकर हमें प्रकाशन का सुअवसर दिया अतः हम उनके आभारी हैं। भ० महावीर के २५०० वें निर्वाण महोत्सव के मंगलमय प्रसंग में उन्हीं के शासन के एक महान् आचार्य का जीवन-चरित्र प्रकाशित करते हुए हमें अपार हर्ष हो रहा है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में श्री विनयसागर जी ने प्राप्त समस्त साधनों और सूरि जी द्वारा रचित साहित्य का भली-भाँति उपयोग करते हुए उनके अप्रकाशित स्तोत्रों के साथ पुस्तक तैयार करके गच्छ और गुरुभक्ति का जो आदर्श उपस्थित किया है, उसके लिए हम उनके सविशेष आभारी हैं। इस ग्रन्थ में जिनप्रभसूरि जी के समस्त स्तोत्रों को प्रकाशित करने के लिए प्रेसकापी तैयार की गई थी, पर ऐसा करने पर व्यय व समय अधिक लगता इसलिए प्रकाशित स्तोत्रों की केवल सूची देकर सन्तोष करना पड़ा है और अप्रकाशित स्तोत्र ही प्रस्तुत ग्रन्थ में दिए जा सके हैं।

श्रीमालवंश-विभूषण श्री जिनप्रभसूरिजी चौदहवीं शताब्दी के महान् विद्वान् और तत्कालीन सम्राट् मुहम्मद तुगलक को जैन-धर्म का बोध देकर जैन-शासन का गौरव बढ़ाने वाले महापुरुष हो गए हैं। उनके सम्राट् से मिलने और विशिष्ट सम्मान प्राप्त करने के विवरण उल्लेख तत्कालीन प्रामाणिक ग्रन्थों में पाये जाते हैं। सूरिजी के विविध-तीर्थकल्प नामक ग्रन्थ के कन्यानयनीय महावीर-तीर्थकल्प और कल्पपरिशेष में उन घटनाओं का समावेश होने के कारण उसकी प्रामाणिकता एवं महत्त्व विशिष्ट है। उनके

सम्बन्ध में रचित समकालीन गीतों को हमने बहुत वर्ष पूर्व उन्ही की परम्परा की प्राचीन संग्रह-प्रति से लेकर अपने सम्पादित 'ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में प्रकाशित कर दिये थे। इसके बाद समकालीन परवर्ती खरतर-गच्छीय सामग्री के अतिरिक्त सूरिजी के सम्बन्ध में तपागच्छीय दो विद्वानों ने चामत्कारिक प्रवादों का अपने ग्रन्थों में संग्रह किया है, वह भी बहुत ही उल्लेखनीय एवं महत्त्वपूर्ण है।

आचार्यश्री के कई ग्रन्थ तो भारतीय व जैन-साहित्य की अमूल्य निधि हैं। उनमें से विविध-तीर्थकल्प तो अपने ढंग का एक ही ग्रन्थ है जिसमें उस समय के प्रसिद्ध जैन-तीर्थों सम्बन्धी पौराणिक और ऐति-हासिक जानकारी प्राकृत और संस्कृत, गद्य एवं पद्य उभय रूप में दी गई है। इसी तरह 'विधिप्रपा' में जैन विधि-विधानों सम्बन्धी जितनी अच्छी जानकारी प्राप्त होती है वैसी अन्य ग्रन्थों में उस रूप में किसी एक ही ग्रन्थ में अन्यत्र दुर्लभ है। ये दोनों ग्रन्थ सुसम्पादित रूप में प्रकाशित हैं। श्रेणिक द्वयाश्रय महाकाव्य आदि भी आपकी विशिष्ट रचनाएँ हैं। उक्त द्वाश्रय बहुत वर्षों पहले गुजराती अनुवाद सहित अपूर्ण ही छपा इसका सुसम्पादित पूर्ण संस्करण सानुवाद और साहित्यिक अध्ययन सहित प्रकाशित किया जाना अपेक्षित है।

स्तोत्रों के क्षेत्र में तो जिनप्रभसूरिजी का सर्वोच्च स्थान है। विविध प्रकार के इतने अधिक व उच्चस्तर के स्तोत्र आपके ही प्राप्त हैं। खेद है कि ७०० स्तोत्रों में से अब केवल १०० के भीतर ही आपके रचित स्तोत्र उपलब्ध है। आपकी अप्रकाशित रचनाएँ अभी भी बहुत-सी मिलनी चाहिए पर खरतर-गच्छ की जिस लघु आचार्य-शाखीय श्रीजिन-सिंहसूरि जी के आप पट्टधर थे, उस शाखा का अस्तित्व न रहने से रचनाएँ सुरक्षित नहीं रह सकीं।

महान् श्वेताम्बर तीर्थ शत्रुञ्जय की खरतर-वसही में आपकी एक प्रतिमा स्थापित है जिसका ब्लाक प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रकाशित किया जा रहा है।

आपकी परम्परा की एक विशिष्ट संग्रह-प्रति बीकानेर के वृहद्-ज्ञान भंडार में हमें प्राप्त हुई और एक उल्लेखनीय विशिष्ट संग्रह गुटका हमारे अभय जैन ग्रन्थालय के कला-भवन में प्रदर्शित है। आपकी परम्परा में कई आचार्य और मुनिगण अच्छे विद्वान् हुए हैं जिनका कुछ परिचय प्रस्तुत ग्रन्थ में दिया गया है। अठारहवीं शताब्दी तक तो आप की परम्परा चलती रही पर आचार्य-परम्परा १७ वीं शती में समाप्त हो गई थी। महान् टीकाकार चारित्रवर्द्धन आपकी परम्परा के उल्लेखनीय विद्वान् हैं।

परिशिष्ट में जिनप्रभसूरि गुण-वर्णन एवं छप्पय त्रय दिये गये हैं। वैसे पट्टावलियों आदि में और भी कई उल्लेख और पद्य पाये जाते हैं। प्राप्त सामग्री से यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि सारे जैन-शासन में आप जैसे आचार्य विरले ही हुए हैं। ऐसी महान् विभूति के सम्बन्ध में यह ग्रन्थ प्रकाशित करते हुए हमें असीम हर्ष का अनुभव होना स्वाभाविक है। इससे भारतीय इतिहास का एक नया पृष्ठ खुलेगा। ऐसे महान् आचार्य का हमारे ऐतिहासिक एवं साहित्यिक ग्रन्थों में उल्लेख होना ही चाहिए।

—अगरचन्द नाहटा

●

दो शब्द

विद्वच्छिरोमणि महाप्रभाविक आचार्य श्रीजिनप्रभसूरिजी रचित अनेक विधाओं, अनेक भाषाओं एवं यमक-श्लेष परिपूर्ण स्तोत्र-साहित्य की ओर मैं बचपन से ही आकृष्ट रहा। वर्षों पूर्व मेरी अभिलाषा थी कि आचार्य-श्री के प्राप्त समग्र स्तोत्रों का संकलन प्रकाशित हो तो भक्तजन एवं विद्वद्गण अधिक लाभ ले सकेंगे। इसी अन्तःप्रेरणा से प्रेरित होकर मैंने सन् १९६० तक प्राप्त समग्र स्तोत्रों का संकलन करना प्रारम्भ किया था। विजयधर्म-लक्ष्मी-ज्ञान मन्दिर आगरा के संग्रहस्थ स्वाध्याय पुस्तिका के ४ स्तोत्रों को छोड़कर, प्रकाशित एवं अप्रकाशित समग्र स्तोत्रों की मैंने पाण्डु-लिपि तैयार कर ली और उक्त संग्रह के परिचय-स्वरूप भूमिका भी ३१ जनवरी १९६१ को लिखकर पूर्ण कर दी थी। संयोगवश आज तक यह संग्रह प्रकाशित न हो सका। किन्तु मुझे प्रसन्नता है कि केवल वही 'भूमिका' आज बारह वर्ष पश्चात् पुस्तक के रूप में प्रकाशित हो रही है।

आचार्यश्री के जीवन-चरित्र आलेखन में मैंने मुख्यतः 'वृद्धाचार्य प्रबन्धावली', उपाध्याय जयचन्द्र गणि भण्डारस्य 'पट्टावली', विजयधर्मलक्ष्मी ज्ञानभण्डारस्य १ पत्रात्मक अपूर्ण 'पट्टावली', श्री सोमधर्म गणि रचित 'उपदेशसप्ततिका', श्री शुभशील गणि रचित 'पंचशती कथा-प्रबन्ध', पं० लालचन्द भगवान् गाधी लिखित 'श्रीजिनप्रभसूरि अने सुलतान मुहम्मद' पुस्तक, श्री अगरचन्द्र जी भंवरलाल जी नाहटा लिखित 'शासन प्रभावक श्रीजिनप्रभसूरि' नामक लेख एवं स्वयं जिनप्रभसूरि रचित 'कन्यानयन-तीर्थकल्प' आदि अन्तःसाक्ष्य ग्रन्थों का उपयोग किया है।

आचार्यश्री की चामत्कारिक घटनाओं का उल्लेख १६ वीं शताब्दी में तपागच्छीय सोमधर्म गणि एवं शुभशील गणि ने किया है। वर्तमान समय में भी पुरातत्त्वज्ञ डॉ. जी. ब्यूह्लर ने 'विविधतीर्थकल्प' गत

'मथुराकल्प' पर स्वतन्त्र निबन्ध लिखा, तब से ही जैन-विद्वानों का ध्यान इस ओर गया। खरतरगच्छीय स्व० श्रीजिनहरिसागरसूरिजी, उपाध्यायश्री सुखसागरजी म. के प्रयत्नों से और पुरातत्त्वाचार्य मुनि जिनविजयजी के सम्पादित ग्रन्थों, पं० लालचन्द भ. गांधी, श्री अगरचन्दजी नाहटा के लिखित जीवन-चरित्र एवं लेखों तथा स्व० चतुरविजयजी आदि विद्वानों द्वारा सम्पादित कतिपय स्तोत्र-संग्रहों में प्रकाशित स्तोत्रों से आचार्य जिनप्रभ के व्यक्तित्व और कृतित्व की कुछ झलक विद्वानों के सम्मुख आई। किन्तु आज भी जिनप्रभसूरि का अधिकांश साहित्य अप्रकाशित ही है। अतः विद्वानों और साहित्य-प्रकाशिनी संस्थाओं से मेरा अनुरोध है कि जिनप्रभसूरि रचित न केवल स्तोत्र-साहित्य ही अपितु श्रेणिकचरित (द्वयाश्रयकाव्य), कल्पसूत्र-संदेहविषौषधि टीका, अनेकार्थसंग्रह टीका एवं विदग्धमुखमण्डन टीका आदि ग्रन्थों का सुसम्पादित संस्करण अवश्य प्रकाशित करें, जिससे आचार्यश्री के कृतित्व का विद्वज्जगत् पूर्णरूपेण मूल्यांकन कर सके।

जिनप्रभसूरि उल्लिखित कविदर्पण—

श्री जिनप्रभसूरि ने वि० सं० १३६५ में 'अजितशान्तिस्तव' पर टीका की रचना की है। टीका की प्रान्तपुष्पिका में लिखा है—इस स्तोत्र में छन्दों के लक्षण मैंने प्रायः करके 'कविदर्पण' के आधार से स्व-परोपकार हेतु प्रदान किये हैं। अतः मैं 'कविदर्पण' का 'उपजीव्य' हूँ।

> कविदर्पणमुपजीव्य प्रायेण च्छन्दसामिह स्तोत्रे।
> स्वपरोपकारहेतोरभिदधिरे लक्षणानि मया॥

'उपजीव्य' शब्द पर विचार करने से पूर्व कविदर्पणकार एवं उसके रचनाकाल के सम्बन्ध में विचार करना अपेक्षित है।

कविदर्पण टीका के साथ प्रोफेसर हरि दामोदर (एच० डी०) वेलणकर, सह-संचालक भारतीय विद्या भवन, बम्बई द्वारा सुसम्पादित होकर, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान जोधपुर से सन् १९६२ में प्रकाशित हो

चुका है। उसकी प्रस्तावना में पृष्ठ ४ पर सम्पादक ने लिखा है कि कविदर्पण का प्रणेता कोई खरतरगच्छीय विद्वान् ही है।

कविदर्पण की टीका में टीकाकार ने छन्द-लक्षणों के उदाहरणों में कई उदाहरण ऐसे दिये हैं जिनमें धर्मसूरि (पृ० २१), समुद्रसूरि (पृ० २८), तिलकसूरि (पृ० ४६), यशोघोपसूरि (पृ० ३७), सूरप्रभसूरि (पृ० ४६), लक्ष्मीसूरि (पृ० ३९), आदि जैनाचार्यों के स्तुति एवं प्रशंसापरक पद्य हैं, ता कतिपय उदाहरण पादलिप्तसूरि (पृ० ८), हेमसूरि (पृ० ४३), जिनसिंहसूरि (पृ० २४), सूरप्रभसूरि (पृ० ४४), तिलकसूरि (पृ० ३४) आदि आचार्यों द्वारा प्रणीत हैं।

पूर्वोक्त आचार्यों में से सूरप्रभसूरि, तिलकसूरि और जिनसिंहसूरि खरतरगच्छ के आचार्य एवं श्रेष्ठ विद्वानों में से हैं। इन तीनों आचार्यों का समय वि० सं० १२५० से १३४० के मध्य का है। जिनसिंहसूरि तो अजितशान्तिस्तव टीका के टीकाकार जिनप्रभसूरि के गुरु ही हैं। अतः यह तो निःसंदेह कहा जा सकता है कि यह कृति किसी खरतरगच्छीय जैनाचार्य द्वारा ही प्रणीत है।

कविदर्पण की टीका में पृ० ८ पर 'शूर (सूर) परिभापेयं पूज्यप्रयुक्ता' वाक्य प्राप्त होता है। 'सूर की यह परिभाषा पूज्य द्वारा प्रयुक्त है' इस वाक्य से सूरप्रभाचार्य के लिये कल्पना की जा सकती है कि इन्होंने भी छन्दःशास्त्र का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ बनाया था, जो उस समय उपलब्ध था।

टीका में पृ० ३३, ३५, ३६, ३७ पर 'छन्दःकन्दली' नामक छन्दोग्रन्थ के उदाहरण भी कतिपय स्थलों पर प्राप्त हैं। उदाहरणों की भाषा देखते हुये छन्दःकन्दलीकार भी जैन-विद्वान् ही प्रतीत होते हैं।

जिनसिंहसूरि के गुरुभ्राता श्री जिनप्रबोधसूरि रचित 'वृत्तप्रबोध' (उल्लेख-युगप्रधानाचार्य गुर्वावली पृ० ५७) नामक छन्दोग्रन्थ का इसमें कहीं भी उल्लेख न होने से अधिक सम्भावना यही है कि इस ग्रन्थ का प्रणेता लघु खरतरशाखीय जिनसिंहसूरि का सहाध्यायी या शिष्य हो! किन्तु जब तक कोई पुष्ट प्रमाण प्राप्त न हो जाय तब तक कर्त्ता के सम्बन्ध

में निश्चित रूप से निर्णय नहीं किया जा सकता, केवल अनुमान ही किया जा सकता है।

कविदर्पण का सर्वप्रथम उल्लेख वि० सं० १३६५ में जिनप्रभसूरि ने किया है। अतः यह निश्चत है कि कविदर्पण की रचना वि० सं० १३६५ के पूर्व हो चुकी थी। खरतरगच्छीय पट्टावलियों के अनुसार जिनसिंहसूरि वि० सं० १२८० में आचार्य बने थे। अतः पृष्ठ २४ पर प्राप्त 'जिनसिंहसूरि कृत 'चूडालदोहक' से स्पष्ट है कि वि० सं० १२८० के पश्चात् ही इसका निर्माण हुआ है। इसलिये कविदर्पण का रचना समय १२८० से १३६५ के मध्य में माना जा सकता है।

जिनप्रभसूरि ने अजितशान्तिस्तव के छन्दों के लक्षण-निर्धारण में ८, ३२, ३३ वीं गाथाओं के लक्षण हेमचन्द्रसूरि कृत 'छन्दोनुशासन', गाथा २४, २५ के लक्षण केदारभट्ट कृत 'वृत्तरत्नाकर', गाथा ३ री सिलोगो (श्लोक) का लक्षण 'नन्दिताढ्य छन्दःग्रन्थ' और गाथा तथा मागधिका छन्द के लक्षण 'कविदर्पण' के आधार से दिये हैं। शेष समस्त छन्दों के लक्षण किस छन्दोग्रन्थ के आधार से दिये हैं, उल्लेख न होने से स्पष्ट नहीं है। किन्तु 'कविदर्पणमुपजीव्य प्रायेण च्छन्दसामिह स्तोत्रे' पंक्ति से स्पष्ट ध्वनित है कि प्रायः करके समस्त छन्दों के लक्षण कविदर्पण के ही प्रदान किये हैं। यदि केवल दो छन्दों के लक्षण मात्र कविदर्पण के देने अभीष्ट होते तो 'उपजीव्य' और 'प्रायेण' शब्दों का प्रयोग कदापि सम्भव नहीं था। ऐसी अवस्था में प्रायः समस्त छन्दों के लक्षण कविदर्पण के ही स्वीकार करने होंगे।

अजितशान्तिस्तव टीका में, प्राकृत भाषा में उद्धृत छन्दों के लक्षण कविदर्पण के मुद्रित संस्करण में प्राप्त नहीं हैं। अतः निश्चित है कि सम्पादक महोदय को प्राप्त आदर्श प्रति पूर्णरूपेण खण्डित एवं अपूर्ण ही थी। अतः शोध-विद्वानों का कर्त्तव्य है कि इसकी पूर्ण प्रति की शोध करें एवं उसके प्राप्त होने पर उसे प्रकाश में लाने का प्रयत्न करें।

रहस्यकल्पद्रुम

इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में प्रस्तुत पुस्तक के पृष्ठ ११८ पर मैंने लिखा है कि—"रहस्य कल्पद्रुम नामक ग्रन्थ में जैन समाज में प्रचलित अनेक मन्त्रों के इष्ट प्रयोगों का अनुकथन है। पूर्ण ग्रन्थ प्राप्त न होकर कुछ प्रयोग मात्र ही प्राप्त हैं।"

श्रीजैनप्रभसूरि के स्वर्गवास के ५-७ वर्ष पश्चात् ही रुद्रपल्ली गच्छीय श्री सोमतिलकसूरि ने सं० १३९७ में रचित त्रिपुराभारती लघुस्तव पद्य ६ की टीका में इस ग्रन्थ का उल्लेख करते हुए निम्न अंश उद्धृत किया है।

"यदाहुः श्रीजिनपदसूरिपादा रहस्ये—पुंसो वश्यार्थं शिवाक्रान्तं शक्तिबीजं रक्तध्यानेन। स्त्रियास्तु वश्यार्थं शक्त्याक्रान्तं शिवबीजं ध्यायेदिति।"

ग्यारह पत्रात्मक इस ग्रन्थ का केवल अन्तिम ग्यारहवां पत्र श्रीनाहटा जी को प्राप्त हुआ है। ग्यारहवें पत्र की लेखन प्रशस्ति के अनुसार यह प्रति वि० सं० १५४६ श्रावण शुक्ला १३ गुरुवार के दिन मण्डपदुर्ग (मांडवगढ़) में खरतरगच्छीय श्रीजिनप्रभसूरि, श्री जिनचन्द्र सूरि के पट्टधर श्रीजिनसमुद्रसूरि के धर्मसाम्राज्य में महोपाध्याय श्री तपोरत्न के शिष्य वाचनाचार्य श्री साधुराज गणि के आदेश से और भक्तिवल्लभ गणि के सानिध्य में शिष्यलेश ···· ने लिखा था।

इस प्राप्त पत्र में महात्मातंगिनी, रक्तचामुण्डा, प्रत्यंगिरा देवी के उच्चाटन, आकर्षण, कार्मण सम्बन्धी मन्त्र प्राप्त हैं और अन्त में औषध के प्रयोग भी हैं। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि मान्त्रिक रहस्यों के साथ-साथ औषध के अनुभूत प्रयोग भी इस ग्रन्थ में सम्मिलित हैं। भंडारों में इस ग्रन्थ के खोज की आवश्यकता है। पूर्ण ग्रन्थ प्राप्त होने पर मान्त्रिक रहस्यों व अनुभूत प्रयोगों पर विशेष प्रकाश पड़ सकता है।

आभार

प्रसिद्ध साहित्यसेवी विद्वान् श्री अगरचन्दजी नाहटा की सतत प्रेरणा और सामग्री संकलन में पूर्ण सहयोग मुझे सदैव ही प्राप्त होता रहा है। अतः श्री नाहटाजी का मैं अत्यन्त ही आभारी हूँ।

प्रस्तुत पुस्तक में प्रूफ-संशोधन में असावधानी अधिक रहने से अशुद्धि-बाहुल्य रहा है, जिसका मुख्य कारण प्रकाशक महोदय का प्रेस वालों पर आधारित रहना ही प्रतीत होता है। अतः पाठकों के प्रति मैं क्षमाप्रार्थी हूँ।

३३ A, न्यू कॉलोनी गुमानपुरा,
कोटा
दिनाङ्क २२–१०–१९७३

म० विनयसागर

विषयानुक्रम

पृष्ठाङ्क

शासन-प्रभावक आचार्य जिनप्रभ
और
उनका—साहित्य

कोई भी शासन हो, चाहे दर्शन हो या समाज, संघ या परंपरा हो वह तव ही स्थायी, दीर्घजीवी और प्रभावशाली हो सकता है जब कि उस शासन-दर्शन-समाज-संघ-परंपरा में समय-समय पर प्रतिभाशाली साहित्यकार, वक्तृत्वकलाधारी उपदेशक (प्रावचनिक), सिद्धिधारक चमत्कारी, अत्युग्रतपस्वी और सिद्धान्तज्ञ और वादी हों, अन्यथा वर्षा के अभाव में जैसे नदियाँ शुष्क और क्षीण हो जाती हैं वैसे शासन आदि का स्रोत निर्बल होता हुआ समाप्तप्राय हो जाता है। क्योंकि व्यक्ति अपने स्व-अर्थ (भौतिक और आध्यात्मिक) साधन में संलग्न रहता है, और प्रतिभा-युक्त व्यक्तित्वधारी स्व-अर्थ साधन के साथ समाज के उत्कर्ष में लीन रहता है। यही कारण है कि जैन ग्रन्थों में ऐसे व्यक्तित्वधारियों को 'प्रभावक' शब्द से संबोधित किया है और प्रभावक आठ प्रकार के बतलाये गए हैं :—

पावयणी धम्मकही वाई नैमित्तिओ तवस्सी य।
विज्जा-सिद्धा य कवी अट्ठे य प्रभावगा भणिया॥

[[1]प्रावचनिक, [2]धर्मकथाप्ररूपक, [3]वादी, [4]नैमित्तिक, [5]तपस्वी, [6]विद्याधारक, [7]सिद्धिधारक और [8]कवि—ये आठ प्रकार के प्रभावक होते हैं।]

ऐसे प्रभावक अपने चमत्कारों से रंक से लेकर राजा-महाराजाओं को अपने शासन के प्रेमी वनाते हैं, तो दर्शन और साहित्य द्वारा समस्त दार्शनिकों और साहित्यकारों को अपना अनुगत और स्वदर्शन तथा साहित्य के रसिक बनाते हैं।

जैन शासन-परंपरा में आचार्य सिद्धसेन दिवाकर (दार्शनिक और चमत्कारी), जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण, आचार्य हरिभद्रसूरि, आचार्य समन्त भद्र, आचार्य अकलंक जैसे दार्शनिक, आचार्य जिनेश्वरसूरि, श्रीबुद्धिसागरसूरि, आचार्य अभयदेव, आचार्य हेमचन्द्र जैसे असाधारण साहित्यकार, युगप्रधान जिनदत्तसूरि जैसे चमत्कारी और आचार्य जिनेश्वर तथा जिनपतिसूरि जैसे वादी अनेकों प्रभावक हुए हैं। ऐसे ही प्रभावक पुरुषों में आचार्य जिनप्रभसूरि एक विशिष्ट प्रभावक हुए हैं।

आचार्य जिनप्रभ ने न केवल असीम साहित्य रचनाकर अपना नाम उपार्जित किया अपितु तुगलक बादशाह को भी अपने चमत्कारों से अनुरंजित कर, अनेक तीर्थों की रक्षा कर जैन शासन के 'यश' को चतुर्मुखी विस्तृत किया है। हालां कि वर्तमान वैज्ञानिक युग में इन चमत्कारों-प्रदर्शनों का कोई स्थान नहीं है, किन्तु इनका विशाल साहित्य आज के ऐतिहासिक युग में भी 'ज्योति' प्रकाश का कार्य कर रहा है। अतः ऐसे समाज के साहित्य से जैन समाज का परिचित होना अत्यावश्यक है।

मुहम्मद-तुगलककालीन भारत

आचार्य जिनप्रभसूरि के समय में दिल्ली में तुगलक वंश के सुल्तान मुहम्मदशाह का शासन था जिसका पूरा नाम मुसलमानी तवारीखकारों ने सुल्तान मुहम्मदशाह इब्ने तुगलुकशाह उल्लिखित किया है। जैन साहित्य तथा स्वयं जिनप्रभसूरि के ग्रन्थों के अन्तः साक्ष्य से प्रमाणित होता है कि जिनप्रभ कुछ वर्षों तक योगिनीपुर (दिल्ली) में रहे थे और सुल्तान मुहम्मदशाह पर भी उनका पर्याप्त प्रभाव था। सुल्तान मुहम्मद तुगलक भारतीय इतिहास में अपने जल्दबाजी व अदूरदर्शितापूर्ण कार्यों के लिए विख्यात है। तो भी सभी इतिहासकार असंदिग्ध रूप से स्वीकार करते हैं कि वह मध्यकाल के भारतीय शासकों में विद्वत्ता में सबसे बढ़ा-चढ़ा था। वह हिन्दी व फारसी में काव्य-रचना करता था। हिन्दी में उसने अपना उपनाम जोन्हा (ज्योत्स्ना) रक्खा था। दर्शनशास्त्र में भी उसकी अभि-

रुचि थी। स्वयं विद्वान् होने के साथ-साथ वह विद्वानों का समादर भी करता था।

मुहम्मद तुगलक के समय की सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा आर्थिक स्थिति समझने के लिए हमें तत्कालीन मुसलमान इतिहासकारों के ग्रंथों से बड़ी सहायता मिलती है, परंतु कुछ ऐसे कारण हैं कि हम सम्पूर्णतः उन्ही को आधार नहीं बना सकते। जियाउद्दीन बरनी मुहम्मद तुगलक का समकालीन प्रसिद्ध इतिहासकार है। एसामी, बद्रेचाच, अमीरखुर्द, शिहाबुद्दीन अल उमरी, यहया बिन अहमद सहरिन्दी, अब्दुल कादिर बदायूनी, मुहम्मद कासिम हिन्दूशाह 'फिरिश्ता' आदि इतिहास व साहित्यकारों के ग्रन्थों से भी तुगलककाल के विषय में यथेष्ट सामग्री प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त सबसे अधिक प्रामाणिक सामग्री इब्नबतूता नामक प्रसिद्ध अफ्रीकी यात्री के यात्रा-वर्णन से मिलती है। इन सभी प्रमाणों के आधार पर हम तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक स्थिति का मूल्यांकन तटस्थ दृष्टि से इस प्रकार कर सकते हैं।

राजनीतिक स्थिति

भारत में राष्ट्रीयता को भिन्नतः समझा गया था। यहाँ वैयक्तिक भेदों से ऊपर उठकर विश्वबन्धुत्व की ओर होनेवाले मानसिक विकास के मार्ग के एक स्थितिस्थान (Station) को राष्ट्रीयता माना गया है। जब तक भारतीयों की इस मान्यता पर आघात न होता, तब तक वे बाहर से आनेवाली जातियों से भी युद्ध को तैयार नहीं होते थे। पूर्व-मध्यकाल में अनेक जातियाँ मध्य एशिया से आकर भारत में बस गईं। उनके बड़े-बड़े साम्राज्य भी भारत में स्थापित हुए और मिट गये। सच्चे भारतीय की तरह ही उन्होंने भी भारतीय धर्म और दर्शन की रक्षा के लिए प्रयत्न किए। ७ वीं शती के अन्त होते ही अरबों के आक्रमण सिन्ध पर होने लगे। राष्ट्रीय स्तर पर इसका तीव्र विरोध नहीं हुआ। भारतीयों को वैदान्तिक एकेश्वरवाद और इस्लाम के एकेश्वरवाद में कोई भेद

दृष्टिगत नहीं हुआ। यही कारण है कि लगभग ४ शताब्दियों तक भारत के इस्लाममत का प्रचार करने मुस्लिम सन्त आते रहे। भारतीयों ने उनका आदर किया और उनके उपदेशों का श्रवण करते रहे, किन्तु १२ वीं शताब्दी में उत्तर-पश्चिमी सीमान्त से उत्तरी भारत पर भिन्न प्रकार के आक्रमण प्रारंभ हुए, जिन्हें बड़े पैमाने पर सशस्त्र डकैती कहा जा सकता है। आक्रमणकारी महमूद गजनवी और मुहम्मद गोरी यद्यपि मुसलमान थे, परन्तु उनके आक्रमणों का इस्लाम से कोई सम्बन्ध न था। गजनवी तो केवल धन लूटने ही अनेक बार भारत आया था। गोरी ने धन के साथ साम्राज्य स्थापना की ओर भी ध्यान दिया और यों, उत्तरी भारत में मुसलमानी-साम्राज्य स्थापित हुआ।

गोरी की मृत्यु के बाद भारत में गुलामवंशी व खिलजीवंशी शासकों ने राज्य किया। अलाउद्दीन खिल्जी ने तो लगभग सारे भारत को जीत लिया। इन सभी शासकों ने इस्लाम के नाम पर स्वार्थी मुसलमानों को अपने वश में करके तलवार के बल पर शासन किया। बहुसंख्यक प्रजा के ऊपर अत्याचार किए गए, धनिकों का धन व स्त्रियों का यौवन लूटा गया। सत्ता क्रूरता का पर्याय बन गई। जो जितना सशक्त सुल्तान होता वह उतना ही प्रजा को आतंकित किया करता। अधिकतर सत्ताधारी विलासिता का जीवन बिताते और विलासिता में ही किसी सामन्त की तलवार के शिकार हो जाते थे। इस प्रकार की राजनीति भारत के लिए नई थी। भारतीयों के मन में इन शासकों से अधिक उनके धर्म से घृणा हो गई थी, क्योंकि उन पर सभी अत्याचार धर्म के नाम पर किए जाते थे। इस्लाम के प्रति इस घृणा ने इस आगन्तुक जाति को सदैव विदेशी बनाए रखा; किन्तु तथ्य की बात तो यह है कि इस्लाम का शासकों की क्रूरता के साथ स्वार्थ के अतिरिक्त कोई सम्बन्ध न था।

सन् १३२० ई० में गयासुद्दीन तुगलक ने खिल्जीवंश समाप्त करके तुगलक वंश की नींव डाली। इसके चार वर्ष बाद ही मुहम्मद तुगलक

शासक बना जिसने १३५३ ई० तक राज्य किया। इसके राज्य की सीमाएँ सुदूर दक्षिण तक विस्तृत थीं। वह विद्वान् होने से अन्य मुसलमान सुल्तानों से कहीं अधिक उदार था। मुसलमान इतिहासकारों ने उसकी दानशीलता व क्रूरता का समान रूप से उल्लेख किया है, किन्तु मुसलमानी सल्तनत के लब्धप्रतिष्ठित विचारशील-स्तम्भ की उन उपलब्धियों का उल्लेख नहीं किया; जिनको उसने बहुसंख्यक हिन्दू प्रजाजनों के लिए प्रयुक्त किया होगा। हाँ, अन्य धर्मों के प्रति उसके द्वारा प्रदर्शित उदार दृष्टिकोण की उन्होंने जीभरकर निन्दा तक की है। इसीलिए ऐतिहासिक तिथिक्रम की दृष्टि से प्रमाणित तत्कालीन इतिहास भी राष्ट्रीय तत्त्वों की दृष्टि से अप्रामाणिक है।

मुहम्मद तुगलक के समय कई प्रान्तों में विद्रोह हुए। मुहम्मद के जीवन का अधिक समय युद्धों में ही व्यतीत हुआ। मुसलमान इतिहासकारों के उल्लेखों से प्रमाणित होता है कि मुहम्मद तुगलक के समय सभी विद्रोह उसके मुसलमान सामन्तों ने किए थे। ऐसा ज्ञात होता है कि सुल्तान की हिन्दुओं के प्रति उदारनीति ने कदाचित् उन्हें विद्रोह के लिए प्रेरित किया होगा। सुल्तान मुहम्मद ने दूर देशों के अरबी, ईराकी आदि विद्वानों को बुलाकर ऊँची पदवियों पर नियुक्त किया था। इसका कारण भी कदाचित् अपने सामन्तों पर अविश्वास ही रहा होगा। उसने कई विद्रोहियों व विद्रोह के प्रेरक धार्मिक नेताओं को मौत के घाट उतार दिया था। इतिहासकारों ने उसकी इस क्रूरता की बड़ी निन्दा की है और साथ ही उसके हिन्दू सलाहकारों पर सारा दोषारोपण किया है। परन्तु सत्य बात तो यह है कि वे १५० से अधिक वर्षों तक धर्म के नाम पर अत्याचार करने के आदी हो चुके थे और कदाचित् मुहम्मद की उदार नीति की इसीलिए प्रशंसा करने में समर्थ न थे। दूसरी ओर सुल्तान स्वयं विगत काल में की गई सुल्तानों की हत्या से सचेत रहा करता था, और शायद इसीलिए उसने विद्रोहियों का क्रूरतापूर्वक वध कराया हो। कुछ भी हो, मुहम्मद तुगलक के शासनकाल में साम्राज्य पर्याप्त विस्तृत

हो गया था फिर भी राजनीतिक अवस्था असन्तुलित होने से विद्रोह हुए और विद्रोहियों से युद्ध करते रहने के कारण उसकी मानसिक उदारता के प्रतिफलन के रूप में साम्राज्य की ऐसी नीति सफलता को प्राप्त करके प्रसिद्धि में न आ सकी जिसका सभी धर्मों की प्रजा के हित से सम्बन्ध हो। हाँ, मुहम्मद के उत्तराधिकारी फिरोज तुगलक ने सर्वप्रथम प्रजाहितार्थ कल्याणकारी राज्य की परंपरा को सफलतापूर्वक क्रियान्वित किया।

सामाजिक दशा

राजनीतिक असन्तुलन के युग में किसी भी प्रकार की सामाजिक प्रगति की योजना की राज्य से आशा नहीं की जा सकती। मुहम्मद तुगलक निश्चय ही अपने अधीनस्थ सामन्तों की नीति से असन्तुष्ट था, किन्तु वह प्रत्यक्ष रूप से उनका विरोध करके हिन्दू लोगों को उनका स्थान देने का साहस नहीं करता था। इसलिए उसने अरबी, ईराकी व ईरानी लोगों को बुलाकर योग्यतानुसार कार्य सौंपा था। शासन के अतिरिक्त वह हिन्दू लोगों का अन्य कार्यों में भरपूर सहयोग प्राप्त करता था। कुकृत्य करनेवाले सामन्तों को वह हिन्दुओं की सहायता से ही दण्ड दिया करता था। उसने इस्लाम के प्रचार के लिए प्रयत्न किया अवश्य, किन्तु कदाचित् उसका ध्यान इससे अधिक ज्ञान की खोज करने में लगा हुआ था। वह विद्वानों का समादर करता था।

सामान्य हिन्दू मुसलमानों से आक्रान्ता के रूप में घृणा करते थे, किन्तु इस्लाम के सिद्धान्तों व मुसलमान फकीरों व पीरों का आदर करते थे। तीव्र घृणा के उपरान्त भी सामान्य लोगों में सहअस्तित्व की भावना पनप रही थी। हिन्दू लोग पीर-पैगम्बरों में आस्था रखने लगे थे। वैष्णव सम्प्रदायों का प्रचार बढ़ने लगा था। कदाचित् हिन्दू लोग अपने धर्म का नमनशील संस्करण तैयार करने में व्यस्त थे। हिन्दुओं में जातिभेद चरम अवस्था पर पहुँच रहा था। मुसलमानी शासकों के अत्याचारों

ने उन्हें मानव के एक घृणास्पद, बीभत्स रूप से परिचय कराया था, जिससे एक मनुष्य अपने सहयोगी के प्रति आस्था खो चुकता है। इस अनास्था का परिणाम हम आज तक भोग रहे हैं। जातिभेद और छुआ-छूत इसी अनास्था की चरमावस्था के परिणाम हैं जो इस उत्तरमध्य-काल में सामाजिक कोढ़ के रूप में भारत को मिले।

भारतीय-संस्कृति की नमनशीलता का चरम रूप १४हवीं से १७ वीं शताब्दी के बीच में मिलता हैं। इस काल में भारतीय समाज ने सबसे अधिक सांस्कृतिक नेता पैदा किए, किन्तु दुर्भाग्यवश फिर भी भारतीय संस्कृति इस्लाम को आत्मसात् नही कर सकी। इसका कारण कदाचित् जीवन के प्रति इस्लाम का दृष्टिकोण उतना नहीं है जितना भारत में उसके प्रचारकों का अनुदार व अनुत्तरदायित्वपूर्ण रुख है।

मुहम्मद तुगलक के शासनकाल मे उत्तर भारत में इस्लाम का प्रचार बढ रहा था। राजस्थान व गुजरात में जैनधर्म का प्रचार अधिक हो रहा था। बुद्धधर्म मुसलमानों के आक्रमणो से अपना सामान्य जनता पर प्रभाव खोकर भारत से समाप्त हो चुका था। भारतीय जनता अनेक वर्गों मे विभाजित थी फिर भी उसमें सामाजिक व्यवहारों की समानता के कारण सांस्कृतिक ऐक्य विद्यमान था, जिसे इस्लाम के प्रचारकों ने नही समझा और न शासकों ने ही उसकी ओर ध्यान दिया। धनिक वर्ग तो प्राप्त साधनों के आधार पर अपना बचाव कर सकते थे, किन्तु सामान्य लोग राजनीतिक व धार्मिक अत्याचारों से पीड़ित थे। भारत में अनेक अछूत जातियाँ इस प्रकार के अत्याचारों से पीड़ितों की ही हैं जिन्हें उच्च वर्गों ने विवशता के दण्ड के रूप में पीछे रह जाने को अपने भाग्य पर छोड़ दिया।

आर्थिक स्थिति

मुसलमान सुल्तान योग्य योद्धा तो अवश्य थे किन्तु व्यावसायिक उन्नति की ओर उनका ध्यान नही था। लूटकर या प्रजा को आतंकित करके धन

वस्तु थी। रामानुज के मतानुसार सभी जातियों के स्त्री-पुरुष ईश्वरोपासना व मुक्ति के समान रूप से अधिकारी थे। भक्ति-संप्रदाय का आन्दोलन स्पष्टतः इस्लाम के प्रतिरोध के लिए किया गया भारतीय जनता का सांस्कृतिक अभियान था।

राजस्थान, मालवा व गुजरात में जैनधर्म का प्रचार था। जैनसाहित्य का स्वर्णकाल समाप्तप्राय था, किन्तु अब भी अनेक जैनाचार्य लोकजीवन में अपना प्रमुख स्थान बनाये हुए थे। आचार्य जिनप्रभ जैनसाहित्य के स्वर्णयुग के प्रमुख साहित्यकार थे। बहुमुखी प्रतिभा के धनी होने से सुल्तान के कानों तक उनकी ख्याति पहुँची थी और उन्होंने सुल्तान से भेंट करके उसे अपने विचारों से प्रभावित किया था।

मुहम्मद तुगलक के शासनकाल में एक ओर तो हिन्दूधर्म पर इस्लाम का प्रभाव पड़ रहा था, दूसरी ओर इस्लाम पर भी हिन्दुओं के संपर्क से प्रभाव बढ़ता जा रहा था। सूफी सन्तों पर भारतीय वेदान्त का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा था। एक ओर हिन्दू सांस्कृतिक अभियान के लिए अपने को तैयार कर रहे थे। दूसरी ओर मुसलमान हिन्दुओं के धार्मिक व ज्ञान-विज्ञान-सम्बन्धी विचारधाराओं से परिचित होते जा रहे थे।

साहित्यिक विकास

इस समय में संस्कृत और अपभ्रंश साहित्य का ह्रास होता जा रहा था, साथ ही प्रान्तीय भाषाएँ अधिक प्रभाव ग्रहण करती जा रही थीं। फिर भी दार्शनिक व धार्मिक साहित्य अब भी संस्कृत में ही लिखा जाता था। जैन साहित्यकारों ने उस समय में अनेक नाटकों व काव्यों की रचना भी की थी उनका प्रकाश में आना अभी शेष है। संस्कृत भाषा में प्रणयन था इसलिए भी होती थी कि जिससे उनका भारतभर में प्रचार हो सके, क्योंकि संस्कृत उस समय भी अन्तःप्रान्तीय व्यावहारिक भाषा थी। हिन्दी, मराठी, बंगला व दक्षिण की तमिल, तेलगू आदि भाषाओं में प्रौढ़ साहित्य की रचना प्रारम्भ हो गई थी। हिन्दी का प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरो खिल्जी व तुग-

लक सल्तनत का राजकवि था। वह हिन्दी में मनोरंजन साहित्य का जन्मदाता था। उसे खड़ी बोली को सर्वप्रथम प्रयोग करने का श्रेय प्राप्त है। इब्नबतूता नामक अफ्रीकी यात्री मुहम्मद तुगलक के समय भारत में आया था। उसका यात्रावर्णन साहित्य व इतिहास की बहुमूल्य सम्पत्ति है। जियाउद्दीन बर्नी तुगलककाल का सबसे प्रसिद्ध इतिहासकार है जो मुहम्मद का दरबारी था। मुहम्मद तुगलक के दरबार में एसामी, बद्रेचाच आदि कवियों को भी पर्याप्त सम्मान प्राप्त था। विद्या-व्यसनी होने से मुहम्मद तुगलक साहित्यकारों का पर्याप्त सम्मान करता था और स्वयं भी काव्यरचना करता था।

सांस्कृतिक मूल्यांकन

मुहम्मद तुगलक ने अनेक योजनाएँ बनाईं और क्रियान्वित न कर पाने के कारण उसे इतिहास में पागल तक कहा गया। किन्तु फिर भी उसका शासनकाल उसकी उदारदृष्टि के परिणाम स्वरूप अत्यन्त महत्त्व पूर्ण रहा। उसके विचारों से प्रभावित होकर ही उसके उत्तराधिकारी फिरोज तुगलक ने अनेक जनहितकारी योजनाओं को क्रियान्वित किया।

हिन्दू संस्कृति के लिए तो यह काल पर्याप्त महत्त्व का था ही। गुजरात, राजस्थान, मालवा आदि पददलित हो चुके थे या निरन्तर आक्रमणों के शिकार बनते जा रहे थे। इस भूखण्ड के जैन-साहित्यकारों ने निश्चय ही इस काल में महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक कार्य किया। अनेक राजनैतिक उत्थान-पतनों के उपरान्त भी वैदिक साहित्य को कण्ठस्थ करके सुरक्षित बनाए रखने का गौरव ब्राह्मणों को प्राप्त है। लगभग यही गौरव इस काल के जैन-साहित्यकारों को मिलना चाहिए जिन्होंने विनाश के लोमहर्षक दृश्यों के बीच गुजरात व राजस्थान में पल्लवित व विकसित जैन-साहित्य की स्वर्णकालीन परंपरा की पवित्रता व गुरुता को नष्ट होने से ही नहीं बचाया वरन् नवीन साहित्य के सृजन में भी पर्याप्त योग दिया।

आचार्य जिनप्रभसूरि इस गौरव के अधिकारी साहित्यकारों में शीर्ष स्थानीय हैं।

गुरु-परम्परा

श्रमण भगवान् महावीर के शासन में विक्रम की ८ वीं शती से पूर्व चैत्यवास नाम से प्रसिद्ध जिस शिथिलाचार परम्परा का उद्भव और ११ वीं शती तक जिसका प्रबल वेग से प्रचार हुआ उस चैत्यवास-प्रथा का उन्मूलन कर सिद्धान्तोक्त श्रमण एवं श्रावक वर्ग को पुनः प्रतिष्ठित करने का श्रेय खरतरगच्छ के आचार्यों को ही प्राप्त है। सुविहित पक्ष और विधिपक्ष इस गच्छ के अपर नाम हैं। इस गच्छ का जहाँ शास्त्रीय दृष्टि से महत्त्व है वहाँ इसका ऐतिहासिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस गच्छ का नामकरण अन्य गच्छों की तरह सामान्य विशेषताओं के कारण नहीं हुआ है अपितु सैद्धान्तिक आधार पर प्रबल संघर्ष करते हुए क्रान्ति की ज्वाला फैलाने के कारण हुआ है। इस क्रान्ति के प्रमुख सूत्रधार हैं आचार्य वर्धमान और आचार्य जिनेश्वर।

आचार्य वर्धमान अम्भोहर प्रदेश में ८४ स्थानों के नायक चैत्यवासी जिनचन्द्राचार्य के शिष्य थे। सिद्धान्त-वाचना ग्रहण करते हुए जिन मन्दिर के विषय में ८४ आशातनाओं के प्रसंग को पढ़कर और चैत्यवास के व्यावहारिक जीवन को देखकर इन्हें ग्लानि उत्पन्न हुई, फलस्वरूप सारा वैभव त्यागकर सुविहित श्रमण उद्योतनाचार्य के शिष्य बनकर शास्त्रोक्त साधुत्व का अंतरंग और बहिरंग समान रूप से प्रतिपादन करने लगे।

आचार्य जिनेश्वर इन्हीं वर्धमानाचार्य के सुयोग्य शिष्य एवं पट्टधर हैं। प्रभावकचरित के अनुसार आचार्य जिनेश्वर दीक्षित होने के पूर्व मध्य देश के निवासी कृष्ण नामक ब्राह्मण के पुत्र थे। इनका पूर्व नाम श्रीधर था तथा इनके अनुज का नाम श्रीपति था। दोनों भाई बड़े प्रतिभाशाली और मेधावी थे। इन्होंने वेद, वेदांग, इतिहास, पुराण, षड्दर्शन शास्त्र और स्मृतिशास्त्र आदि समग्र साहित्य का विधिवत् अध्ययन किया

था। अध्ययनोपरान्त देशाटन करते हुए ये दोनों भाई धारानगरी[1] में पहुँचे। धारानगरी के श्रेष्ठि लक्ष्मीपति के संपर्क से दोनों भाइयों का आचार्य वर्धमान से साक्षात्कार हुआ। आचार्य के उपदेश और सावना से प्रभावित होकर दोनों ने वर्धमानाचार्य का शिष्यत्व अंगीकार किया। दीक्षा-ग्रहण के पश्चात् दोनों भाइयों ने जैन-शास्त्रों का अध्ययन बड़ी लगन तथा तत्परता के साथ किया। शास्त्रों के पारंगत होने पर आचार्य वर्धमान ने दोनों भाइयों को आचार्यपद प्रदान किया। इसी समय से ये दोनों जिनेश्वरसूरि और बुद्धिसागरसूरि के नाम से प्रख्यात हुए।

वर्धमानसूरि को चैत्यवास जीवन का कटु अनुभव होने के कारण इस परम्परा के प्रति क्षोभ एवं वेदना थी कि महावीर के शासन का यह विकृत रूप दूर होना ही चाहिए और इधर जिनेश्वर जैसे दुर्धर्ष विद्वान् शिष्य का संयोग मिल जाने से इन्होंने इस प्रथा का उन्मूलन करने का दृढ़ निश्चय करके १८ शिष्यों के साथ चैत्यवासियों के गढ़ अणहिलपुर पत्तन की ओर प्रयाण किया। दिल्ली से विहार करते हुए पाटण पहुँचे। क्रिया-शील साधु होने के कारण इन्हें निवास के लिए स्थान भी प्राप्त नहीं हुआ, आचार्य जिनेश्वर के वाग्वैदग्ध्य से प्रभावित होकर राज-पुरोहित सोमेश्वर ने अपनी चतुःशाल में रहने का आग्रह किया। जैनेतर समाज में आचार्य की यशःकीर्त्ति को बढ़ते देखकर चैत्यवासियों ने इन्हें निकालने के लिए अनेक प्रकार के षड्यन्त्र रचे, असफल होने पर पाटण के तत्कालीन महा-

१. धारानगरी में इस समय महाराजा भोज का राज्य था। सं० १०६७ का मोडासा का अभिलेख मिलने से यह निश्चित है कि १०६७ से १११२ तक भोज का राज्यकाल था। राजा भोज के समय में धारा-नगरी विद्वानों की क्रीड़ास्थली रही है। संभवतः श्रीधर और श्रीपति विद्योपार्जन के पश्चात् अपने पाण्डित्य प्रदर्शन या सम्मान प्राप्त करने हेतु यहाँ आये हों।—डा० दशरथ शर्मा : राजा भोज निबन्ध (पंवार वंश दर्पण)।

राजा दुर्लभराज के सम्मुख पहुँचे और उन्हें स्मरण दिलाया कि "आपके पूर्वज चावोत्कट वंशीय महाराज वनराज ने 'वनराज विहार' नाम से पार्श्वनाथ मन्दिर की स्थापना करके यह व्यवस्था दे दी थी कि यहाँ केवल चैत्यवासी यतिजन ही ठहर सकते हैं।" अतः इन क्रियाधारियों को नगर से बाहर निकालने का आदेश प्रदान करें। महाराज दुर्लभराज केवल अन्धानुकरण करनेवाले व्यक्ति नहीं थे, वे गुणी थे, गुणिजनों के प्रति उनके हृदय में आदरभाव था अतः चैत्यवासियों के दुराग्रह को उन्होंने उपेक्षा की दृष्टि से देखा। यहाँ भी अपने प्रयत्नों को असफल होते देखकर उन्होंने शास्त्रार्थ का प्रस्ताव रखा। इस प्रस्ताव को महाराजा ने उपयुक्त समझा और पुरोहित सोमेश्वर के द्वारा आचार्य वर्धमान से इसकी स्वीकृति चाही। वर्धमान और जिनेश्वर तो यह चाहते ही थे, भला वे ऐसे स्वर्णावसर को कैसे छोड़ सकते थे। उन्होंने स्वीकृति दे दी और महाराजा दुर्लभराज की अध्यक्षता में पंचासरा पार्श्वनाथ मन्दिर में शास्त्रार्थ होने का निश्चय हुआ।

निश्चित समय पर सूराचार्य के नेतृत्व में ८४ चैत्यवासी आचार्य गण सज-धज कर वहाँ उपस्थित हुए। ठीक समय पर दुर्लभराज भी वहाँ पधारे। इनकी अध्यक्षता में शास्त्रार्थ प्रारंभ हुआ। एक ओर से जिनेश्वराचार्य और दूसरी ओर से सूराचार्य थे। शास्त्रार्थ सूराचार्य ने प्रारंभ किया। उनका कहना था कि 'जिन गृहवास ही मुनियों के लिए समुचित है और वहीं पर निरपवाद महाव्रत का पालन संभव हो सकता है।' 'वसतिवास अपवाद से रहित नहीं है इसीलिए त्याज्य है।' सूराचार्य ने अनेक युक्तियों के द्वारा अपने पक्ष का समर्थन किया परन्तु जिनेश्वर ने उन सभी युक्तियों का खण्डन बड़ी योग्यता के साथ करते हुए वसतिमार्ग का प्रतिपादन किया। उन्होंने अत्यन्त स्पष्ट और कटु आलोचना करते हुए चैत्यवास के तत्कालीन अनुचित और अपवादपूर्ण वातावरण को मुनि-जीवन के लिए सर्वथा प्रतिकूल तथा आगमगत बतलाया। जिनेश्वर की वाक्पटुता, अकाट्य तर्क-शैली तथा प्रगाढ़ पाण्डित्य से न केवल उनके प्रतिपक्षी ही पराभूत और पराजित हुए अपितु

वहाँ पर बैठे हुए निष्पक्ष विद्वान् तथा गणमान्य लोग भी प्रभावित हुए।[1] इसी के फलस्वरूप राजा दुर्लभराज ने (सं० १०६६-१०७८ के मध्यकाल मे) करडी हट्टी में वसतिमार्गियों के लिये एक स्थान प्रदान किया और इस प्रकार गुजरात में वसतिमार्ग का सर्व प्रथम आविर्भाव हुआ।

खरतरगच्छीय परम्परा एवं पट्टावलियों के अनुसार जिनेश्वरसूरि की शास्त्रार्थ में विजय और उनकी उग्र एवं प्रखर चारित्रिक क्रियाशीलता देखकर राजा दुर्लभराज ने इन्हें खरतर-विरुद से संबोधित किया। यहीं से इस पक्ष का नाम खरतरगच्छ पड़ा और यह विरुद व्यवहार में भी प्रयुक्त होने लगा।

वर्धमानसूरिजी रचित निम्नलिखित कृतियाँ प्राप्त होती हैं:—

१. उपदेशपद टीका र० सं० १०५५,

२. उपदेशमाला बृहद्वृत्ति

३. उपमितिभवप्रपञ्च कथासमुच्चय

४. वीरपारणकस्तोत्र गाथा ४६,

५. वर्धमानजिनस्तुति गाथा ४ (पापाधाघानि)।

जिनेश्वरसूरि न केवल वाक्चातुरी और शास्त्र-चर्चा के ही आचार्य थे अपितु लेखिनी के भी प्रौढ़ आचार्य थे। इनकी प्रणीत निम्न रचनाएँ प्राप्त होती हैं:—

१. प्रमालक्ष्म स्वोपज्ञटीकासहित

२. अष्टकप्रकरणटीका र० सं० १०८०

३. चैत्यवन्दनकप्रकरण र० सं० १०९६

४. कथाकोषप्रकरण स्वोपज्ञटीकासह र० सं० ११०८,

---

१. चौलुक्यनृपति दुर्लभराज की सभा में चैत्यवासी पक्ष के समर्थक अग्रणी सूराचार्य जैसे महाविद्वान् और प्रबल सत्ताशील आचार्य के साथ शास्त्रार्थ कर उसमें विजय प्राप्त किया।—मुनि जिन विजय : कथा कोष प्रस्तावना, पृ० ४

५. पञ्चलिङ्गीप्रकरण
६. निर्वाणलीलावतीकथा
७. षट्स्थानप्रकरण
८. सर्वतीर्थमहर्षिकुलक
९. वीरचरित्र ।

इनके अनुज एवं गुरुभ्राता बुद्धिसागरसूरि भी प्रतिभाशाली विद्वान् थे। इनकी एक ही कृति प्राप्त होती है; 'बुद्धिसागर व्याकरण।'

जिनेश्वरसूरि का शिष्य-समुदाय भी विशाल था। आपने अपने स्वहस्त से जिनचन्द्रसूरि, अभयदेवसूरि, धनेश्वरसूरि अपरनाम जिनभद्रसूरि और हरिभद्रसूरि को आचार्यपद तथा धर्मदेवगणि, सुमतिगणि, सहदेवगणि और विमलगणि को उपाध्यायपद प्रदान किया था। ख्यातिप्राप्त ४ आचार्य और तीन उपाध्याय जहाँ शिष्य हों वहाँ मुनिमण्डल का और पौत्रशिष्यों का अत्यधिक संख्या में होना स्वाभाविक ही है।

जिनचन्द्रसूरि—जिनेश्वरसूरि के पट्ट पर जिनचन्द्रसूरि हुए। इनके सम्बन्ध में कोई इतिवृत्त प्राप्त नहीं है। ये बहुश्रुत गीतार्थ थे। इनकी एक मात्र कृति 'संवेग रंगशाला' नामक प्राकृत भाषा में गुम्फित कथाग्रंथ प्राप्त है जिसकी रचना ११२५ में हुई है।

अभयदेवसूरि—जिनचन्द्रसूरि के पट्ट पर अभयदेवसूरि हुए। इनका पूर्व नाम अभयकुमार था। ये धारानगरी के निवासी श्रेष्ठी महीधर के पुत्र थे। इनकी माता का नाम धनदेवी था। जिनेश्वरसूरि के कर-कमलों से ही इन्होंने दीक्षा एवं आचार्यपद प्राप्त किया था।

अभयदेवसूरि समग्र जैन-समाज में नवांगी टीकाकार के रूप में सिद्धान्तशास्त्रों के प्रामाणिक आप्त आचार्य माने जाते हैं। इन्होंने स्थानांग आदि नव अंगों पर टीकाओं की रचना की। इन टीकाओं का संशोधन तत्कालीन चैत्यवासी समाज के प्रमुख एवं प्रतिष्ठित आचार्य द्रोणाचार्य ने किया है। इनकी सर्जित साहित्य-सम्पत्ति आज भी ६२०० श्लोक परिमाण में प्राप्त होती है। सर्जित साहित्य इस प्रकार है—

१. स्थानांगसूत्र-वृत्ति र० सं० ११२०
२. समवायांगसूत्र-वृत्ति र० सं० ११२०
३. भगवतीसूत्र-वृत्ति र० सं० ११२८
४. ज्ञातासूत्र-वृत्ति र० सं० ११२०
५. उपासकदशासूत्र-वृत्ति
६. अन्तकृद्दशासूत्र-वृत्ति
७. अनुत्तरौपपातिकदशासूत्र-वृत्ति
८. प्रश्नव्याकरणसूत्र-वृत्ति
९. विपाकसूत्र-वृत्ति
१०. औपपातिकसूत्र-वृत्ति
११. प्रज्ञापनातृतीयपदसंग्रहणी
१२. पंचाशकप्रकरणटीका र० सं ११२४
१३. सप्ततिकाभाष्य
१४. बृहद्वन्दनकभाष्य
१५. नवपदप्रकरणभाष्य
१६. पंचनिर्ग्रन्थीप्रकरण
१७. आगम-अष्टोत्तरी
१८. निगोदषट्त्रिंशिका
१९. पुद्गलषट्त्रिंशिका
२०. आराधनाकुलक
२१. आलोचनाविधिप्रकरण
२२. स्वधर्मीवात्सल्यकुलक
२३. जयतिहुअण-स्तोत्र
२४. वस्तुपार्श्वस्तव
२५. स्तम्भनपार्श्वस्तव
२६. पार्श्वविज्ञप्तिका
२७. विज्ञप्तिका।

नवांग टीका रचना के अतिरिक्त इनके जीवन की एक और महत्त्वपूर्ण घटना है, वह है सेढी नदी के किनारे खंखरापलाशवन में जयतिहुअण-स्तोत्र की रचना करते हुए स्तम्भनपार्श्वनाथ की मूर्ति का प्रकटीकरण।

जिनवल्लभसूरि[1]—नवांगी टीकाकार अभयदेवसूरि के पट्टधर जिनवल्लभसूरि हुए। जिनवल्लभ संभवतः आशिका निवासी थे और कूर्चपुरीय चैत्यवासी आचार्य जिनेश्वर के शिष्य थे। संभवतः जिनवल्लभ ने गुरु जिनेश्वराचार्य के पास ही पाणिनीयादि आठों व्याकरण, काव्य, लक्षण-ग्रन्थ, नाटक, छन्दःशास्त्र, नाट्य-शास्त्र, काम-सूत्र, न्याय तथा दर्शन-शास्त्रों का अध्ययन किया था। जिनेश्वराचार्य ने ही सिद्धान्तों का पारंगत बनाने हेतु वाचनार्थ जिनवल्लभ को वाचनाचार्य बनाकर जिनशेखर के साथ आचार्य अभयदेवसूरि के समीप भेजा। अभयदेवसूरि ने भी जिन-

---

१. देखें, वल्लभभारती।

वल्लभ की विनयशीलता, ज्ञान-पिपासा और योग्यता का अंकनकर बड़े आत्मीयभाव से जिनवल्लभ को समस्त आगमों की वाचना प्रदान की। अभयदेवसूरि के भक्त एक दैवज्ञ से समस्त ज्योतिषशास्त्र का भी जिनवल्लभ ने अध्ययन किया।

वाचनानन्तर जब जिनवल्लभ अपने गुरु के पास वापस जाने लगे तो अभयदेवसूरि ने पीठ थपथपाकर बड़े प्रेम से कहा कि 'वत्स! सिद्धान्त के अनुसार जिस प्रकार साधुओं का आचार-व्रत है उसी प्रकार पालन करने का प्रयत्न करना।' अभयदेवाचार्य के वचनों का इन्होंने मार्ग में ही पालन किया और मरुकोट्ट के देवगृह में विधिवाक्य के श्लोक उत्कीर्ण करवाये। अपने गुरु जिनेश्वर से मिलकर, चैत्यवास त्याग की आज्ञा प्राप्त कर पुनः पत्तन लौटे और आचार्य अभयदेव के कर-कमलों से उपसम्पदा ग्रहण कर अभयदेवसूरि के शिष्य बने।

उपसम्पदा ग्रहण करने के पश्चात् जिनवल्लभगणि चित्तौड़ आये और वहाँ चैत्यवासियों को निरस्तकर पार्श्वनाथ और महावीरविधि-चैत्यों की स्थापना की। नागपुर तथा नरवरपुर में भी विधिचैत्यों की स्थापना की। आचार्य जिनेश्वर ने जिस क्रान्ति की चिनगारी पाटन में लगायी थी उसको मेवाड़ और मारवाड़ आदि देशों में ज्वालारूप में फैलाकर चैत्यवास-परम्परा को भस्मीभूत करनेवाले क्रान्तिकारी जिनवल्लभगणि ही हैं। इनकी समस्यापूर्ति-संबंधी पाण्डित्य से धारानगरी के नृपति नरवर्मा भी प्रभावित हुए थे और इनके भक्त हो गये।

आचार्य देवभद्रसूरि ने जिनवल्लभगणि को सं० ११६७ आषाढ़ शुक्ल ६ को चित्तौड़ नगरी में वीरविधिचैत्य में विधि-विधान महोत्सव के साथ आचार्यपद प्रदानकर अभयदेवसूरि का पट्टधर घोषित किया। आचार्यपदप्रदानान्तर कुछ मास के ही पश्चात् अर्थात् ११६७ कार्तिक कृष्णा १२ के दिन जिनवल्लभसूरि का स्वर्गवास हो गया।

जिनवल्लभसूरि जहाँ क्रान्तिकारी और प्रबल सुधारक थे वहाँ समर्थ

शास्त्रों के निष्णात आचार्य भी थे। इनकी अनेक रचनाओं पर तत्कालीन अन्य गच्छों के प्रमुख एवं प्रभावशाली आचार्यों ने टीकाएँ रचकर इन्हें आप्तपुरुष स्वीकार किया है। इनकी रचित निम्नलिखित कृतियाँ आज भी उपलब्ध हैं:—

१. सूक्ष्मार्थविचारसारोद्धारप्रकरण
२. आगमिकवस्तुविचारसारप्रकरण
३. पिण्डविशुद्धिप्रकरण
४. सर्वजीवशरीरावगाहनास्तव
५. श्रावकव्रतकुलकम्
६. पौषधविधिप्रकरण
७. प्रतिक्रमणसमाचारी
८. द्वादशकुलक
९. धर्मशिक्षाप्रकरण
१०. संघपट्टक
११. प्रश्नोत्तरैकषष्टिशतकाव्य
१२. शृंगारशतक
*चित्रकूटीयवीरचैत्यप्रशस्ति
१३. आदिनाथचरित
१४. शान्तिनाथचरित
१५. नेमिनाथचरित
१६. पार्श्वनाथचरित
१७. महावीरचरित
१८. वीरचरित
१९. चतुर्विंशतिजिनस्तोत्राणि
*स्वप्नसप्तृतिका
२०. पञ्चकल्याणकस्तव
२१. सर्वजिनपञ्चकल्याणकस्तव
२२. प्रथमजिनस्तव
२३. ऋषभजिनस्तुति
२४. लघु अजितशान्तिस्तव
२५. स्तम्भनपार्श्वजिनस्तव
२६. क्षुद्रोपद्रवहरपार्श्वस्तोत्र
२७. पार्श्वस्तोत्र (चित्रकाव्य)
२८. पार्श्वनाथाष्टक
२९. महावीरविज्ञप्तिका
३०. सर्वज्ञविज्ञप्तिका
३१. नन्दीश्वरचैत्यस्तव
३२. भवारिवारणस्तोत्र
३३. पञ्चकल्याणकस्तोत्र
३४. कल्याणकस्तव
३५. सर्वजिनस्तोत्र
३६-४०. पार्श्वस्तोत्र
४१. सरस्वतीस्तोत्र
४२. नवकारस्तव।

जिनपालोपाध्याय द्वारा चर्चरी टीका में उल्लिखित आगमोद्धार तथा प्रयुरप्रशस्ति आदि ग्रन्थ आज अनुपलब्ध हैं।

युगप्रधान जिनदत्तसूरि[1]—जिनवल्लभसूरि के पट्टधर जिनदत्तसूरि हुए। ये धवलका (धोलका) निवासी हुम्ब ज्ञातीय श्रेष्ठि वाछिग के पुत्र हैं। इनकी माता का नाम बाहड़ देवी था। इनका जन्म ११३२ में हुआ। सं० ११४१ में नव वर्ष की अवस्था में धर्मदेवोपाध्याय के पास दीक्षा ग्रहण की। इनका दीक्षा-समय का नाम सोमचन्द्र था। इनका प्रारम्भिक अध्ययन सर्वदेवगणि के पास हुआ। न्याय-दर्शन का अध्ययन पाटन में तथा सिद्धान्तों की वाचना हरिसिंहाचार्य के पास में हुई। सं० ११६९ वैशाख शुक्ला १ के दिन चित्तौड़ के महावीर-विधिचैत्य में बड़े महोत्सव के साथ देवभद्राचार्य ने इनको आचार्यपद प्रदान कर जिनवल्लभसूरि का पट्टधर घोषित किया। आचार्यपद के समय आपका सोमचन्द्र नाम परिवर्तित कर जिनदत्तसूरि रखा गया।

आचार्य होने के पश्चात् आपने मरुधरदेश की ओर विहार किया। नागोर होकर अजमेर आये। अजमेर के चौहान नृपति अर्णोराज ने आपके समागम का लाभ उठाया और श्रद्धापूर्वक विधिचैत्य-निर्माण के लिये भूमि भेंट रूप में प्रदान की। यहाँ से वागड देश की ओर गये। क्रमशः रुद्रपल्ली, विक्रमपुरा, उच्चानगरी; नवहर, चित्रकूट आदि मरुधर के प्रसिद्ध नगरों में विहार करते हुए जिनेश्वराचार्य एवं जिनवल्लभसूरि प्रतिपादित विधिपक्ष का प्रबलवेग एवं प्रखरता से प्रचार किया तथा अनेकों विधिचैत्यों का निर्माण करवा कर स्व करकमलों से प्रतिष्ठाएँ करवाईं। यही कारण है कि इनकी शास्त्रसम्मत विशुद्ध चारित्रसम्पदा देखकर अनेकों चैत्यवासी आचार्यों ने आपके पास उपसम्पदा ग्रहण की। जिनमें से कतिपय के नाम इस प्रकार हैं :—जयदेवाचार्य, जिनप्रभाचार्य; विमलचन्द्र, जयदत्तमन्त्रवादी, गुणचन्द्रगणि, ब्रह्मचन्द्रगणि, रामचन्द्रगणि, जीवानन्द, । जहाँ चैत्यवासी

१. विशेष परिचय के लिये देखें, मुनि जिनविजयजी संपादित 'खरतरगच्छबृहद्गुर्वावली' (सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रंथांक ४२), तथा अगरचन्द भंवरलाल नाहटा लिखित 'युगप्रधान जिनदत्तसूरि'।

आचार्य भी चैत्यवास-परम्परा का त्याग कर उपसम्पदा ग्रहण करते हों, वहाँ श्रावक समुदाय का लक्षाधिक माता में सुविहित पक्ष का स्वीकार करना स्वाभाविक ही है।

इसके बाद त्रिभुवनगिरि के नृपति कुमारपाल को प्रतिबोध देकर जैन मुनियों के सम्बन्ध में जो प्रतिबन्ध लगाये गए थे, उन्हें निरस्त करवाये।

आपने स्वहस्त से जिनचन्द्र, जीवदेव, जयसिंह, जयचन्द्र को आचार्य पद, जिनशेखर, जीवानन्द को उपाध्याय पद, जिनरक्षित, शीलभद्र, स्थिरचन्द्र, ब्रह्मचन्द्र, विमलचन्द्र, वरदत्त, भुवनचन्द्र, वरनाग, रामचन्द्र, मणिभद्र को वाचनाचार्यपद तथा श्रीमती, जिनमती, पूर्णश्री, जिनश्री, ज्ञानश्री नामक पाँच साध्वियों को महत्तरापद प्रदान किया। इससे स्पष्ट है कि आपका शिष्य-प्रशिष्य समुदाय सहस्राधिक हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

पट्टावलियों के अनुसार अम्बिका देवी द्वारा नागदेव के हथेली में अंकित पद्य पढ़ने से ये 'युगप्रधान' कहलाये।

सं० १२११ आषाढ शुक्ला ११ को इनका अजमेर में स्वर्गवास हुआ। जैसे आप धर्म प्रचार तथा उपदेश देने में सिद्धहस्त थे वैसे ही साहित्य-सर्जन करने में भी सिद्धहस्त थे। इनका प्राकृत, संस्कृत तथा अपभ्रंश भाषा पर पूर्ण आधिपत्य था। रचित साहित्य इस प्रकार है :—

१. गणधरसार्द्धशतक	९. महाप्रभावक-स्तोत्र
२. गणधरसप्ततिका	१०. चक्रेश्वरीस्तोत्र
३. सर्वाधिष्ठात्रीस्तोत्र	११. योगिनीस्तोत्र
४. गुरुपारतन्त्र्य-स्तोत्र	१२. सर्वजिनस्तुति
५. सिग्घमवहरउ स्तोत्र	१३. वीरस्तुति
६. श्रुतस्तव	१४. संदेहदोलावलीप्रकरण
७. अजितशान्ति-स्तोत्र	१५. उत्सूत्रपदोद्घाटनकुलक
८. पार्श्वनाथमन्त्रगर्भित-स्तोत्र	१६. चैत्यवन्दनकुलक

१७. उपदेशकुलक
१८. उपदेशधर्मरसायन
१९. कालस्वरूपकुलक
२०. चर्चरी
२१. अवस्थाकुलक
२२. विंशिका
२३. पदव्यवस्था
२४. शान्तिपर्वविधि
२५. चाड़ीकुलक
२६. आरात्रिकवृत्तानि
२७. आध्यात्मगीतानि।

परम्परागत जनश्रुतियों एवं पट्टावलियों के अनुसार आपके सम्बन्ध में अनेकों चमत्कारी घटनाओं तथा ओसवाल जाति के ५२ गोत्रों की स्थापना के उल्लेख प्राप्त होते हैं।

मणिधारी जिनचन्द्रसूरि[1]—युगप्रधान जिनदत्तसूरि के पट्टपर मणिधारी जिनचन्द्रसूरि हुए। इनका जन्म सं० ११९७ भादो शुक्ला अष्टमी को हुआ था। विक्रमपुर निवासी साह रासल के पुत्र हैं। इनकी माता का नाम देल्हणदेवी है। सं० १२०३ फाल्गुन शुक्ला ९ को इन्होंने दीक्षाग्रहण की। सं० १२०५ वैशाख शुक्ला ६ को विक्रमपुर में जिनदत्तसूरि ने अपने करकमलों से इनको आचार्यपद प्रदान कर जिनचन्द्रसूरि नाम रखा। नव वर्ष जैसी लघु अवस्था में युगप्रधान जिनदत्तसूरि जैसे आचार्य की दृष्टि में परीक्षोत्तीर्ण होकर आचार्य बनना इनके विशिष्ट व्यक्तित्व का द्योतक है। सं० १२११ आषाढ़ शुक्ला ११ को जिनदत्तसूरि का स्वर्गवास होनेपर इन्होंने गच्छनायक पद प्राप्त किया।

सं० १२२२ में रुद्रपल्ली नगर में पद्मचन्द्राचार्य के साथ आपका 'न्यायकन्दली' पठन के प्रसंग को लेकर 'तम' द्रव्य है या नहीं है' इस पर चर्चा हुई। इस चर्चा ने शास्त्रार्थ का रूप ले लिया। अन्त में रुद्रपल्ली की

१. विशेष परिचय के लिए देखें, मुनि जिनविजय-संपादित 'खरतर-गच्छबृहद्गुर्वावली' तथा अगरचंद भंवरलाल नाहटा द्वारा लिखित 'मणिधारी जिनचन्द्रसूरि'।

राजसभा में शास्त्रार्थ हुआ और पद्मचन्द्राचार्य पराजित हुए। आपको राजकीय सम्मान के साथ विजयपत्र मिला।

तत्कालीन दिल्ली के महाराजा मदनपाल के अत्याग्रह से अनिच्छा होते हुए भी सं० १२२३ में आपने दिल्ली पधार कर चातुर्मास किया। इसी चातुर्मास में भादों कृष्णा १४ को आप स्वर्गवासी हुए।

आपके मालप्रदेश में मणि होने से आप मणिधारी के नाम से प्रख्यात हुए। मन्त्रीदलीय (महत्तियाण, महता) जाति को प्रतिवोध देकर जैन बनाने वाले आप ही थे।

आपकी प्रणीत केवल 'व्यवस्थाशिक्षाकुलक नामक' एक ही कृति प्राप्त है।

जिनपतिसूरि—मणिधारी जिनचन्द्रसूरि के पट्टधर पट्‌त्रिंशद्वाद-विजेता जिनपतिसूरि का जन्म वि० सं० १२१० विक्रमपुर में माल्हू गोत्रीय यशोवर्धन की धर्मपत्नी सूहवदेवी की रत्नकुक्षि से हुआ था। सं० १२१७ फाल्गुन शुक्ला १० को जिनचन्द्रसूरि के कर-कमलों से दीक्षा ग्रहण की। दीक्षानाम नरपति था। सं० १२२३ कार्तिक शुक्ला १३ को बड़े महोत्सव के साथ युगप्रधान जिनदत्तसूरि के पादोपजीवी जयदेवाचार्य ने इनको आचार्यपद प्रदानकर जिनचन्द्रसूरि के पट्टधर गणनायक घोषित कर, आचार्य अवस्था में जिनपतिसूरि नाम प्रदान किया। यह महोत्सव जिनपति-सूरि के चाचा मानदेव ने किया था।

सं० १२२८ में विहार करके आशिका पधारे। आशिका के नृपति भीमसिंह भी प्रवेश महोत्सव में सम्मिलित हुए। आशिका स्थित महा-प्रामाणिक दिगम्बर विद्वान् को इन्होंने शास्त्रचर्चा में पराजित किया था।

सं० १२३९ कार्तिक शुक्ला सप्तमी के दिन अजमेर में अन्तिम हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज चौहान की अध्यक्षता में फल्वर्द्धिका नगरीनिवासी उपकेशगच्छीय पद्मप्रभ के साथ आपका शास्त्रार्थ हुआ। इस समय राज्य-सभा में महामंत्रि मण्डलेश्वर कैमास तथा वागीश्वर, जनार्दन गौड़, विद्यापति

आदि प्रमुख विद्वान् उपस्थित थे। प्रतिवादी पद्मप्रभ मूर्ख, अभिमानी एवं अनर्गल प्रलापी होने से शास्त्रार्थ में शीघ्र ही पराजित हो गया। जिनपतिसूरि की प्रतिभा एवं सर्वशास्त्रों में असाधारण पाण्डित्य को देखकर पृथ्वीराज चौहान बहुत प्रसन्न हुए और विजयपत्र हाथी के ओहदे पर रखकर बड़े आडम्बर के साथ स्वयं उपाश्रय में आकर आचार्यश्री को प्रदान किया।[1]

सं० १२४४ में उज्जयन्त-शत्रुञ्जयादि तीर्थों की यात्रार्थ संघ सहित प्रयाण करते हुए आचार्यश्री चन्द्रावती पधारे। यहाँ पर पूर्णिमापक्षीय प्रामाणिक आचार्यश्री अकलङ्कदेवसूरि पांच आचार्य एवं १५ साधुओं के साथ संघ दर्शनार्थ आये। आचार्यश्री के साथ अकलंकदेवसूरि की 'जिनपति' नाम एवं 'संघ के साथ साधु-साध्वियों को जाना चाहिये या नहीं' इन प्रश्नों पर शास्त्र-चर्चा हुई और आचार्य अकलंक इस चर्चा में निरुत्तर हुए।

इसी प्रकार कासहृद में पौर्णमासिक तिलकप्रभसूरि के साथ 'संघपति' तथा 'वाक्यशुद्धि' पर चर्चा हुई जिसमें जिनपतिसूरि ने विजय प्राप्त की।

उज्जयन्त-शत्रुञ्जयादि तीर्थों की यात्रा करके वापस लौटते हुए आशापल्ली पधारे। यहाँ वादिदेवाचार्य परम्परीय प्रद्युम्नाचार्य के साथ 'आयतन-अनायतन' पर शास्त्रार्थ हुआ जिसमें प्रद्युम्नाचार्य पराजय को प्राप्त हुए। इस शास्त्रार्थ का अध्ययन करने के लिये प्रद्युम्नाचार्य का 'वादस्थल' तथा जिनपतिसूरि का 'प्रबोधोदयवादस्थल' द्रष्टव्य है।

आशापल्ली से आचार्यश्री अणहिल्लपुर पाटन पधारे। यहाँ पर स्वगोत्रीय ४० आचार्यों को स्वमण्डली में समुद्देश करवाकर वस्त्रदानपूर्वक सम्मानित किया।

---

१. इस शास्त्रार्थ का प्रामाणिक सजीव वर्णन के लिये देखें, जिनपालोपाध्याय-रचित खरतरगच्छबृहद्गुर्वावली, पृ० २५-३४ तक।

सं० १२५१ में लवणखेटक में राणक केल्हण के आग्रह से दक्षिणावर्त आरात्रिकावतरणोत्सव' बड़ी धूमधाम से मनाया।

सं० १२७३ मे वृहद्वार नगरकोटीय राजाधिराज पृथ्वीचन्द्र की सभा में काश्मीरी पं० मनोदानन्द के साथ आचार्यश्री की आज्ञा से जिनपालोपाध्याय ने किया। शास्त्रार्थ का विषय था, 'जैन षड् दर्शनबाह्य हैं।' इस शास्त्रार्थ में पं० मनोदानन्द बुरी तरह पराजय को प्राप्त हुए। राजा पृथ्वीचन्द्र ने जयपत्र जिनपालोपाध्याय को प्रदान किया।

सं० १२७७ आषाढ़ शुक्ला १० को आचार्यश्री ने गच्छ सुरक्षा की व्यवस्था कर वीरप्रभगणि को गणनायक बनाने का संकेत कर अनशन पूर्वक स्वर्ग की ओर प्रयाण किया।

आचार्य जिनपतिसूरिकृत प्रतिष्ठाएँ, ध्वजदण्डस्थापन, पदस्थापन महोत्सव, शताधिक दीक्षा महोत्सव आदि धर्मकृत्यों का तथा आचार्यश्री के व्यक्तित्व का अध्ययन एवं शिष्य-प्रशिष्यों की विशिष्ट प्रतिमा का अंकन करने के लिये द्रष्टव्य है जिनपालोपाध्याय कृत 'खरतरगच्छबृहद् गुर्वावली पृ० २३ से ४८।

जिनपतिसूरि-प्रणीत निम्न कृतियाँ प्राप्त हैं :—

१. संघपट्टकबृहद्वृत्ति
२. पञ्चलिङ्गीप्रकरणटीका
३. प्रबोधोदयवादस्थल
४. खरतरगच्छसमाचारी
५. तीर्थमाला
६. पंचकल्याणक-स्तोत्र
७. चतुर्विंशतिजिनस्तुति
८. विरोधालङ्कारऋषभ-स्तुति
९. अजितशान्तिस्तोत्र
१०. अजितशान्तिस्तुति
११. नेमिस्तोत्र
१२. चिन्तामणिपार्श्वनाथ-स्तोत्र
१३. ,, ,,
१४. पार्श्वस्तव
१५. स्तम्भतीर्थ-अजितस्तव
१६. महावीरस्तव
१७. महावीर-स्तोत्र
१८. महावीरस्तुति।

जिनेश्वरसूरि—जिनपतिसूरि के पट्टधर जिनेश्वरसूरि हुए। इनके जन्म-संवत् का पट्टावलियों में उल्लेख प्राप्त नहीं है। इनके पिता का नाम नेमिचन्द्र भाण्डागारिक था। इनकी दीक्षा सं० १२५८ चैत्रवदी दो को जिनपतिसूरि के करकमलों से हुई, दीक्षा नाम वीरप्रभा रखा गया और १२६० आषाढ कृष्णा ६ को उपस्थापना (बृहद्दीक्षा) हुई। सं० १२७३ में बृहद्द्वार में नगरकोटीय राजाधिराज पृथ्वीचन्द्र की राजसभा में काश्मीरी पंडित मनोदानन्द के साथ जिनपालोपाध्याय का जो शास्त्रार्थ हुआ था उसमें आप भी सम्मिलित थे। इस प्रसंग में वीरप्रभगणि का उल्लेख होने से यह निश्चित है कि सं० १२७३ के पूर्व ही इनको गणिपद प्राप्त हो गया था। सं० १२७७ माघ शुक्ला ६ को जाबालिपुर (जालोर) के महावीरचैत्य में बड़े महोत्सव के साथ सर्वदेवसूरि नामकरण किया गया।

सं० १२८९ में स्तम्भतीर्थ (खंभात) में यमदण्ड नामक दिगम्बर के साथ पण्डितगोष्ठी हुई। यहीं पर महामात्य श्री वस्तुपाल ने सपरिवार आकर आचार्यश्री की अर्चना की। सं० १३१९ में आपके राज्यकाल में उज्जैन में अभयतिलकोपाध्याय ने तपागच्छीय पं० विद्यानन्द को शास्त्रार्थ में पराजित कर जयपत्र प्राप्त किया। शास्त्रार्थ का विषय था 'प्रासुक शीतल जल यति को ग्राह्य है या नहीं।'

सं० १३२६ में संघपति अभयचन्द्र ने पालनपुर से आपकी अध्यक्षता में शत्रुंजय-उज्जयन्त आदि तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकाला। आपके शासन में प्रतिष्ठाओं एवं दीक्षाओं की धूम लगी हुई थी। अनेक प्रकार से शासन-प्रभावना करते हुए सं० १३३१ आश्विन कृष्णा ५ को आप स्वर्ग की ओर प्रयाण कर गये।

इनके द्वारा निर्मित-साहित्य निम्नलिखित प्राप्त है :—

१. श्रावकधर्मविधिप्रकरण
२. आत्मानुशासन
३. द्वादशभावनाकुलक
४. सर्वतीर्थमहर्षिकुलक
५. चन्द्रप्रभचरित
६. यात्रास्तव

७. रुचितरुचिदण्डकस्तुति
८. चतुर्विंशतिजिनस्तोत्र
९. ,, ,,
१० वासुपूज्यस्तोत्र-यमकमय
११. पार्श्वनाथस्तोत्र
१२. ,, ,,
१३. वावरी
१४. वीरजन्माभिषेक
१५. पालनपुरवासुपूज्यबोली
१६. चौसल्पुरवासुपूज्यबोली
१७. शान्तिनाथबोली ।

आचार्य जिनेश्वरसूरि के राज्यकाल में गच्छ में शाखाभेद हुआ जो लघु खरतरशाखा के नाम से प्रसिद्ध है। इस शाखा के प्रथम आचार्य जिनसिंहसूरि हुए जिनका परिचय एवं शाखाभेद का कारण आगे के परिच्छेदों में लिखा गया है।

जन्म-दीक्षा और आचार्यपद

जन्म

प्राकृत भाषा में रचित वृद्धाचार्य प्रबन्धावलि[1] के अनुसार मोहिलवाडी[2] नगरी में श्रीमालवंशीय ताम्बी गोत्रीय महर्धिक श्रावक महाधर[3]

१. मुनि जिनविजयजी द्वारा सम्पादित खरतरगच्छालंकार युगप्रधानाचार्य गुर्वावली में प्र० ।

२. नाहटाजी लिखित सं० चरित में सोहिलवाड़ी, शुभशीलगणि-रचित पंचशतीकथाप्रबन्ध २९५ में गलितकोटकपुर खरतरपट्टावली नं० ३ के अनुसार झूंझणू और उ० जयचन्द्रजी भंडारस्थ पट्टावली में बागड़ देश के वड़ोदा ग्राम ।

३. पंचशती, जिनदत्त, विजयधर्मसूरि ज्ञानभण्डार आगरा की एक पत्रात्मक अपूर्णपट्टावली के अनुसार दश भाई (दशभ्रातरः) थे ।

और आदेश दिया कि 'यह श्रीमालसंघ तुम्हें सौंपता हूँ। संघ सहित उस प्रदेश में जाओ और धर्मपताका फहराओ।' इस आदेश को प्राप्त कर जिनसिंहसूरि श्रीमालसंघ सहित उस प्रदेश में आये।

इस प्रकार यह जिनसिंहसूरि से 'लघु खरतरशाखा' का उद्भव हुआ। आचार्य जिनेश्वरसूरि ने सं० १३३१ में ओसवंशीय जिनप्रबोधसूरि को अपने पद पर स्थापित किया, जो कि मूलगच्छीय परम्परा में सर्वमान्य थे।

पद्मावती आराधना

एक समय आचार्य जिनचन्द्रसूरि ढिल्ली (दिल्ली) आये। धर्मोपदेश के समय आचार्य ने कहा कि 'मोक्ष का साधन होने के कारण नवीन जिन-प्रासादों का निर्माण करना चाहिये।' उपदेश श्रवण कर उपासक वर्ग ने विवेचन किया कि—नूतन प्रासादों के निर्माण का फल क्या? क्योंकि मुसलमान लोग न केवल जैनों के अपितु हिन्दुओं के भी प्राचीनतम तीर्थों, मंदिरों, प्रतिमाओं का नाश करते हैं और नष्ट करके उत्सव भी मनाते हैं। उनके इस अधार्मिक कार्य को रोकने की किसी में शक्ति नहीं है। अब हम प्राचीन-ऐतिहासिक स्थलों का भी रक्षण नहीं कर सकते तो नूतन निर्माण का क्या फल है? यदि आप में रक्षण की शक्ति है तो पहिले प्राचीनों का रक्षण कीजिये?

उपासक वर्ग के इस आह्वान को सुनकर आचार्य जिनसिंह ने देवाराधन का निश्चय किया और कहा कि—मैं छः मास पर्यन्त पद्मावती का आराधन कर उसे प्रत्यक्ष करूँगा और श्रीसंघ के कष्ट का निवारण करूँगा। किन्तु आराधनविधि के अनुसार यह आवश्यक है कि पद्मिनी स्त्री द्वारा परोसा हुआ भोजन किया जाय और पद्मिनी दिन-रात मेरे समीप रहे। अर्थात् पद्मिनी लक्षणयुक्त नारी के निकटवर्ती रहने पर कठोर मानसिक ब्रह्मचर्य का पालन और एकनिष्ठ ध्यान से पद्मावती प्रत्यक्ष होती है।' उपासक वर्ग ने साधना-विधि के अनुसार समस्त साधन उपलब्ध कर दिये।

आचार्य जिनसिंह ने छः मास पर्यन्त एकनिष्ठ होकर प्रभावती देवी की उपासना की। आचार्य की दृढभक्ति से पद्मावती प्रत्यक्ष हुई। देवी को प्रत्यक्ष देखकर भी आचार्य बोले नहीं। ऐसी अवस्था में पद्मावती ने कहा—

भगवन्! आप बोलते क्यों नहीं? विलंब से आने का कारण है। आपकी आराधना का मूलभूत कारण समझकर मैं प्रभु के पास गई थी और उनसे पूछकर आई हूँ किन्तु प्रभु द्वारा प्रदत्त प्रत्युत्तर कहने में असमर्थ हूँ। मुझे क्षमा करिये।

आचार्य : प्रभु द्वारा प्रदत्त क्या उत्तर है? कहो :

देवी : (पराधीन होकर) आपकी आयु थोड़ी है।

आचार्य : अब मेरी आयु कितनी अवशेष है।

देवी : (निश्वासपूर्वक) केवल छः मास।

आचार्य : देवि! यह ठीक है कि मेरी आयु बढ नहीं सकती। किन्तु जिस प्रसंग को लेकर मैंने यह आराधना की है, सफल होनी चाहिये, निष्फल नहीं।

देवी : अवश्य, आपकी आराधना अवश्य सफल होगी।

आचार्य : कैसे?

देवी : आपके शिष्य को मैं प्रत्यक्ष रहूँगी और उसके द्वारा महती शासनसेवा कराऊँगी।*

आचार्य : ऐसा कौन-सा भाग्यशाली है जिसको तुम प्रत्यक्ष सहायता करोगी।

देवी : आपके गच्छ में कोई योग्य शिष्य नजर में नहीं आ रहा है।

आचार्य : जब गच्छ में कोई योग्य नहीं है तो मेरे पट्ट योग्य कोई शिष्य दीजिये।

देवी : मोहिलवाणी निवासी रत्नपाल का पुत्र सुभटपाल आपके पट्ट के योग्य है, जिसकी अवस्था अभी सात-आठ वर्ष की है।

आचार्य : देवि ! वह तो अभी निरा-बालक है उसके द्वारा सेवा तो अनागत की कल्पना है—आवश्यकता है तात्कालिक सेवा की।

देवि : अनागत की कल्पना होने पर भी निकट भविष्य में ही वह शासन की महती सेवा करेगा। अतः आप उसे प्रतिबोधित कर शीघ्र ही पट्ट शिष्य बनाइये। इतना कहकर पद्मावती देवी अन्तर्धान हो गई।[1]

सुभटपाल की दीक्षा और आचार्यपद

पद्मावती देवी के कथनानुसार आचार्य जिनसिंहसूरि शीघ्र ही विहार कर मोहिलवाड़ी आये। उपासक वर्ग ने बड़े उत्सव के साथ नगर-प्रवेश करवाया। एक समय आचार्यश्री महाधर के निवास-स्थान पर गये। हर्षोल्लासित हृदय से श्रेष्ठि महाधर ने विधिपूर्वक वन्दन कर कहा—

भगवन् ! मेरे घर पर आकर आपने मुझ पर महा उपकार किया है, इससे मैं कृतकृत्य हुआ हूँ। अब कृपा करके पधारने का कारण कहिये ?

आचार्यश्री : महानुभाव ! तुम्हारे घर मैं शिष्य के निमित्त आया हूँ। आप अपना एक पुत्र मुझे प्रदान करिये।

महाधर : जैसी आज्ञा, और सुभटपाल को छोड़कर अन्य पुत्रों को वस्त्राभूषणों से सुसज्जित कर आचार्यश्री के सन्मुख लाया और कहा—पूज्यवर ! इन पुत्रों में से जो आपको प्रिय हो उसे ग्रहण कीजिये।

आचार्य : सात-आठ वर्षीय लघु पुत्र को न देखकर कहा—श्रेष्ठि ! दीर्घायुषी ये पुत्र तुम्हारे कुल की शोभा बढ़ायें। परन्तु मुझे सुभटपाल चाहिये।

श्रेष्ठि महाधर को अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि आचार्यश्री लघु सुभटपाल को ही क्यों चाहते हैं ? सुभट तो सबके हृदय का हार है, बच्चा है, उसे कैसे दूँ।

---

१. शुभशील ग्रंथ के आधार पर।

श्रेष्ठि महाधर की विचारशील मुद्रा को देखकर आचार्य जिनसिंह ने पद्मावती देवी का आदेश सुनाया और कहा कि आपके इसी पुत्र के द्वारा निकट भविष्य में शासन की महाप्रभावना होगी, यह ज्योतिर्धर शासन-प्रभावक आचार्य होगा।

'शासनप्रभावक होगा' यह सुनकर महाधर ने हर्षाभिभूत हृदय से श्रद्धापूर्वक सुभटपाल को आचार्यश्री के सानिध्य में समर्पित किया।

सं० १३२६ में आचार्य जिनसिंह ने सुभटपाल को महामहोत्सव के साथ दीक्षा प्रदान की। शिक्षा-दीक्षा-शास्त्राभ्यास और पद्मावती की साधना करते हुए सुभटपाल को गीतार्थ होने पर सं० १३४१ में किढिवाणा नगर में स्वहस्त से आचार्यगणनायक पद प्रदान कर जिनप्रभसूरि नाम रखा।

जन्म-दीक्षा-आचार्यपद-सम्वत्

प्राकृत वृद्धाचार्यप्रबन्धावली के अनुसार सुभटपाल की दीक्षा सं० १३२६ में हुई है। उक्त प्रबन्धावली एवं अन्य पट्टावलियों के अनुसार सुभटपाल की दीक्षा के समय आयु बाल्यावस्था या ७-८ वर्ष की है। अतः सुभटपाल की उस समय आयु कम से कम ८ वर्ष की मानी जावे तो आ० जिनप्रभ का जन्म-समय वि. सं. १४१८ के आस-पास स्वीकार किया जा सकता है।

पद्मावती-आराधना के प्रसंग पर देवी ने आचार्य जिनसिंहसूरि की ६ मास आयु शेष कही है, व दीक्षा १३२६ और आचार्यपद १३४७ में स्वहस्त से प्रदान करने का कहा है, जो युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता। सन्दर्भ को देखते हुए 'छ मास आयु शेष' वाला वाक्य परम्परागत किम्वदन्तीमात्र प्रतीत होता है। सत्य नहीं। अतः आचार्य जिनप्रभ का दीक्षा-समय १३२६ और आचार्यपद सं० १३४१ ही उपयुक्त प्रतीत होता है। आ० जिनसिंह-सूरि का स्वर्गवास भी १३४१ के बाद ही सम्भव है।

सोमधर्मगणि ने सं० १५०३ में रचित 'उपदेशसप्ततिका', पृ० ४८ पर लिखा है—

> दन्तविश्वमिते वर्षे (१३३२) श्री जिनप्रभसूरयः ।
> अभूवन् भूभृतां मान्याः प्राप्तपद्मावतीवराः ॥

अर्थात् वि० सं० १३३२ में, पद्मावतीवरप्राप्त एवं राजाओं के मान्य श्री जिनप्रभसूरि हुए।

इसमें सोमधर्मगणि ने १३३२ किस आधार से दिया है ? विचारणीय है। क्या यह सम्वत् जन्म का सूचक है अथवा दीक्षा सम्वत् का सूचक है या आचार्यपद प्राप्ति का विचार करने पर दीक्षा एवं आचार्यपद-सम्वत् 'प्राकृतवृद्धाचार्यप्रबन्धावली' में प्रदत्त सम्वत् ही उपयुक्त प्रतीत होते हैं। सं० १३३२ की कोई संगति नहीं बैठती।

दीक्षा-नाम

अष्टभाषामय आदिजिनस्तोत्र 'निरवधिरुचिर ज्ञानमय', पद्य ४० श्री जिनप्रभसूरि की कृति मानी जाती है। इस स्तोत्र के पद्य ४० वें में चक्र-बन्धकाव्य में कर्त्ता ने अपना नाम 'सुमतितिलक' दिया है—

> गन्धाखोदविशुद्धयोग'रसभोन्मीलैरप्रतोपाग्निशम्,
> शास्तं सौष्ठवभंग्नमोहरचनं त्वं मे वहुस्फूर्तयः ।
> रव्या भासुरतिंमसिद्धिरमणी संपत्स्वभावः परम्,
> दत्तानानरसां नमास्तरप मे संन्याः सुविद्या चिरम् ॥ ४० ॥

वि० सं० १५८३ की लिखित प्रति की अवचूरि में अवचूरिकार ने लिखा है—

> 'सुमतितिलक' इति प्राक्तन नाम। श्री जिनप्रभसूरि-दीक्षितनामापरक-संयुक्तस्याद्यपूरिः।'

अर्थात् 'सुमतितिलक' यह नाम जिनप्रभ की दीक्षावस्था का है।

श्री अगरचन्दजी नाहटा के संग्रह की प्रतिलिपि में, 'गायत्रीविवरण' की प्रान्त-प्रशस्ति में लिखा है—

'चक्रे श्रीशुभतिलकोपाध्यायैः स्वमतिशिल्पकल्पात् ।
व्याख्यानं गायत्र्याः क्रीडामात्रोपयोगसिद्धम् ॥
इति श्रीजिनप्रभसूरिविरचितं गायत्रीविवरणं समाप्तम् ।"

इन दो आधारों से यह माना जा सकता है कि जिनप्रभसूरि का दीक्षा-नाम शुभतिलक ही था। जिनप्रभ उपाध्याय पदधारी भी बने और सं० १३४१ में आचार्य बने फिर नाम परिवर्तन होने पर श्रीजिनप्रभसूरि कहलाये।

अध्ययन और अध्यापन

प्राप्त सामग्री के आधार पर जिनप्रभ के सम्बन्ध में कोई उल्लेख प्राप्त नहीं है कि जिनप्रभ ने किन-किन के पास अध्ययन किया और किन-किन ग्रन्थों का निर्माण किया। हाँ, आचार्य जिनसिंह का जिनप्रभ की दीक्षा के ६ मास पश्चात् स्वर्गारोहण सत्य है और जिनसिंह से लघु खरतरशाखा का विहार-स्थल दिल्ली का निकटवर्ती प्रदेश होने से एवं वृद्ध-खरतर-शाखा के आचार्यों के साथ इस शाखा के सम्पर्क का उल्लेख न होने से दो तथ्य सामने आते हैं। प्रथम-पद्मावतीप्रत्यक्ष और दूसरा लघु शाखीय गीतार्थों द्वारा शिक्षा-ग्रहण। इसमें तो तनिक भी सन्देह का अवकाश नहीं है कि पद्मावती देवी आपको प्रत्यक्ष थी। गुरु जिनसिंह की आराधना का पूर्ण फल जिनप्रभ को प्राप्त हुआ जो आगे के परिच्छेदों से स्पष्ट है। किन्तु क्या विद्वत्प्रतिभा का सारा श्रेय भी पद्मावती को ही है? 'अनक्षर भी असाधारण विद्वान् हो सकता है?' इसमें सन्देह ही है, परन्तु यह समीचीन हो सकता है कि स्वशाखीय गीतार्थ-विद्वानों से शिक्षा-अध्ययन विधिवत् किया हो और उसके विकास में पद्मावती का सान्निध्य हो। यदि ६ मास आयु का वर्णन कल्पना मात्र है तो, स्पष्ट है कि इनका सारा अध्ययन अपने गुरु श्री जिनसिंहसूरि के सान्निध्य में ही हुआ है।

यह निश्चित है कि व्याकरण, कोश, साहित्य, लक्षण, छन्द, न्याय, षड्दर्शन, मंत्र-तंत्र साहित्य, कथा और स्वदर्शन-शास्त्रों के ये पूर्ण पारंगत थे। जैसा कि आगे के परिच्छेदों में स्पष्ट है। यदि विधिवत् अध्ययन न किया होता तो यह सम्भव नहीं था कि दूसरे साधुओं को पढ़ाते और उनके रचित ग्रन्थों का संशोधन करते ? क्योंकि अध्ययन करने और कराने में महदंतर है। जब तक स्वयं का किसी भी विषय पर पूर्वापरत्य न हो तो अध्ययन कराना सहज नहीं है। अतः इन्होंने विधिवत् अध्ययन अवश्य किया है।

आचार्य जिनप्रभ शिक्षा-प्रसार के प्रेमी थे। शिक्षा-प्रसार के सम्मुख उनके लिये गच्छ या सम्प्रदाय, हिन्दू या अहिन्दू का भेद नहीं था। यही कारण है कि स्वयं खरतर-गच्छ के अग्रणी होते हुये भी अन्य गच्छों के कई आचार्यों-साधुओं को आपने विद्यादान दिया था और उनके रचित-ग्रन्थों के संशोधक और सहायक भी थे, तो कइयों को आचार्य-पद भी प्रदान किया था, जैसा कि तत्तद् आचार्य रचित ग्रन्थों से स्पष्ट है—

१. राजशेखरसूरि—हर्षपुरगच्छीय मलधारी आचार्य राजशेखर[1] ने न्याय का प्रसिद्ध और उत्कृष्ट ग्रंथ श्रीधरकृत न्यायकंदली का अध्ययन आचार्य जिनप्रभ से किया और न्यायकंदली पर पंजिका नाम की टीका रची :—

---

१. हर्षपुरगच्छीय मलधारी विरुदधारी अभयदेवसूरि संतानीय नरेन्द्रप्रभसूरि, पद्मदेवसूरि श्रीतिलकसूरि के शिष्य राजशेखरसूरि उस समय के नामांकित विद्वानों में से थे। आपके रचित निम्नग्रन्थ प्राप्त हैं—

१. प्रबन्धकोश (चतुर्विंशतिप्रबन्ध) र० सं० १४०५ ज्ये० शु० ७ मुहम्मद तुगलक से सम्मानित जगत्सिंह के पुत्र महणसिंह द्वारा निर्मापित वसति, दिल्ली।

२. प्राकृतद्व्याश्रयवृत्ति सं० १३८७, ३. स्याद्वादकलिका,

४. रत्नाकरावतारिका पंजिका, ५. न्यायकंदली पंजिका।

श्रीमज्जिनप्रभविभोरधिगत्य न्यायकन्दलीं कञ्चित् ।
तस्यां विवृतिलवमहं, करवै स्वपरोपकाराय ॥ ३ ॥

२. सङ्घतिलकसूरि—रुद्रपल्लीयगच्छीय श्रीगुणशेखरसूरि के शिष्य आचार्य संघतिलक[२] ने आचार्य जिनप्रभ के निकट रहकर विद्याभ्यास किया था और आपको योग्य समझ कर आचार्य जिनप्रभ ने आचार्यपद पर अभिषिक्त किया था—

ढिल्ल्यां साहिमहम्मदं शककुलक्ष्मापालचूडामणिं
ये न ज्ञान कलाकलापमुदितं निर्माय षड्दर्शनों ।
प्राकाश्ये गमिता निजेन यशसा साकं च सर्वागम-
ग्रन्थज्ञो जयतात् जिनप्रभगुरुर्विद्यागुरुर्नः मुदा ॥ ८ ॥
(सम्यक्त्वसप्ततिवृत्तिप्रशस्तिः)

---

६. षड्दर्शनसमुच्चय, ७. नेमिनाथ फागु ।

आचार्य राजशेखर के निर्देश से साधुपूर्णिमागच्छीय गुणचन्द्रसूरि के शिष्य पं० ज्ञानचंद्र ने रत्नकरावतारिका टिप्पण बनाया और संशोधन राजशेखर ने किया । तथा मुनिभद्रसूरिरचित शान्तिनाथ महाकाव्य (र० १४१०) का संशोधन भी राजशेखर ने ही किया ।

२. संघतिलकसूरिरचित निम्नग्रन्थ प्राप्त हैं—

१. सम्यक्त्वसप्ततिवृत्ति—र० १४२२ का० कृ० १४ सारस्वतपत्तन (सरसा) देवेन्द्रसूरि की प्रेरणा से, प्रथमादर्शलेखन, यशःकुशल, सोमकुशल सहाय से, श्लो० ७७११,

२. ऋषिमंडलस्तव श्लो० ३७,
३. वर्द्धमान विद्याकल्प,
४. धूर्ताख्यान,

आचार्यपदप्रदान का उल्लेख संघतिलकसूरि के शिष्य सोमतिलकसूरि[1] अपरनाम विद्यातिलकसूरि ने शीलोपदेशमालावृत्ति में किया है—

तदीयचरणद्वयी सरसिजैकपुष्पन्धयः
स सङ्घतिलकप्रभुर्जयति साम्प्रतं गच्छराट् ।
शकक्षितिपबोधकृत् प्रभुजिनप्रभानुग्रहा,
न्ववाप्तगणभृत्पदप्रगुरुतरस्वविद्यागमः ॥ १ ॥

३. मल्लिषेणसूरि—नागेन्द्रगच्छीय महेन्द्रसूरि, आनन्दसूरि,[2] हरिभद्रसूरि,[3] विजयसेनसूरि,[4] उदयप्रभसूरि[5] के शिष्य आचार्य मल्लिषेणसूरि ने

---

१. विद्यातिलक आपका दीक्षावस्था का नाम है और आचार्य बनने पर सोमतिलकसूरि के नाम से आप प्रसिद्ध हुए। आपके रचित निम्नलिखित ग्रन्थ प्राप्त हैं—

१. कन्यानयनतीर्थकल्प	१३८९.	(प्र० विविधतीर्थकल्प)
२. लघुस्तवटीका	१०९७.	पूनयटीपुरी कांबोमहूर्यांदा स्थाप्य अन्वर्थतया, (प्र० मुनि जिनविजयजी संपादित)
३. षड्दर्शनटीका	१३९२.	आदित्यवर्धनपुर,
४. शीलोपदेशमालाटीका	१३९३.	मालाधागुप्रेरणया,
५. कुमारपालप्रबन्ध	१४२४.	(प्र० सिंघी जैन ग्रन्थमाला),

२. सिद्धराज जयसिंह द्वारा प्रदत्त व्याघ्रशिशुकविरुदधारी,

३. सत्यप्रबोधादिक ग्रंथकार और कलिकालगौतमविरुदधारी,

४. मंत्रीश्वर वस्तुपाल तेजपाल के पितृपक्ष के गुरु और तद्निर्मित आबू + लूणिगवसही के प्रतिष्ठापक।

५. मंत्रीश्वर वस्तुपाल ने आपको आचार्यपद प्रदान किया था। आपके रचित धर्माभ्युदयमहाकाव्य, आरंभसिद्धि, नेमिनाथ चरित, उपदेशमालाकर्णिका, सुकृतकल्लोलिनी, षड्शीति टिप्पणक आदि प्राप्त हैं।

कुमारपालप्रतिबोधक आचार्य हेमचन्द्ररचित 'अन्ययोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिका' पर सं० १३४९ में विस्तृत टीका रची जो 'स्याद्वादमञ्जरी' के नाम से प्रसिद्ध है। इस स्याद्वादमंजरी की रचना में आचार्य जिनप्रभ ने सहयोग दिया था—

श्रीजिनप्रभसूरीणां साहाय्योद्भिन्नसौरभ।
श्रुतावुत्तंसतु सतां वृत्तिः स्याद्वादमञ्जरी ॥ ३ ॥
(स्याद्वादमंजरी टीका-प्रशस्तिः)

४. मुनि चतुरविजयजी ने जैनस्तोत्रसंदोह की प्रस्तावना[1] (पृ० ६९) में लिखा है कि आचार्य जिनसेन के शिष्य उभयभाषाकविशेखर आचार्य मल्लिषेणसूरि-रचित भैरवपद्मावती कल्प की रचना में आचार्य जिनप्रभ सहायक थे।

तीर्थयात्रा और विहार

स्वयं रचित कन्यानयनीय महावीरप्रतिमाकल्प और विद्यातिलक रचित कन्यानयनीयमहावीरकल्पपरिशेष के अनुसार सम्राट् के साथ शत्रुञ्जय, गिरनार तीर्थ, मथुरा, आगरा की यात्रा, दिल्ली से देवगिरि प्रतिष्ठानपुर, और देवगिरि से अल्लावपुर, सिरोह होकर दिल्ली, हस्तिनापुर की यात्राओं का उल्लेख है। शुभशीलगणि के कथाकोषानुसार जंघरालपुर, मरुस्थल-प्रवास का वर्णन है।

स्वयं रचित विविधतीर्थकल्प के अवलोकन से ज्ञात होता है कि इतिहास और स्थल भ्रमण से इनको बड़ा प्रेम था। इन्होंने अपने जीवन में भारत के बहुत से भागों में परिभ्रमण किया था। गुजरात, राजपूताना, मालवा, मध्यप्रदेश, बराड़, दक्षिण, कर्णाटक, तेलंग, विहार, कोशल,

१. 'श्रीजिनसेनशिष्योभयभाषाकविशेखरश्रीमल्लिषेणसूरिविरचिते भैरवपद्मावतीकल्पेऽप्यस्यैव साहाय्यम्।'

अवध, युक्तप्रान्त और पंजाब आदि के कई पुरातन और प्रसिद्ध स्थानों की उन्होंने यात्रा की थी।[1] × × × × × × यदि इन सब स्थानों को प्रांत या प्रदेश की दृष्टि से विभक्त किये जायें तो इनका पृथक्करण कुछ इस प्रकार होगा :—

गुजरात और काठियावाड़
शत्रुंजयमहातीर्थ
गिरनारमहातीर्थ
अश्वावबोधतीर्थ
स्तम्भनकपुर
अणहिलपुर
शंखपुर
हरिकंखीनगर
(अंधरालपुर)
(जीरापल्लीपार्श्वनाथ)

अवध और बिहार
वैभारगिरि
पावापुरी
पाटलीपुत्र
चम्पापुरी
कोटिशिला
कलिकुंडकुर्कुटेश्वर
मिथिला
रत्नपुर
काम्पिल्यपुर

युक्तप्रान्त और पंजाब
अहिच्छत्रपुर
हस्तिनापुर
दिल्ली
मथुरा
वाराणसी
कौशाम्बी
(आगरा)
कन्यानयन

राजस्थान और मालवा
अर्बुदाचलतीर्थ
सत्यपुरतीर्थ
शुद्धदन्तीनगरी
फलवर्द्धितीर्थ
ढिंपुरीतीर्थ
कुडुंगेश्वरतीर्थ
अभिनंदनदेवतीर्थ

दक्षिण और बरार
माणिकपुर

---

1. विविधतीर्थकल्प, सं० मुनि जिनविजय प्रास्ताविक निवेदन, पृ० १-२।

अयोध्यापुरी	प्रतिष्ठानपत्तन
श्रावस्तीनगरी	(देवगिरि)
कर्णाटक और तैलंग	अंतरीक्षपार्श्वतीर्थ
कुल्यपाक माणिक्यदेव	
अमरकुण्ड पद्मावती	

सं० १३७६ में दिल्ली के संघपति सा० देवराज ने शत्रुञ्जय, गिरनार आदि तीर्थों का संघ निकाला था। उस संघ में सूरिजी भी साथ थे। ज्येष्ठ कृष्णा त्रयोदशी को शत्रुंजय तीर्थ की और ज्येष्ठ शुक्ला १५ को गिरनार तीर्थ की यात्रा की थी।[1] इस प्रसंग पर रचित तीर्थयात्रास्तोत्र से संघ ने निम्नलिखित तीर्थों की यात्रा की थी—

शत्रुंजय, गिरिनार, शेरीषक, फलवर्द्धि-शंखेश्वर-स्तंभनकपार्श्वनाथ, पाडलनगर, नारंगा, भृगुकच्छ, वायडनगर जीवितस्वामी, हरपट्टण, अहिपुर, जालोर, पाल्हणपुर, भीमपल्ली, श्रीमाल, अणहिलपुर, सिसिसिज्ज, आशापल्ली धोलका और धंधुका।

सं० १३६९ फलवर्द्धिपार्श्वनाथ की यात्रा[2] की थी और सं० १३८६ में ढिंपुरीतीर्थ की यात्रा। सं० १३९१ उपकेशगच्छीय कक्कसूरि रचित नाभिनंदनजिनोद्धारप्रबन्ध के अनुसार सं० १३७७ के पश्चात् शत्रुञ्जयतीर्थ के उद्धारक संघपति समरसिंह के संघ के साथ सूरिजी ने मथुरा, हस्तिनापुर आदि तीर्थों की यात्रा की थी और समरसिंह को संघपति पद प्रदान किया था—

'पातसाहिस्फुरन्मानाद्धर्मवीरः स्मरस्तथा।
मथुरायां हस्तिनागपुरे जिनजनिश्रितौ।। ३२८।।

---

१. देखें, तीर्थयात्रास्तोत्र और स्तुतित्रोटक।
२. देखें, फलवर्द्धिमण्डनपार्श्वस्तोत्र।

अवध, युक्तप्रान्त और पंजाब आदि के कई पुरातन और प्रसिद्ध स्थानों की उन्होंने यात्रा की थी।[1] × × × × × × यदि इन सब स्थानों को प्रांत या प्रदेश की दृष्टि से विभक्त किये जायें तो इनका पृथक्करण कुछ इस प्रकार होगा :—

गुजरात और काठियावाड़
शत्रुञ्जयमहातीर्थ
गिरनारमहातीर्थ
अश्वावबोधतीर्थ
स्तम्भनकपुर
अणहिलपुर
शंखपुर
हरिकंखीनगर
(जंघरालपुर)
(जीरापल्लीपार्श्वनाथ)

अवध और विहार
वैभारगिरि
पावापुरी
पाटलीपुत्र
चम्पापुरी
कोटिशिला
कलिकुंडकुर्कुटेश्वर
मिथिला
रत्नपुर
काम्पिल्यपुर

युक्तप्रान्त और पंजाब
अहिच्छत्रपुर
हस्तिनापुर
दिल्ली
मथुरा
वाराणसी
कौशाम्बी
(आगरा)
कन्यानयन

राजस्थान और मालवा
अर्बुदाचलतीर्थ
सत्यपुरतीर्थ
शुद्धदन्तनगरी
फलवर्द्धितीर्थ
ढिंपुरीतीर्थ
कुडुंगेश्वरतीर्थ
अभिनंदनदेवतीर्थ

दक्षिण और वराड
नासिक्यपुर

---

१. विविधतीर्थकल्प, सं० मुनि जिनविजय प्रास्ताविक निवेदन, पृ० १-२।

अयोध्यापुरी	प्रतिष्ठानपत्तन
श्रावस्तीनगरी	(देवगिरि)
कर्णाटक और तैलंग	अंतरीक्षपार्श्वतीर्थ
कुल्यपाक माणिक्यदेव	
अमरकुण्ड पद्मावती	

सं० १३७६ में दिल्ली के संघपति सा० देवराज ने शत्रुञ्जय, गिरनार आदि तीर्थों का संघ निकाला था। उस संघ में सूरिजी भी साथ थे। ज्येष्ठ कृष्णा त्रयोदशी को शत्रुंजय तीर्थ की और ज्येष्ठ शुक्ला १५ को गिरनार तीर्थ की यात्रा की थी।[1] इस प्रसंग पर रचित तीर्थयात्रास्तोत्र से संघ ने निम्नलिखित तीर्थों की यात्रा की थी—

शत्रुंजय, गिरिनार, शेरीषक, फलवर्द्धि-शंखेश्वर-स्तंभनकपार्श्वनाथ, पाडलनगर, नारंगा, भृगुकच्छ, वायडनगर जीवितस्वामी, हरपट्टण, अहिपुर, जालोर, पाल्हणपुर, भीमपल्ली, श्रीमाल, अणहिलपुर, सिसिखिज्ज, आशापल्ली धोलका और धंधुका।

सं० १३६९ फलवर्द्धिपार्श्वनाथ की यात्रा[2] की थी और सं० १३८६ में विपुरीतीर्थ की यात्रा। सं० १३९१ उपकेशगच्छीय कक्कसूरि रचित नाभिनंदनजिनोद्धारप्रबन्ध के अनुसार सं० १३७७ के पश्चात् शत्रुञ्जयतीर्थ के उद्धारक संघपति समरसिंह के संघ के साथ सूरिजी ने मथुरा, हस्तिनापुर आदि तीर्थों की यात्रा की थी और समरसिंह को संघपति पद प्रदान किया था—

> 'पातसाहिस्फुरन्मानाद्धर्मवीरः स्मरस्तथा।
> मथुरायां हस्तिनागपुरे जिनजनिश्रितो ॥ ३२८ ॥

---

१. देखें, तीर्थयात्रास्तोत्र और स्तुतित्रोटक।

२. देखें, फलवर्द्धिमण्डनपार्श्वस्तोत्र।

बहुभिः सङ्घपुरुषैः श्रीजिनप्रभसूरिभिः ।
समन्वितस्तीर्थयात्रां चक्रे सङ्घपतिर्भवन् ॥ ३२१ ॥
(प्रस्ताव ५, श्लो० ३१८-३२१)

उपदेश से प्रबुद्ध—जैन पुस्तकप्रशस्ति-संग्रह, प्रथम भाग, प्रशस्ति १७ गूर्जरवंशीय साधु महणसिंह लिखित (भावदेवसूरिकृत) पार्श्वनाथचरित्र पुस्तक प्रशस्ति के अनुसार गुर्जरवंशीय सोम्य ने आचार्य जिनप्रभ से सुधर्म ग्रहण किया था—

सौम्योऽजनि प्रवरधीविपुलेऽत्रवंशे
य· सोमकान्त इव सज्जनदर्शनीयः ।
श्रीमज्जिनप्रभविभोर्भवभित्प्रसाद
मासाद्यसद्गुणनिधिर्विदधे सुधर्मम् ॥ ३ ॥[1]

× × × ×

जैन पुस्तक प्रशस्तिसंग्रह प्रथम भाग, प्रशस्ति ६०, पल्लिवालवंशीय श्राविका कुमरदेवी लिखित औपपातिक-राजप्रश्नीय सूत्रद्वयपुस्तक प्रशस्ति के अनुसार पल्लिवालवंशीय अरिसिंह की पत्नी कुमरदेवी ने आचार्य जिनप्रभ के पास विधिवत् श्राविका धर्म स्वीकार किया—

श्रीमत्सूरिजिनप्रभाङ्घ्रिकमले धर्मं प्रपद्यानघं,
या तुर्यं प्रतिमामुवाह विधिवन्मुग्धावकाणा मुदा ।
श्रद्धावृद्धित एव वित्तपवनं क्षेत्रेषु रासस्वधो,
तन्वन्ती तनुजानजूत मनुजानीशः समाजस्तु ताप्र ॥४॥

× × × ×

अथापि सुधाविक्या, कुमरदेव्याऽन्यदा मुदा ।
श्रीजिनप्रभसूरीणां, गुरूणां धर्मदेशना ॥ १५ ॥

---

१. इसका लेखन-काल १३७९ आश्विन सुदि १४ बुधवार है ।

विचारणीय प्रश्न

जिनप्रभसूरि रचित सिद्धान्तागमस्तव के अवचूरिकार आदिगुप्त ने अवतरणिका में लिखा है :

"पुराश्रीजिनप्रभसूरिभिः प्रतिदिनं नवस्तवनिर्माणपुरस्सरं निरवद्याहार ग्रहणाभिगहवद्भिः प्रत्यक्षपद्मावतीदेवीवचसामभ्युदयिनं श्रीतपागच्छं विभाव्य भगवतां श्रीसोमतिलकसूरीणां स्वशैक्षशिष्यादिपठनविलोकनाद्यर्थं यमकश्लेष-चित्रछान्दोविशेषादिनवनवभङ्गीसुभगाः सप्तशतीमिताः स्तवा उपदीकृता निजनामाङ्किता.।"

अभिप्राय यह कि पद्मावतीदेवी के वचनों से तपागच्छ का उदय देख-कर ७०० स्तोत्र सोमतिलकसूरि को अर्पित किये।

विचारणीय प्रश्न इतना ही है कि आचार्य जिनप्रभ ने तपागच्छ का भविष्य में उदय देखकर सहज सौहार्द से स्तोत्र-साहित्य अर्पित किया था? क्योंकि जहाँ स्वयं ने तपोटमतकुट्टनशतं में तपागच्छ को शाकिनीमत तुल्य मानकर भर्त्सना की है, त्याज्य बतलाया है, वहाँ 'उदय' देखकर अर्पण करना युक्ति-संगत प्रतीत नही होता।

इतिहास एवं परंपरा से भी यह सिद्ध है कि खरतरगच्छ और तपागच्छ आचार्य जिनप्रभ से लेकर २१वीं शती पूर्वार्ध तक दोनों गच्छों का विपुल समुदाय, साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविका समुदाय समान रूप से ही रहा; न कि खरतरगच्छ का ह्रास और तपागच्छ का उदय। यह विपुल समुदाय दृष्टि से ही नही अपितु साहित्य-सर्जना शासन-प्रभावना आदि प्रत्येक दृष्टियों से आंका जा सकता है। हाँ, वर्तमान समय में खरतरगणीय समुदाय का प्रत्येक दृष्टि से ह्रास और तपागच्छ का अभ्युदय अवश्य हुआ है।

दूसरी बात, जहाँ तपागच्छीय शुभशीलगणि ने अपने कथाकोष में जिनप्रभसूरि के अनेक चमत्कारों के वर्णन में कई प्रबन्ध लिखे हैं, वहाँ

इस प्रसंग की गंध भी नहीं है। अन्यथा ऐसी महत्त्वपूर्ण वार्ता का अवश्य उल्लेख करते।

अवचूरिकार के अतिरिक्त इस प्रसंग का किसी भी लेखक ने उल्लेख नहीं किया है। अतः 'तपागच्छ का अभ्युदय' देखकर लिखना गुच्छाग्रह मात्र प्रतीत होता है।

हाँ, इसमें सन्देह नहीं कि आचार्य जिनप्रभ के हृदय में गुच्छाग्रह या गच्छवाद नाम की कोई वस्तु नहीं थी। यही कारण है कि हर्षपुरगच्छीय राजशेखरसूरि, रुद्रपल्लगच्छीय संघतिलकसूरि, विद्यातिलकसूरि, नागेन्द्र-गच्छीय मल्लिषेणसूरि आदि विविधगच्छीय आचार्यों और साधुओं को मुक्तहृदय से अध्ययन कराया था। और शुभशील गणिकृत कथाकोषानुसार तपागच्छीय सोमप्रभसूरि के साध्वाचार की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की थी। अतः संभव है कि "सोमतिलकसूरीणां स्वशैक्षशिष्यादिपठनविलोकनार्थं" कहने पर स्वरचित ७०० संख्यात्मक स्तोत्र-साहित्य की प्रतिलिपि उन्हें सहज सौहार्द से उदारमना होकर प्रदान किये हों।

सोमप्रभसूरि से मुलाकात या सोमसुन्दरसूरि से ?

शुभशीलगणि के लेखानुसार सम्राट् के साथ प्रवास करते हुए जंघराल नगर में सोमप्रभसूरि से मुलाकात हुई और दोनों ने दोनों का हार्दिक अभिनन्दन ही नहीं किया अपितु मुक्तकण्ठों से प्रशंसा भी की; जो वस्तुतः आज के साधु-समाज के लिये मननीय और अनुकरणीय है।

इतिहास से सिद्ध है कि जिनप्रभसूरि का सम्राट् से मिलन सं० १३८५ में हुआ था जब कि सोमप्रभसूरि का स्वर्गवास सं० १३७३ में हो गया था। अतः सोमतिलकसूरि से जिनप्रभ की भेंट हुई होगी। भ्रम से सोमतिलक के स्थान पर सोमप्रभ का उल्लेख हो गया प्रतीत होता है।[1]

---

१. देखें, जिनप्रभसूरि अने सुल्तानमुहम्मद, पृ० ९६-९७ की टिप्पणी।

मुहम्मद तुगलक-प्रतिरोध और तीर्थरक्षा[1]

वैक्रमीय चौदहवीं शती के अन्तिम चरण में दिल्ली के सिंहासन पर तुगलकवंशीय सुलतान मुहम्मद[2] आसीन था; जो कि अपनी न्यायप्रियता, उग्र प्रकृति और अस्थिर स्वभाव के लिये प्रसिद्ध था। एक समय राजसभा में विद्वानों के साथ विद्वद्गोष्ठी करते हुए मुहम्मद तुगलक ने पण्डितों से पूछा कि 'इस समय विशिष्ट प्रतिभाशाली विद्वान् कौन है ?'

सभासदस्य ज्योतिषी धाराधर ने कहा कि 'सम्राट्! इस समय दिल्ली में ही क्या अपितु भारतवर्ष में अपने विद्या, चमत्कार और अतिशय के कारण आचार्य जिनप्रभसूरि प्रसिद्ध हैं। आचार्य के गुणों की क्या प्रशंसा की जाय, वे तो साक्षात् सरस्वतीपुत्र हैं।'

सम्राट्—अच्छा ! ऐसे समर्थ विद्वान् हैं !! तो धाराधर यह बतलाओ कि वे आज कल कहाँ रहते हैं ?

धाराधर—दिल्ली का परम सौभाग्य है कि वे आज कल दिल्ली के शाहपुरा मे विराजमान हैं।

---

१. यह अध्याय स्वयं आचार्य जिनप्रभसूरि रचित कन्यानयनमहावीर-तीर्थकल्प और विद्यातिलक प्रणीत कन्यानयनमहावीरकल्प परिशिष्ट के आधार पर लिखा गया है।

२. मुहम्मद तुगलक (राज्यकाल १३२५-५१ ई०) के लिये देखें, डा० ईश्वरीप्रसाद लिखित भारत का इतिहास पृ० २२३, से २३२, मुहम्मद तुगलक का पूर्वनाम फखरुद्दीन जूना खां था। इसी के सहयोग से, इसके पिता गाजी मलिक दिल्ली पर अधिकार कर सके। जूना खां ने वारंगल विजय कर सुल्तानपुर नाम रखा था। यह वही तुगलक है जो दौलताबाद को भारत की राजधानी बना रहा था। इसी के समय में तांबे के सिक्के का प्रचार हुआ था।

सम्राट्—धाराधर ! तो क्या ऐसे प्रभावशाली आचार्य के दर्शन हमें नहीं कराओगे ?

धारा—राजन् । वे तो परम निस्पृही मुनि है । फिर भी आप की विनती है तो वे आप को अवश्य दर्शन देंगे ।

सम्राट्—तो धाराधर, यह कार्य तुम्हें सौंपा जाता है । तुम बड़े सन्मान के साथ आचार्य को यहाँ अवश्य लाना ।

बादशाह से मिलन व सत्कार

धाराधर के द्वारा सम्राट् का आमंत्रण पाकर सं० १३८५ पौष शुक्ला द्वितीया की सन्ध्या को आचार्य सम्राट् से मिले । सम्राट् ने अपने समीप ही आचार्य को बैठाकर प्रेमपूर्वक कुशल-प्रश्न किया । प्रत्युत्तर में आचार्य श्री ने नवीन पद्य रचकर आशीर्वाद प्रदान किया । आशीर्वादात्मक पद्यों का लालित्य और छटा देखकर सम्राट् बहुत प्रसन्न हुआ । लगभग अर्द्ध रात्रि तक आचार्यश्री के साथ सम्राट् की एकान्तगोष्ठी होती रही । रात्रि अधिक व्यतीत हो जाने के कारण सूरिजी ने अवशेष रात्रि वहीं महलों में ही पूर्ण की । प्रातःकाल सुल्तान ने पुनः आचार्यश्री को अपने पास बुलाया और सन्तुष्ट होकर १००० गाय, द्रव्य समूह, मनोहर एवं रमणीय उद्यान, १०० वस्त्र, १०० कम्बल एवं अगर, चंदन, कर्पूरादि सुगन्धि द्रव्य आचार्यश्री को अर्पण करने लगा । परन्तु 'जैन-साधुओं को यह सब ग्रहण करना आचार विरुद्ध है' आदि वाक्यों से सुल्तान को समझाते हुये इन सब वस्तुओं को ग्रहण करना अस्वीकार कर दिया । फिर भी सम्राट् का विशेष आग्रह देखकर, सम्राट् को अप्रीति न हो इसलिये राजाभियोग वश उनमें से कुछ कम्बल, वस्त्र आदि ग्रहण किये ।

सम्राट् ने विविधदेशीय विद्वानों के साथ आचार्यश्री की वाद-गोष्ठी करवाकर दो श्रेष्ठ हाथी मँगवाये । उनमें से एक पर आचार्य जिनप्रभसूरि को और दूसरे पर आचार्यश्री के शिष्य आचार्य जिनदेवसूरि[1] को बिठा-

---

१. देखें, 'शिष्य परिवार-परंपरा और साहित्यसर्जन' परिच्छेद ।

कर[1], मदनभेरी, झांझ, मृदंग, मर्दल, कंसाल और ढोल आदि अनेक प्रकार के शाही वादित्रों के समारोहपूर्वक, आचार्यश्री को शाहपुरा की पौषधशाला में पहुँचाया। उस समय भट्ट-चारण आदि विरुदावली गा रहे थे, राज्याधिकारी प्रधानवर्ग और चारों वर्णों की प्रजा भी प्रवेशोत्सव में सम्मिलित थी। जैन संघ में आनन्द का पार नहीं था। आचार्यश्री के जय-जयकार से दशों दिशाएँ मुखरित हो रही थीं। उपासक वर्ग ने इस सुअवसर में आडम्बर के साथ प्रवेश महोत्सव किया और याचकों को प्रचुर दान देकर सन्तुष्ट किया।

संघरक्षा और तीर्थरक्षा की फरमान

सुलतान का आचार्यश्री से सम्पर्क बढ़ता गया और आचार्यश्री की साधुता, गम्भीरता, विद्वत्ता आदि की छाप सम्राट् के हृदय पर पड़ी। उस समय जैन-समाज पर आये दिन अनेक प्रकार के उपद्रव हुआ करते थे। उनका निवारण करने के लिये आचार्यश्री ने सम्राट से एक फरमान-पत्र प्राप्त किया और उसकी नकलें प्रत्येक प्रान्तों में भिजवा दी। इससे श्वे० जैन-संघ उपद्रवरहित हुआ और शासन की विशेष उन्नति हुई। इसी प्रकार एक समय सम्राट् आचार्यश्री पर अत्यन्त प्रसन्न[2] हुआ और आचार्य के कथनानुसार सम्राट् ने तत्काल ही शत्रुंजय, गिरनार,

---

१. हाथी पर चढ़ना जैन मुनि के आचार के प्रतिकूल है किन्तु सम्राट् का आग्रह और शासन की प्रभावना को ही लक्ष्य में रखकर यह अपवाद-मार्ग ग्रहण किया प्रतीत होता है। इसी प्रकार का एक और उल्लेख प्रभावक चरित में भी सूराचार्य के लिये प्राप्त होता है।

२. स्वयं कवि रचित 'शत्रुंजयतीर्थकल्प', जिसका कि कवि ने स्वयं 'राजप्रसादकल्प' अपरनाम रखा है; जिसका कारण यही प्रतीत होता है कि सम्राट् ने प्रसन्न होकर जब तीर्थरक्षा के फरमान दिये तो आचार्य ने सम्राट् का नाम चिरकाल तक रहे—इस दृष्टि से राजप्रसाद यह नाम रखा:—

फलवद्धि आदि तीर्थों की रक्षा के लिये फरमान-पत्र लिखवाकर आचार्य को दिये। उन फरमान-पत्रों की नकलें भी तीर्थस्थानों में भेज दी गई। इसी प्रकार एक समय आचार्यश्री के उपदेश से सम्राट् ने बहुत से बंदियों को मुक्त किया।

कन्यानयनीय[1] महावीर प्रतिमा का इतिहास और उद्धार।
विक्रमपुर[2] निवासी (युगप्रवरागम जिनपतिसूरिजी[3] के चाचा[4])

प्रारम्भेप्यस्य राजाधिराजः सङ्क्षेप प्रसन्नवान्।
अतो राजप्रसादाख्यः कल्पोऽयं जयताच्चिरम्॥
श्रीविक्रमाब्दे वाणष्टविश्वदेवमिते क्षितौ।
सप्तम्यां तपसः काव्यदिवसेऽयं समर्थितः॥

(शत्रुञ्जयकल्प)

१-२. कन्यानयन और विक्रमपुर के स्थान निर्णय में काफी मतभेद है। पं० लालचन्द भगवान् गांधी दक्षिणदेश में कानानूर और उसी के निकट विक्रमपुर को स्वीकार करते हैं किन्तु श्री अगरचन्दजी भंवरलालजी नाहटा कन्यानयन को कन्याणा (जिदरियागत और विक्रमपुर जैसलमेर के निकट स्वीकार करते हैं, जो युक्तियुक्त प्रतीत होता है। यह देखिये नाहटाजी के प्रमाण—

पं० लालचन्द भगवानदास का मत है कि उपरयुक्त कन्नाणय या कन्यानयनवर्त मान कालानूर है। पर हमारे विचार से वह ठीक नहीं है। क्योंकि उपर्युक्त वर्णन में, सं० १२४८ में उधर तुर्कों का राज्य होना लिखा है; किन्तु समय दक्षिण देश के कानानूर में तुर्कों का राज्य होना अप्रमाणित है। 'युगप्रधानाचार्य गुर्वावली' में (जो कि श्री जिनविजयजी द्वारा सम्पादित होकर 'सिंघि जैन ग्रन्थमाला' में प्रकाशित होनेवाली है) कन्यानयन का कई स्थलों में उल्लेख आता है। उससे भी कन्नाणय, आसीनगर (हांसी) के निकट, बागड़ देश में होना सिद्ध है। जिस कन्यानयनीय महावीर प्रतिमा के सम्बन्ध में ऊपर उल्लेख आया है उसकी प्रतिष्ठा के विषय में भी

गुर्वावली में लिखा है कि—सं० १२३३ के ज्येष्ठ सुदी ३ को* आशिकामें बहुत से उत्सव समारोह होने के पश्चात्, आसाड महीने में कन्यानयन के जिनालय में श्री जिनपति सूरिजी ने अपने पितृव्य सा० मानदेव कारित महावीर बिंब की प्रतिष्ठा की और व्याघ्रपुर मे पार्श्वदेवगणि को दीक्षा दी। कन्यानयन के सम्बन्ध में गुर्वावली के अन्य उल्लेख इस प्रकार हैं—

संवत् १३३४ में श्रीजिनचन्द्र सूरिजी की अध्यक्षता में कन्यानयन निवासी श्रीमालज्ञातीय सा० कालाने नागोर से श्रीफलोधी पार्श्वनाथजी का संघ निकाला, जिसमें कन्यानयनादि सकल वागड़ देश व सपादलक्ष देश का संघ सम्मिलित हुआ था।

संवत् १३७५ माघ सुदी १२ के दिन नागोर में अनेक उत्सवों के साथ श्रीजिनकुशल सूरिजी के वाचनाचार्य-पद के अवसर पर संघ के एकत्र होने का जहाँ वर्णन आता है वहाँ 'श्रीकन्यानयन, श्रीआशिका, श्रीनरभट प्रमुख नाना नगर-ग्राम वास्तव्य सकल वागड देश समुदाय' लिखा है।

संवत् १३७५ वैशाख वदी ८ को मन्त्रिदलीय ठक्कुर अचलसिंह ने सुलतान कुतुबुद्दीन के फरमान से हस्तिनापुर और मथुरा के लिये नागौर मे संघ निकाला। उस समय, श्रीनागपुर, रुणा, कोसवाणा, मेड़ता, कडुयारी नवाहा, झुंझुणु, नरभट, कन्यानयन, आसिकाउर, रोहद, योगिनीपुर, धामइना, जमुनापार आदि स्थानों का संघ सम्मिलित हुआ लिखा है। संघने क्रमशः चलते हुए नरभट में श्रीजिनदत्तसूरि प्रतिष्ठित श्रीपार्श्वनाथ महातीर्थ की वन्दना की। फिर समस्त वागड़ देश के मनोरथ पूर्ण करते हुए कन्यानयन में श्रीमहावीर भगवान् की यात्रा की।

श्रीजिनचन्द्र सूरिजी ने खण्डासराय (दिल्ली) मे चातुर्मास करके मेड़ता के राणा मालदेव की विनती से विहार कर मार्ग मे धामइना, रोहद आदि नाना स्थानों से होकर कन्यानयन पधार कर महावीर प्रभु को नमस्कार किया।

*गुर्वावली, पृ० २४ के अनुसार आषाढ मास है।

संवत् १३८० में सुलतान गयासुद्दीन के फरमान लेकर दिल्ली से शत्रुंजय का संघ निकाला। वह सर्वप्रथम कन्यानयन आया, वहाँ वीर प्रभु की यात्रा कर फिर आशिका, नरभट, खाटू, नवहा, झुंझणू आदि स्थानों में होते हुए, फलोधी पार्श्वनाथजी की यात्राकर, शत्रुंजय पहुँचा उपर्युक्त इन सारे अवतरणों से कन्यानयन का, आशिका के निकट वागड़ देश में होना सिद्ध होता है। श्रीजिनप्रभ सूरिजी ने कन्यानयन के पास 'कयंवासस्थल' का जो कि मंडलेश्वर कैंमास के नाम से प्रसिद्ध था, उल्लेख किया है। मंडलेश्वर कैंमास का सम्बन्ध भी कानानूर से न होकर हाँसी के आस-पास के प्रदेश से ही हो सकता है। गुर्वावली के अवतरणों से नागौर से दिल्ली के रास्ते में नरभट और आशिका के बीच में कन्यानयन होना प्रमाणित है। अनुसन्धान करने पर इन स्थानों का इस प्रकार पता लगा है—

नरभट—पिलानी से ३ मील।

कन्यानयन—वर्तमान कन्नाणा दादरी से ४ मील जिंद रियासत में है।

आशिका—सुप्रसिद्ध हाँसी।

पं० भगवानदासजी जैन ने ठ० फेरु विरचित 'वस्तुसार' ग्रन्थ की प्रस्तावना में कन्यानयन को वर्तमान करनाल बतलाया है, परन्तु हमें यह ठीक नहीं प्रतीत होता है। गुर्वावली के उल्लेखानुसार करनाल कन्यानयन नहीं हो सकता।

इसमें अब एक यह आपत्ति रह जाती है कि श्रीजिनप्रभ सूरिजी ने स्वयं 'कन्यानयनीय-महावीरकल्प' में कन्यानयन को चोल देश में लिखा है। हमारे विचार से यह चोल देश, जिस स्थान को हम बतला रहे हैं; पूर्वकाल में उसे भी चोल देश कहते हों। इस विषय में विशेष प्रमाण न मिलने से विशेष रूप से नहीं कह सकते परन्तु गुर्वावली में महावीर प्रतिमा की प्रतिष्ठा के सम्बन्ध में जब यह उल्लेख है कि—सं० १२३३ के ज्येष्ठ सुदी ३ को, आशिका में धार्मिक उत्सव होने के पश्चात् आषाढ़ में ही

कन्यानयन में महावीर विंब की प्रतिष्ठा श्रीजिनपति सूरिजी द्वारा हुई; और वहाँ से फिर व्याघ्रपुर आकर पार्श्वदेव को दीक्षित किया। श्रीजिनप्रभसूरिजी ने भी प्रतिमा को 'सा० मानदेव कारित, सं० १२३३ आषाढ सुदी १० को प्रतिष्ठित, मानदेव को श्रीजिनपति सूरिजी का चाचा होना, और प्रतिष्ठा भी श्रीजिनपति सूरिजी द्वारा होना' लिखा है। उसी प्रकार ये सारी बातें प्राचीन गुर्वावली से भी सिद्ध और समर्थित है। पिछले उल्लेखों में भी जो कि कन्यानयन के महावीर भगवान् की यात्रा के प्रसङ्ग में है, कन्यानयन को वागड़ देश में आशिका के पास ही बतलाया है। इन सब बातों पर विचार करते हुए हमारी तो निश्चित राय है कि कन्यानयन कानानूर न होकर वर्त्तमान कन्नाणा ही है। जिस प्रकार वागड़ देश ४ है, इसी प्रकार चोल देश भी दो हो सकते हैं।

विक्रमपुर स्थल-निर्णय

सा० मानदेव के निवास स्थान विक्रमपुर को पं० लालचंद भगवान दास ने दक्षिण के कानानूर के पास का बतलाया है; पर यह विक्रमपुर तो निश्चितया जेसलमेर के निकटवर्ती वर्तमान विक्रमपुर है। श्रीजिनपति सूरिजी के रासमें 'अत्थिमरुमंडले नयरविक्कमपुरे' शब्दों से विक्रमपुर को मरुस्थल में सूचित किया है। संभव है सा० मानदेव व्यापारादि के प्रसङ्ग सेवागड़ देश के कन्यानयन में रहते हों और वहाँ श्रीजिनपति सूरिजी के जाने पर महावीर भगवान् की प्रतिष्ठा कराई हो। 'जैन स्तोत्र संदोह' भा० २ की प्रस्तावना, पृ० ४० में इस विक्रमपुर को बीकानेर बतलाया है, पर यह भूल है। बीकानेर तो उस समय बसा भी नहीं था, उसे तो राव बीकाने, सं० १५४५ में बसाया है। पूर्वका विक्रमपुर जेसलमेर निकटवर्ती वर्तमान विक्रमपुर ही है।

३. युगप्रम सगम जिनपतिसूरि के लिए देखें, लेखककृत खरतरगच्छ का इतिहास, प्रथम खंड।

शाह मानदेव ने २३ अंगुल प्रमाण मम्माण प्रस्तर की महावीर स्वामी की प्रतिमा का निर्माण करवाकर सं० १२३३ आषाढ शुक्ला १० गुरुवार को आचार्य जिनपतिसूरिजी के करकमलों से, प्रतिष्ठा करवाकर गोल-देशस्थ कन्यानयन में स्थापित की ।

सं० १२४८ में पृथ्वीराज चौहान के सुरत्राण शहाबुद्दीन गोरी द्वारा मारे जाने पर, सम्राट पृथ्वीराज चौहान के अंतरंगसखा, राज्यप्रधान सेठ रामदेव ने कन्यानयनीय श्रावक संघ को लिखा—'तुर्कों का राज्य हो गया है अतः श्री महावीर स्वामी की प्रतिमा को प्रच्छन्न रूप से रखना आवश्यक है ।' इस संदेश को पाकर कन्यानयनीय उपासकों ने दाहिमकुलमंडन

४. मुनि जिनविजय संपादित जैन पुस्तक प्रशस्ति संग्रह, प्रशस्ति नं० ५४ के अनुसार शाह मानदेव जिनपतिसूरि के बाबा (पिता के बड़े भाई) थे—

प्रगुणगुणमयोऽत्र पार्श्वनामा ध्वजकमलां कलशांचकार साधुः ।
स्म जयति भृगं मृगांकगं, यो मधुरयशः कलकिंकिणीप्रगानैः ॥ २ ॥

चत्वारो मानदेवः कुलधर-महदेवो यशोवर्द्धनोऽस्य,
श्रीभर्तुर्वाहुभूता अजनिषत सुता धर्मकर्मप्रवीणाः ।
तत्पुत्रा मानदेवाद् य इह धनदेवस्तथा राजदेवो,
निम्यार्काश्चाधिराजन् हिमगिरिन इव स्वर्गसिन्धुप्रवाहाः ॥ ३ ॥

देवधर-लोहदेवौ जातौ कुलधरांगजौ ।
शब्दाभ्यां कुंडलाभाभ्यां पुण्यश्रीः समभूष्यत ॥ ४ ॥

विश्रेजे मुनिचन्द्रमा जिनपतिः पुत्रो यशोवर्धन-
श्रीरात्रौजिनचन्द्रविष्णुपदमाक्रान्तं निशान्तं महत् ।
बालेनापि हि येन साधुषु महत्स्वोतिष्ठ राज्यं दधे:
दीपानां निरगात् स्थिरां पितृकुलं विश्वं च संदीपितं ॥ ५ ॥

मंडलेश्वर कैंमास के नाम से बने हुये 'कयंवासस्थल' में विपुलवालू के नीचे प्रतिमा को गाड़ दी।

सं० १३११ के अतिदारुण दुर्भिक्ष में जीविकोपार्जन के लिये जोजओ नामक सूत्रधार सकुटुम्ब कन्यानयन से सुभिक्ष देश की ओर चला। 'प्रथम प्रयाण थोड़ा ही करना चाहिये' यह विचार कर सूत्रधार ने कयंवास स्थल मे ही रात्रिनिवास किया। अर्धरात्रि में स्वप्न में अधिष्ठायक ने उससे कहा—'जहाँ तुम शयन कर रहे हो उससे कुछ हाथ नीचे भगवान् महावीर स्वामी की प्रतिमा है। तुम इसे प्रकट करो। तुम्हें भी देशान्तर जाने की जरूरत नही है। तुम्हारा निर्वाह यहीं हो जायगा।' सूत्रधार जोजक स्वप्न देखकर ससंभ्रम उठा और उस स्थान को अपने पुत्रादि से खुदवाने पर महावीर प्रभु की प्रतिमा प्रकट हुई। अत्यंत प्रमुदित होकर सूत्रधार ने नगर में जाकर समाज को सूचित किया। उपासकवर्ग ने भी महोत्सव के साथ चैत्य में प्रतिमा को स्थापित की और सूत्रधार की आजीविका बाँध दी।

उस स्थान पर प्रतिमा के परिकर की खूब शोध की, किन्तु परिकर प्राप्त न हुआ। किसी स्थल में दबा हुआ होगा। उसी परिकर पर प्रशस्ति लेखादि संभव है।

एक समय न्हवण (स्नान) कराने के पश्चात् प्रभु-प्रतिमा पर प्रस्वेद झरने लगा। बारंबार पोंछने पर भी पसीना बंद नहीं हुआ। इससे उपासकवर्ग ने यह निश्चय किया कि यहाँ निश्चय रूप से उपद्रव होनेवाला है। इतने में ही प्रभात के समय जटकुअ लोगों की धाड़ आई और उसने चारों तरफ से नगर को नष्टकर दिया। इस प्रकार प्रकट प्रभावी भगवान् महावीर कयं-वास स्थल में सं० १३८५ तक उपासक वर्ग द्वारा पूजित रहे।

सं० १३८५ में आसीनगर (हाँसी) के अल्लविवयंदा के क्रूर-पुरुषों ने तत्रस्थ उपासक वर्ग और साधुओं को बंदी बनाकर उनकी विडंबना की। इन्हीं क्रूरों ने पार्श्वनाथप्रभु की पाषाण-प्रतिमा खंडित कर दी और महावीरप्रभु की चमत्कारी प्रतिमा को अखंडित रूप से ही बैलगाड़ी में

रखकर दिल्ली ले आए। उस समय सम्राट मुहम्मद तुगलक देवगिरि में था। अतः उसके आने पर उसके आदेशानुसार व्यवस्था करने के विचार से उस प्रतिमा को तुगलकाबाद के शाही भंडार में रखवा दी। इस प्रकार यह प्रतिमा १५ महीनों तक तुर्कों के अधिकार में रही।

महावीर स्वामी की इस प्रतिमा का यह वृत्तान्त होने पर आचार्य जिनप्रभ सोमवार के दिन राजसभा में आये। उस समय वृष्टि हो रही थी जिससे आचार्य के चरण-कमल कीचड़ से भर गये थे। सम्राट मुहम्मद तुगलक ने यह देखकर मल्लिक काफूर द्वारा अच्छे वस्त्र-खंड से आचार्य के चरण पुंछवाये। आचार्य ने भावगर्भित काव्य द्वारा आशीर्वाद प्रदान किया। उस आशीर्वादात्मक काव्य की व्याख्या सुनकर सम्राट अत्यन्त प्रसन्न हुआ। अवसर देखकर आचार्यश्री ने उपर्युक्त महावीर-प्रतिमा का समस्त वृत्तान्त बतलाकर सम्राट से, उसे जैन-संघ को अर्पित कर देने के लिये कहा। सम्राट ने आचार्य की अभिलाषा सहर्ष स्वीकार की और उसी समय तुगुलकाबाद के खजाने से असुरग मल्लिकों के कन्धे पर विराजमान करवाकर प्रभु-प्रतिमा को राजसभा में मँगवाया और दर्शन करके महावीर प्रतिमा आचार्य को समर्पित की। उस चमत्कारी प्रतिमा की प्राप्ति से जैन-संघ को अपार हर्ष हुआ। समस्त संघ ने सम्मिलित होकर बड़े समारोह के साथ शिविका (पालकी) में विराजमान कर 'मल्लिकताजदीन सराय' के जिन-मन्दिर में उसे स्थापित की। सूरिजी ने वासक्षेप किया और उपासक-गण प्रतिदिन पूजन करने लगे।

देवगिरि की ओर विहार और प्रतिष्ठानपुर यात्रा

आचार्य जिनप्रभ ने दिल्ली में इस प्रकार धर्म-प्रभावना करते महाराष्ट्र (दक्षिण) प्रान्त की ओर प्रस्थान किया। सम्राट ने आचार्य श्री के प्रवास में सब प्रकार की सुविधाएँ प्रस्तुत कर दीं। सूरिजी ने सम्राट् एवं स्थानीय संघ के संतोष के निमित्त स्वशिष्य श्री जिनदेवसूरि को १४ साधुओं

के साथ दिल्ली में ठहरने की आज्ञा दी। सूरिजी विहार-मार्ग के अनेक नगरों में धर्म एवं शासन-प्रभावना करते हुये देवगिरि (दौलताबाद) पहुँचे। स्थानीय संघ ने प्रवेशोत्सव किया। वहाँ से संघपति जगसिंह[1], साहण, मल्लदेव आदि संघ-मुख्यों के साथ प्रतिष्ठानपुर पधारे और जीवंत मुनिसुव्रत-स्वामी की प्रतिमा के दर्शन किये। यात्रा करके संघ सहित आचार्य श्री पुन: देवगिरि पधारे।

देवगिरि के जैन मन्दिरों की रक्षा

एक समय शाह पेथड़[2], सहजा[3] और ठ० अचल के निर्मापित जिन-मन्दिरों का तुर्क लोग नाश करने लगे, उस समय आचार्य जिनप्रभ शाही फरमान दिखलाकर उन मन्दिरों की रक्षा की। इस प्रकार और भी अनेक तरह से शासन एवं धर्म-प्रभावना करते हुये, शिष्यों को सिद्धांत-वाचना और तपोद्वहन कराते हुये तीन वर्ष (सं० १३८५-८७) देवगिरि

---

१. जिनप्रभसूरिजी सर्वत्र चैत्य परिपाटी करते हुए पीरोज सुरत्राण (मुल्तान महमद) के साथ देवगिरि पहुँचे। उस समय संघपति जगसिंह ने बहुत द्रव्य व्यय कर प्रवेशोत्सव किया। स्थानीय चैत्यों की वन्दना करते हुये सूरिजी जगसिंह के गृह-मन्दिर पर आये। वहाँ वैडूर्यरत्न, स्फटिकरत्न, स्वर्ण, रूप्यमय जिन-प्रतिमाओं को देखकर सूरिजी भाव-विह्वल होकर सिर घुमाने लगे। सं० जगसिंह के कारण पूछने पर कहा—'मैंने बहुत स्थानों में जिन-मन्दिरों और गुरुवों का वन्दन किया, किन्तु एक तो आज तुम्हारे गृह-मन्दिर को स्थावर तीर्थरत्न और दूसरे जंगम तीर्थरत्न जंघरालपुर में तपागच्छीय सोमतिलकसूरि को देखा है।

—शुभशीलगणि कृत कथाकोष.

२-३. देखें, पं० लालचन्द्र भगवान् गांधी लिखित जिनप्रभसूरि अने सुल्तान मुहम्मद, पृ० ७८ से १०२.

(दौलताबाद) में ही व्यतीत किये। इसी बीच सूरिजी ने बहुत से उद्भट वादियों को शास्त्रार्थ में पराजित किया।

सम्राट् का पुनः स्मरण और आमन्त्रण

एक समय सम्राट् मुहम्मद तुगलक दिल्ली की राज्यसभा में अनेक देशीय विद्वानों के साथ विद्वच्चर्चा कर रहे थे। सम्राट को किसी शास्त्रीय विचार में सन्देह उत्पन्न हो जाने पर एवं उपस्थित पण्डित-मंडली से संतोषजनक समाधान प्राप्त न होने से एकाएक आचार्य जिनप्रभ का स्मरण आया और सम्राट् ने कहा—'यदि इस समय राजसभा में वे आचार्य विद्यमान होते तो अवश्य ही हमारे संदेह का निराकरण हो जाता। सचमुच में उनके जैसा पाण्डित विश्व में अलभ्य है।' इस प्रकार सम्राट् के मुख से आचार्य जिनप्रभ की प्रशंसा सुनकर दौलताबाद से आये हुये ताजुलमल्लिक ने सिर झुकाकर निवेदन किया—'स्वामिन्! वे महात्मा अभी दौलताबाद में हैं, परन्तु वहाँ का जल-वायु अनुकूल न होने से वे बहुत कृश हो गये हैं।' यह सुनकर प्रसन्नतापूर्वक सूरिजी के गुणों का स्मरण करते हुये उस मल्लिक को आज्ञा दी कि तुम शीघ्र ही दुबीरखाने जाकर फरमान लिखाकर सामग्री सहित भेजो, जिससे वे आचार्य देवगिरि से यहाँ शीघ्र पहुँच सकें। सम्राट की आज्ञा से ताजुलमल्लिक ने वैसा ही किया। शाही फरमान यथासमय दौलताबाद के दीवान के पास पहुँचा। सूबेदार कुतुबुलखान[1] ने सूरिजी को दिल्ली पधारने के लिये सविनय प्रार्थना करते हुये शाही फरमान बतलाया।

देवगिरि से प्रयाण और अल्लावपुर में उपद्रव-निवारण

सम्राट् के आमंत्रण को महत्त्व देकर आचार्य जी ने सप्ताह भर में

1. इतिहास में जिसे कुतुबुलखान मल्लिक कवनामुद्दीन कहा जाता है, यह शायद वही है—देखें केम्ब्रीज हिस्ट्री आफ इण्डिया, वॉ. ३, पृ० १३० १५४, १५५, १६५.

(१० दिन बाद) तैयार होकर ज्येष्ठ सुदी १२ को राजयोग में संघ के साथ वहाँ से प्रस्थान किया। स्थान-स्थान पर धर्म-प्रभावना करते हुये आचार्य श्री अल्लावदुर्ग पधारे। असहिष्णु म्लेच्छों को एक जैनाचार्य की इस प्रकार की महिमा सह्य नहीं हुई। उन लोगों ने संघ की बहुत-सी वस्तुएँ छीनली और इसी प्रकार अनेक उपद्रव करने प्रारंभ किये। जब इस उपद्रव के संवाद दिल्ली में स्थित आचार्य जिनदेव सूरि को मिले तो वे उसी समय सम्राट् से मिले और सारी विपत्ति की स्थिति बतलाई। सम्राट् ने उसी समय बहुमानपूर्वक फरमान भेजकर वहाँ के मल्लिक द्वारा संघ की सारी वस्तुएँ वापिस दिला दीं। इससे उन लोगों पर सूरिजी का अद्भुत प्रभाव पड़ा। सूरिजी ने डेढ़ मास की अल्लावपुर में स्थिरता की। वहाँ से प्रस्थान कर क्रमशः प्रवास करते हुए जब सूरिजी सिरोह पहुँचे तो सम्राट् ने उन्हें देवदूष्य सदृश सुकोमल १० वस्त्र भेज कर सत्कृत किया। वहाँ से विहार करके सूरिजी दिल्ली पहुँचे।

दिल्ली में सम्राट् से पुनर्मिलन

जैन संघ और सम्राट् उनके दर्शनों के लिये चिरकाल से उत्कण्ठित था ही, पूज्यश्री के शुभागमन से उनका हृदय अत्यन्त प्रफुल्लित हो गया। भाद्रपद शुक्ला २ के दिन मुनिमण्डल एवं श्रावकसंघ के साथ आचार्यश्री राजसभा में पधारे। सम्राट् ने मृदुवचनों से वन्दन पूर्वक कुशल प्रश्न पूछा और अत्यन्त स्नेहवश सूरिजी के करकमल का चुम्बन कर अपने हृदय पर रखा। आचार्यश्री ने तत्काल ही नूतन पद्यों द्वारा आशीर्वाद दिया, जिसे सुनकर सम्राट् का चित्त अत्यन्त चमत्कृत हुआ। सूरिजी के साथ वार्तालाप होने के अनन्तर विशाल महोत्सवपूर्वक अपने हिन्दुराजाओं, दीनार आदि मल्लिकों और प्रधान पुरुषों के साथ अनेक प्रकार के वादित्रादि बजवाते हुये सम्मानपूर्वक सम्राट् ने सुलतान सराय की पौषधशाला में आचार्यश्री को पहुँचाया। यह प्रवेशोत्सव अपूर्व आनन्ददायक और दर्शनीय था।

पर्युषण में धर्म-प्रभावना

भाद्रपद शुक्ला ४ के दिन संघ ने महोत्सवपूर्वक पर्युषणाकल्प (कल्पसूत्र) सूरिजी से भक्तिपूर्वक श्रवण किया। सूरिजी के आगमन और शासनप्रभावना के पत्र पाकर देशान्तरीय संघ हर्षित हुआ। सूरिजी ने राजवन्दी श्रावकों को लाखों रुपयों के दण्ड से मुक्त कराया एवं अन्य लोगों को भी करुणावान् आचार्यश्री ने कैद से छुड़ाया। जो लोग अवकृपा प्राप्त हो गए थे वे भी सूरिजी के प्रभाव से पुनः प्रतिष्ठा प्राप्त कर सके। सूरिजी प्रतिदिन राजसभा में जाते थे, उन्होंने अनेक वादियों पर विजय प्राप्त कर शासन की शोभा बढ़ाई थी।

फाल्गुन मास में, दौलताबाद से सम्राट् की जननी मखदूमईजहाँ के आने पर चतुरंग सेना के साथ बादशाह उसकी अभ्यर्थना में सन्मुख गया। उस समय आचार्यश्री भी सम्राट् के साथ थे। बदायूण स्थान में माता से मिलकर सम्राट् ने सबको प्रचुर दान दिया। प्रधानादि अधिकारियों को वस्त्रादि देकर सत्कृत किया। वहाँ से दिल्ली आकर सूरिजी को वस्त्रादि देकर सन्मानित किया।

दीक्षा और बिम्ब प्रतिष्ठादि उत्सव

चैत्र शुक्ला १२ को राजयोग में सम्राट् की अनुमति से उसके दिये हुए साईवाण की छाया में नन्दी स्थापना की। सूरिजी ने वहाँ ५ शिष्यों को दीक्षित किया। मालारोपण, सम्यक्त्व ग्रहण आदि धर्मकृत्य हुए। स्थिरदेव के पुत्र ठ० मदन (बंभदत्त) ने इस प्रसंग पर बहुत-सा द्रव्य व्यय किया।

आषाढ़ शुक्ला १० को नवीन निर्मित १३ जिन-प्रतिमाओं की सूरिजी ने महोत्सवपूर्वक प्रतिष्ठा की। बिम्बनिर्माता एवं सा० पहराज के पुत्र अजयदेव ने प्रतिष्ठा महोत्सव में पुष्कल द्रव्य व्यय किया।

सम्राट् समर्पित भट्टारकसराय में प्रवेश

सुल्तानसराय राजसभा से काफी दूर था; अतः सूरिजी को हमेशा

आने में कष्ट होता है ऐसा विचार कर सम्राट् ने अपने महल के निकटवर्ती सुन्दर भवनों से सुशोभित नवीन सराय समर्पण किया। श्रावकसंघ को वहाँ पर रहने की आज्ञा देकर सम्राट् ने उसका नाम भट्टारकसराय प्रसिद्ध किया। सम्राट् ने वहाँ महावीर स्वामी का मन्दिर तथा पौषधशाला बनवाई। सं० १३८९ आषाढ कृष्णा सप्तमी ७ को उत्सवपूर्वक सूरिजी ने नवीन पौषधशाला मे प्रवेश किया। इस प्रसंग पर विद्वानों एवं दीन-अनाथों को यथेष्ट दान दिया गया।

मथुरातीर्थ का उद्धार

सं० १३९३ मार्गशीर्ष महीने में सम्राट् ने पूर्व देश की ओर विजय प्राप्त करने के हेतु ससैन्य प्रस्थान[1] किया। उस समय उन्होंने सूरिजी को भी विज्ञप्ति करके अपने साथ में लिये। स्थान-स्थान पर शासन भावना करते हुये सूरिजी ने मथुरा तीर्थ का उद्धार करवाया।

हस्तिनापुर की यात्रा और प्रतिष्ठा

शाही सेना के साथ पैदल विहार करते हुए वृद्धावस्था के कारण सूरिजी को कष्ट होता है, यह विचार कर सम्राट् ने खोजेजहाँ[2] मल्लिक के साथ उन्हें आगरे से दिल्ली लौटा दिया। हस्तिनापुर की यात्रा का फरमान लेकर आचार्यश्री दिल्ली पहुँचे। चतुर्विधसंघ हस्तिनापुर की यात्रा के निमित एकत्र हुआ। शुभ मुहूर्त में बोहित्थ (वाहड़पुत्र) को संघपति का

---

१. ईस्वी सन् १३३३ (वि० सं० १३९०) में मुहम्मद तुगलक ने पूर्व देश विजय यात्रा के लिये प्रस्थान किया। देखें, केम्ब्रीज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, वॉ० ३, पृ० १४७-१४८.

२. ख्वाजाजहाँन् मुहम्मद तुगलक का प्रधान व्यक्ति था। देखें केम्ब्रीज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, वॉ० ३, पृ० १३४, १४०, १४३, १४८, १५२, १५८, १७२.

तिलक कर वहाँ से प्रस्थान किया।[1] संघपति बोहित्थ ने स्थान-स्थान पर महोत्सव किये।

तीर्थभूमि में पहुँच कर तीर्थ को बधाया। नवनिर्मित शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ आदि तीर्थंकर प्रतिमाओं की सूरिजी ने प्रतिष्ठा की। अम्बिकादेवी की प्रतिमा स्थापित की। संघपति बोहित्थ ने संघवात्सल्यादि महोत्सव किये। संघ ने वस्त्र, भोजनादि द्वारा याचकों को सन्तुष्ट किया।

तीर्थयात्रा से लौटकर सूरिजी ने वैशाख शुक्ला १० के दिन संपूर्ण कल्मष और विघ्नों को दूर करनेवाले श्रीकन्यानयनीय महावीर-प्रतिमा को सम्राट् द्वारा बनाये हुए जैन मन्दिर में महोत्सवपूर्वक स्थापित किया।

इधर सम्राट् भी दिग्विजय करके दिल्ली लौटा। जैन-मन्दिर और उपाश्रयों में उत्सव होने लगे। सम्राट् एवं सूरिजी का सम्बन्ध उत्तरोत्तर घनिष्ठता को प्राप्त करने लगा, अतः सूरिजी और सम्राट् दोनों के द्वारा जिनशासन की बड़ी प्रभावना होने लगी। सूरिजी के प्रभाव से दिगम्बर एवं श्वेताम्बर समस्त जैन-संघ व तीर्थों के उपद्रव शाही फरमानों के द्वारा सर्वथा दूर हो गए।

स्वर्गवास

जिस प्रकार आचार्यश्री के जन्म-संवत् का उल्लेख प्राप्त नहीं है। उसी प्रकार स्वर्गवास के समय का भी कोई ऐतिह्य उल्लेख प्राप्त नहीं है।

---

१. शक सं० १२५५ सं० १३९० वैशाख शुक्ला ९ को संघ के साथ यात्रा करने का उल्लेख स्वयं सूरिजी ने 'अपापुरस्तोत्र' में इस प्रकार किया है—

"दाथं पुषरकै त्रियँया कमिते" शकाब्दे,
वैशाखमासिसितपक्षगषष्ठतिथ्याम् ।
यात्रोत्सवोत्सवः संघयुतो मुनीन्द्रः,
स्तोत्रं व्यधाद् पापुरस्य जिनप्रभाख्यः ॥"

आचार्य के प्रणीत ग्रन्थों के आधार पर ही अनुमान किया जा सकता है। आचार्य जी के अनेक ग्रन्थों में तो रचना-समय का निर्देश भी नही है। कतिपय ग्रन्थों में सम्वत् का उल्लेख अवश्य प्राप्त है।

संवत् उल्लेख की दृष्टि से 'कातन्त्रविभ्रम टीका' की रचना सं० १३५२ में हुई। अत. आचार्यपद-प्राप्ति के पश्चात् यह इनकी सर्वप्रथम रचना मानी जा सकती है और अन्तिम रचना 'महावीरगणधरकल्प' सं० १३८९ की है। इसके पश्चात् की कोई सम्वत् उल्लेख वाली रचना अभी तक प्राप्त नही हुई है। इसलिए जिनप्रभसूरि का स्वर्गवास का समय वि० सं० १३९० के आसपास ७२-७५ वर्ष की अवस्था मे अनुमान से निर्धारित किया जा सकता है।

चमत्कारी घटनाएँ

"नमस्कार है चमत्कारको" की उक्ति को आचार्यजी ने चरितार्थ कर दिखाई है। चमत्कारों का प्रयोग या घटनाओं की ख्यातियाँ जितनी श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय में दादा जिनदत्त सूरि, दादा जिनकुशल सूरि और जिनप्रभसूरि को प्राप्त है उतनी संभवतः किसी अन्य आचार्य की नही। वैसे जैन-साधु को स्वार्थ से चमत्कार दिखाना साधु-मर्यादा के विपरीत है किन्तु शासनसेवा या प्रभावना या उन्नति के निमित्त प्रयोग करना वर्जित नहीं है। आचार्य जिनप्रभ ने परिस्थितियों के अनुसार धर्म-प्रसार और शासनोन्नति के लिये ही इस शक्ति का आश्रय लिया था। पहले कहा जा चुका है कि प्रभावती देवी आपको प्रत्यक्ष थी और उसके सान्निध्य से ही आपने करामात दिखाए। आपके और दादाओं के चमत्कारों में अन्तर इतना ही है कि आपके चमत्कार जीवन तक ही सीमित रहे और दादाओं के चमत्कार आज भी स्थान-स्थान पर देखे जा सकते है।

जिनप्रभ के करामातों का कोई मौलिक विवरण तो प्राप्त है नही, किन्तु परवर्ती ग्रन्थकारों—शुभशीलगणि (पंचशतीप्रबन्ध) सोमधर्म

गणि (उपदेशसप्ततिका) और वृद्धाचार्यप्रबन्धावलिकार ने कुछ-कुछ घटनाओं का उल्लेख किया है; उन्हीं के आधार पर घटनाओं का उल्लेख यहाँ पर किया जा रहा है।

मुहम्मद शाह से मुलाकात

एक समय आचार्य शौच के लिए योगिनीपुर के बाहर गए हुए थे। उस समय मिथ्यादृष्टि अनार्यों (मुसलमानों) ने आचार्य पर पत्थरों की वर्षा करने लगे। आचार्य ने अंतःकरण में ही पद्मावती से कहा—देवि, तुमने मेरा स्वागत तो सुन्दर करवाया ? देवी ने उसी समय उन मुसलमानों की पूजा और ताडना की। वे भय से भागकर महम्मदशाह के पास गये और सारी घटना कही। घटना से चमत्कृत होकर शाह ने पूछा कि वह पुरुष कहाँ है ? उन्होंने कहा कि हमने नगर के बहिर्प्रदेश में उसे देखा था। शाह ने उसी समय प्रधान पुरुषों को बुलाकर आदेश दिया—जाओ, तुम उस पुरुष को यहाँ लेकर आओ, जिससे मैं उसको देख सकूँ। आदेश के अनुसार प्रधान पुरुषों ने आचार्य के पास आकर निवेदन किया—स्वामिन्! आप हमारे शाह के पास पधारें और उसके बाद आप अपनी इच्छानुसार कहीं भी पधारें। आचार्य उन पुरुषों के साथ राजमहल के द्वार तक आकर ठहर गये। प्रधान पुरुषों ने जाकर शाह से निवेदन किया कि वह पुरुष द्वार पर उपस्थित है। जिस समय पुरुष शाह से कह रहे थे उस समय आचार्य ने अपने शिष्यों से कहा—'मैं कुम्भकासन करता हूँ।' जब शाह आवे तब कहना कि—'ये हमारे गुरु हैं।' जब शाह कहे कि 'जिस अवस्था में थे उसी स्वरूप में करो।' तो उस समय तुम अन्न से सिंचित भीना वस्त्र मेरे स्कंध पर रखकर उठा देना। इस प्रकार कह कर आचार्य ध्यान में बैठे—कुम्भ समान हो गये। उसके बाद महम्मद शाह ने आकर पूछा—'तुम्हारा गुरु कहाँ है ?' शिष्यों ने कहा—'आपके सम्मुख ही तो बैठे हैं!' शाह ने कहा—'जिस स्वरूप में थे वैसा करो।' तब शिष्यों ने भीना वस्त्र कर स्वस्थ अवस्था में किया। आचार्य ने उस

कर शाह को धर्मलाभ आशीष दी और वार्ता में संलग्न हो गये।

महम्मदशाह की राणी वालादे का व्यंतरोपद्रव दूर करना

महम्मदशाह ने आचार्यश्री से कहा—'भगवन्! मेरी प्राणप्रिया राणी वालादे है। उस पर व्यंतर का प्रकोप होने के कारण वह वस्त्र धारण नही करती है और न शरीर स्वस्थता का ही ख्याल रखती है। मैंने उपचार के लिये अनेको मन्त्र-तन्त्रवादियों को बुलाये किन्तु वह जिस किसी भी उपचारक को देखती है तो पत्थर और लकड़ियों से उसे मारती है। अतः कृपा करके उसे स्वस्थ कीजिए और उसे चल कर देखिये।' आचार्य ने कहा—'तुम उसके पास जाकर विनम्र शब्दों में कहो कि "जिनप्रभसूरि तुम्हारे पास आ रहे हैं।" शाह ने उसी प्रकार जाकर कहा। रानी जिनप्रभसूरि का नाम सुनते ही सहसा उठ खड़ी हुई और दासी को कहा—'मेरे वस्त्र लावो।' दासियों ने तत्काल ही वस्त्र लाकर उसे पहनाये। इस कथन के प्रभाव को देखकर शाह चमत्कृत हुआ और आचार्य के पास आकर कहा—'आप उसके पास जाकर उसे देखिये।' आचार्य वालादे के समीप गये और उसे देखकर आचार्य ने कहा—'रे दुष्ट! तू यहाँ कैसे आया? यहाँ से चला जा।'

व्यंतर—मुझे अच्छा घर मिला है, छोड़कर कैसे जाऊं?

आचार्य०—तेरे लिये दूसरा स्थान नही है?

व्यं—ऐसा सुन्दर घर नही है।

उसी समय आचार्य ने मेघनाद क्षेत्रपाल को बुलाकर आदेश दिया कि इस व्यंतर को दूर करो। मेघनाद ने उसे अत्यधिक पीडित किया। उस समय व्यंतर ने कहा—'मैं भूख से पीडित हूँ। मुझे कुछ खाने के लिये दो?"

आ०—तुझे खाने के लिये क्या दें?

व्यं०—भैंसे का मांस आदि दीजिये।

आ०—'मेरे सन्मुख ऐसे मत बोल। मैं तुझे गांठ-बंधनों से बांधता हूँ' कहकर नृसिंह मंत्र का जाप करने लगे।

व्यं०—स्वामी, तुम सब जीवों को अभयदान देने वाले हो-तो अभयदानी होकर मुझे क्यों दुःख देते हो ?

आ०—तुम इस स्थान से चले जाओ।

व्यं०—मुझे कुछ भी खाने के लिये दीजिये।

आ०—क्या दें ?

व्यं०—घी-गुड़ के साथ रोटी दीजिये।

शाह०—घी, गुड़ के साथ रोटी मैं देता हूँ।

आ०—मुझे कैसे प्रतीति हो कि तू यहाँ से चला गया ?

व्यं०—मेरे जाने के साथ ही अमुक-पीपल के वृक्ष की डाली टूट जायगी—यही निशानी है। रात्रि को यही हुआ।

प्रभात में बालादे राणी को स्वस्थ और सुसंस्कृत देखकर शाह अत्यधिक प्रसन्न हुआ और बोला—प्रिये ! जो ये महान् प्रभावक आचार्य न आये होते तो तुम कहाँ होती ? यह सुनकर बालादे ने कहा—स्वामिन् ! यह पूज्य पुरुष मेरे माता-पिता के समान हैं। इन पूज्य का आप अच्छी तरह से स्वागत-सत्कार करें और राजसिंहासन के अर्धासन पर विठावें। शाह ने स्वीकार किया। शाह समय-समय पर गुरु के स्थान पर जाते थे और गुरु को अपने राजमहलों में लाते थे और अर्धासन पर विठाते थे।

राघव चैतन्य का अपमान

एक समय बनारस से चौदह विद्याओं का पारगामी मंत्र-तंत्रों का जानकार राघवचैतन्य[1] नाम का महाविद्वान् योगिनीपुर आया और शाह से

---

१. राघव चैतन्य के संबंधों में पं० लालचन्द्र भगवान् गांधी ने वह जिनप्रभसूरि अने सुलतान मुहम्मद, पृ० १४१ की टिप्पणी में लिखा है—

"एपिग्राफिआ इन्डिका (पृ० १९३-१९४) मां तथा निर्णयसागर प्रेसनी प्राचीन लेखमाला (भा० २ ले० १००) मां प्रगट थयेल समर

मिला। मुहम्मदशाह ने उसे सत्कार किया। वह शाह की सभा में प्रतिदिन आता था। एक समय सभा में आचार्य राघवचैतन्य आदि विद्वान् वार्ता-विनोद कर रहे थे उस समय आचार्य के प्रभाव से असहिष्णु होकर राघव-चैतन्य ने ईर्ष्या और दुष्टता से विचार किया कि जैसे-तैसे इस पर कोई लांछन लगाकर, अपमानित करवाकर यहाँ से निकलवा दूँ, तब भी मेरे प्रभाव में वृद्धि होगी। ऐसा विचार कर विद्याबल से शाह के हाथ से मुद्रिका हरण कर आचार्य न जाने इस प्रकार आचार्य के रजोहरण में नांख दी। प्रभावती ने तत्काल ही आचार्य को कहा—'राघव चैतन्य ने शाह की मुद्रिका हरण कर तुम्हारे रजोहरण में नांख दी है, सावधान रहो। उसी समय आचार्य ने वह मुद्रारत्न लेकर राघव चैतन्य न जाने इस प्रकार उसके मस्तकोपरिवस्त्र पर रख दी। इसी समय मुहम्मदशाह अपनी अंगुली

छटावाला ज्वालामुखी देवी स्तोत्रना रचनार राघव चैतन्य मुनि आ जणाय छे। ते स्तोत्र (शिलालेख) मां तेना नामनुं सूचन छे, कांगडा (पंजाब) ना राजा संसारचन्द्रनी प्रशस्ति पछी त्यां प्रस्तुत साहि महम्मदनी कीर्ति-रूप ते परमयोगिनी (ज्वालामुखी) ने सूचवामां आवी छे—

श्रीमद्राघवचैतन्यमुनिनाब्रह्मवादिना।

[स्तव] रत्नावली सेयं ज्वालामुख्यै समर्पिता।

श्रीमत्साहिमहम्मदस्य जयतात् कीर्तिः परायोगिनी।

नि. सा. नी काव्यमालाना प्रथम गुच्छकना प्रारंभमां मूकायेल मंत्र-मालागर्भित महागणपतिस्तोत्रना कर्तापण आ कवि जणाय छे। तेनी व्याख्या-टिप्पणीमां तेने 'परमहंस परिव्राजकाचार्य' विशेषण थी परिचय कराव्या छे। शार्ङ्गधरे शार्ङ्गधरपद्धति (सुभाषितावली) मां केटलांक पद्यो 'श्रीराघवचैतन्यश्रीचरणानां' उल्लेख साथे सूचवेलां छे, तथा शार्ङ्गधरे हम्मीर चाहुवाण (चौहाण) नी राजसभाने शोभावनार द्विजागुर्णी राघवदेवना पौत्रतरीके पोतानो परिचय कराव्यो छे। एथी ए राघवदेव ज सन्यासी थया पछी राघवचैतन्य नामे प्रसिद्ध थया हशे-एम जणाय छे।"

में मुद्रा न देखकर ढूंढने लगा—नहीं मिली। शाह ने कहा कि—अभी तो मुद्रिका मेरे पास थी, कहां गई ? किसने चुराई है ? यह सुनते ही राघव चैतन्य शीघ्र बोला—शाह ! आपकी मुद्रिका तो जिनप्रभ के पास है। शाह ने आचार्य से मुद्रिका मांगी तो आचार्य ने कहा—'राघव के पास है, राघव ने अपने सारे वस्त्र दिखाये किन्तु मुद्रिका नहीं मिली। आचार्य ने कहा—'इसके सिर पर है।' मस्तक पर देखने से मुद्रिका प्राप्त हुई। शाह ने मुद्रिका लेकर राघव चैतन्य को कहा—"तुम्हें धन्य है ! तुम सत्यवादी हो ! जो स्वयं तस्करवृत्ति करके आचार्य पर दोषारोपण करते हो ! इससे राघवचैतन्य श्यामीभूत होकर अपने स्वस्थान को गया।

कलंदर का गर्वहरण

एक समय आचार्य सभा में बैठे हुए थे। उसी समय खुरासान से विद्यावान एक कलंदर (मुस्लिम फकीर) राजसभा में आया। उसने शाह पर अपना प्रभाव जमाने की दृष्टि से स्वयं की कुल्लह (टोपी) उतार कर आकाश में फेंककर मुहम्मदशाह को कहा–'शाह ! तुम्हारी सभा में ऐसा कोई है ? जो इस टोपी को उतार सके ?' शाह ने सभा की तरफ दृष्टि डाली। दृष्टि संकेत को समझकर आचार्य ने शाह से कहा–'राजन् ! मैं जो कर्त्तव्य दिखाता हूं, उसे देखो !' यह कहकर आचार्य ने रजोहरण (धर्मध्वज) को आकाश में फेंका और उस (रजोहरण) ने आकाश में जाकर उस टोपी को पीटता हुआ नीचे लाया।[1]

अन्य दिवस एक पनीहारिन को पानी के भरे हुये घड़े सिर पर रख कर जाते हुए देखकर मौलाना ने उन घड़ों को निराधार स्तंभित रखा—

---

१. पंचशतीकथाप्रबन्ध के अनुसार विशेषता यह है "आचार्य ने टोपी को आकाश में ही स्तंभित कर दी और मुल्ला आकर्षण प्रयोग से अपनी टोपी वापस नीचे न उतार सका तब शाह के निर्देश से आचार्य ने रजोहरण फेंककर टोपी नीचे उतारी।

पनीहारिन चली गई। घड़ों को आकाश में निराधार देखकर शाह चमत्कृत होकर मुल्ला की प्रशंसा करने लगा। तब आचार्य ने कहा—'घड़ा क्या, यदि पानी निराधार रहे तो चमत्कार माना जाय!' शाह ने कौतुक से मौलाना को कहा, किन्तु मौलाना न कर सका। आचार्य ने उसी समय कंकड़ फैंककर दोनों घड़ों को फोड़ दिया और पानी को निराधार स्तम्भित रखा।[1]

अद्भुत निमित्त कथन

एक समय सभा में बैठे हुये कौतुक-प्रिय शाह ने सभा में स्थित समस्त विद्वानों को लक्ष्य करके कहा—'विज्ञो! आप लोग यह बतलाइये कि 'प्रातःकाल मैं किस मार्ग से रयवाड़ी (राजपाटी) जाऊँगा? यह सुनकर सब विद्वानों ने अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार विचार करके पत्र में लिखकर शाह को दिया। शाह के संकेत से आचार्य ने भी पत्र लिखकर दिया। उन सब पत्रों को शाह ने अपने दुपट्टे में बाँध लिया। शाह ने विचार किया कि यह समय है जब कि सबको असत्यवादी सिद्ध करूँ'। ऐसा विचार कर प्रातःकाल बंदर बुर्ज[2] को तुड़वाकर बाहर निकला और क्रीड़ा कर एक स्थान पर बैठकर समस्त विद्वन्मंडली को वहाँ बुलवाया और कहा कि आप सब अपने-अपने पत्र बाँचें? समस्त विद्वानों ने स्वयं लिखित पत्रों को पढ़ा—सब कल्पित (असत्य) थे। आचार्य ने भी अपना लिखा हुआ पत्र पढ़ा, उसमें लिखा था—'बंदर बुर्ज को तुड़वाकर, क्रीड़ा कर शाह वट वृक्ष के नीचे विश्राम करेगा।' यह सुनकर शाह चम-

---

१. वृ. प्र. के अनुसार—आचार्य ने घड़ा फोड़कर पानी को घड़े का आकार देकर निराधार रखा। यह देखकर शाह ने कहा—'पानी का कण पृथक् (अलग) करो।' तो आचार्य ने वैसा ही किया।

२. किसी स्थान पर 'किल्ले की २१ वें लंगक के पास की ३१ परों की ईंट दूर करवाकर शाह गया।

रक्त[1] हुआ और बोला कि 'यह आचार्य साक्षात् परमेश्वर तुल्य है और इसकी देवता भी सेवा करते है।'

वटवृक्ष को साथ चलाना

मुहम्मद शाह ने आचार्य जिनप्रभ से कहा—'भगवन्!, यह वड़ सुन्दर और शीतल छाया वाला है तो आप ऐसा करें कि यह वृक्ष भी हमारे साथ चले; जिससे इसकी शीतल छाया का हम आनन्द उठा सकें।' आचार्य ने वैसा ही किया। वृक्ष पाँच कोस तक छाया प्रदान करता हुआ साथ चला। अन्त में शाह ने वापस लौटाने को कहा तब आचार्य ने उसे वापस जाने का आदेश दिया, वह अपने स्थान पर चला गया।

क्या भोजन करूँगा ?

एक समय सुलतान ने कहा कि आज मैं क्या भोजन करूँगा? आचार्य ने पत्र में लिखकर शाह को दिया और कहा कि भोजन करने के पश्चात् पत्र पढ़ें। तदनुसार शाह ने खल (खोल)[2] का भोजन किया और पत्र खोलकर पढ़ा तो आश्चर्य चकित हो गया कि वही लिखा था कि 'खल' का भोजन करेंगे।

मीठी कहाँ

एक समय सुलतान ने विनोद से समस्त सभासदों से पूछा कि 'शक्कर किसमें डालने से मीठी लगती है? सभासदस्य-प्रधानों और विद्वानों के उत्तर न देने पर आचार्य ने कहा—'शक्कर मुख में डालने से मीठी लगती है।'

---

1. इस प्रकार का वृत्तान्त महाराज भोज और महाकवि धनपाल का भी प्राप्त होता है।

2. आम्रवृक्ष का भी उल्लेख है।

सरोवर छोटा कैसे हो ?

एक समय सुलतान क्रीड़ा करते हुए बाहर के उद्यान में आये। वहाँ एक सरोवर पानी से लबालब भरा हुआ देखकर अपने समस्त साथियों (प्रधानों और विद्वानों) को कहा— मिट्टी डाले बिना ही सरोवर छोटा कैसे हो ? किसी के भी उत्तर न देने पर आचार्य ने कहा—'शाह ! इस सरोवर के निकट ही यदि एक बड़ा सरोवर बना दिया जाय तो यह स्वतः ही छोटा हो जायगा।'

पृथ्वी पर मोटा फल कौन-सा ?

एक समय सुलतान ने आचार्य से पूछा कि 'कहो गुरुजी ? पृथ्वी पर सब से बड़ा फल कौन-सा होता है ?' आचार्य ने तत्काल ही प्रत्युत्तर दिया—राजन् ! समस्त जगत को ढांकने वाला होने से वउणि (वण-कपास) का है।

विजययंत्र महिमा

एक समय सम्राट् ने आचार्य से विजययन्त्र का आम्नाय पूछा। आचार्य ने कहा—राजन्, यह आपका विषय नहीं है। सम्राट् ! यह यंत्र जिसके पास में होता है उसका आघात दैविक शस्त्र भी नही कर सकते ! और भयंकर से भयंकर शत्रु भी उसे पीड़ा नहीं पहुँचा सकते।' यह सुनकर शाह ने उसकी परीक्षा के लिये आचार्य ने यंत्र बनवाकर एक बकरे के कंठ में बांध दिया और उस पर तलवार आदि शस्त्रों का आघात किया, किन्तु उस पर तनिक भी आघात नहीं हुआ।

उस विजय-यंत्र को छत्रदंड पर बांधकर उसके नीचे चूहे को छोड़ दिया और उसको घात के लिये बिल्ली को छोड़ दिया। चूहे को देखते ही बिल्ली उस पर झपटी किन्तु छत्रदण्ड की सीमा में प्रवेश भी न कर सकी।

इस प्रकार यंत्र का चमत्कार देखकर चमत्कृत हुआ और तात्समय दो यंत्र बनवाकर एक सम्राट् ने स्वयं रखा और दूसरा आचार्य को प्रदान

किया। तब से सम्राट् स्थान, यान, घर, ग्राम, सभा, एकान्त, वन और किसी भी स्थान पर आचार्यजी को साथ ही रखता था।

मरुस्थल में दान

एक समय शाह मरुस्थल प्रदेश में आया। स्थान-स्थान पर मारवाड़ के नगरनिवासी हाथों में भेंट लेकर सामने आते थे। वहाँ के निवासियों को सामान्य वेश में देखकर शाह ने आचार्य से पूछा—गुरुजी! यहाँ की नारियाँ आभरणरहित हैं, वेष-भूषा सामान्य है तो क्या इन लोगों को किसी ने लूट लिया है या किन्हीं अपराधों में दंडित हुये हैं?' आचार्य ने कहा—सम्राट्! यह मरुदेश रुक्ष और धनहीन है—इसी कारण से यहाँ के निवासी दरिद्र-प्राय गरीब हैं—और कोई कारण नहीं है।' यह सुनकर शाह ने प्रत्येक पुरुष को पाँच-पाँच वस्त्र और प्रत्येक नारी को साड़ी के साथ स्वर्ण के दो टंक प्रदान किये।[१]

ज्वर का जल में आरोप

एक समय आचार्य ज्वर आ जाने से सम्राट् के पास न जा सके। सम्राट् गुरुजी को ज्वरग्रस्त सुनकर आश्रम में आया और गुरुजी से कहा—ज्वर को भगाइये। आचार्य ने कहा यह अपना भोग लेकर जायेगा। फिर भी शाह के आग्रह से जल-पात्र मँगवाया और ज्वर का उसमें आरोप कर शाह से वार्ता करने लगे। जल-पात्र उछलने लगा और कलकल शब्द करने लगा। शाह के जाने के पश्चात् आचार्य ने जलपात्र का पानी पी लिया। ज्वर पुनः चढ़ गया और अवधि पूर्ण होने पर चला गया।

तैलंग वन्दी मोचन

एक समय फीरोजशाह ने तैलंग देश पर विजय प्राप्त कर १ लाख ६०

१. किसी पट्टावली में—प्रत्येक स्त्री को पाँच-पाँच दीनार देने का उल्लेख है तो किसी में 'प्रत्येक स्त्री को पाँच-पाँच स्वर्ण टंक मय थान' देने का उल्लेख है।

हजार बंदियों को मारने का आदेश दिया। यह जानकर आचार्य सम्राट् के पास आये और कहा कि इस प्रकार अन्याय हो रहा है, रोकिये। सम्राट् ने कहा—मुझे क्या मालूम कि तैलंग में क्या अन्याय हो रहा है, मुझे दिखाओ। आचार्य ने स्वप्नावस्था में समाट् को तैलंग ले जाकर सारी स्थिति दिखाई। दूसरे दिन सम्राट् ने उन १ लाख ६९ हजार बंदियों को मोचन का आदेश दिया।

अमावस्या की पूर्णिमा

कहा जाता है कि एक समय सभा में 'आज कौन-सी तिथि है' इस प्रश्न पर आचार्यश्री के मुख से या उनके शिष्य के मुख से सहसा निकल गया कि 'आज पूर्णिमा है।' वस्तुत: थी अमावस्या। सम्राट् ने मजाक किया कि आचार्य! आज है तो अमावस्या किन्तु रात्रि तो चन्द्रिकाघौत रहेगी ही। आचार्य ने कहा—हाँ। तदन्तर उपासक से रजत का थाल मगवाकर मंत्रित कर आकाश में फेंका। आचार्य के प्रभाव से अमावस्या की अंधकारपूर्ण रात्रि भी चन्द्र की ज्योत्स्ना से धवलित हो रही थी। शाह ने परीक्षा के लिये १२-१२ कोस तक घुड़सवारों को भेजकर परीक्षा करवाई—सत्य रही।

महावीर प्रतिमा का बोलना

कन्यानयनीय महावीर-प्रतिमा जो म्लेच्छों द्वारा हरण की गई थी और जो राजमहल के पगथियों पर पड़ी थी—जिस पर सब आते-जाते थे। आचार्य ने देखी और राजमहल में शाह के पास जाकर कहा—'आप यदि दें तो मैं एक प्रार्थना करूँ?' शाह ने कहा—'मांगिये, मैं अवश्य दूँगा।' आचार्य ने कहा—'राजमहल के द्वार पर रखी हुई महावीर-प्रतिमा दीजिये।' शाह ने उसी समय उस प्रतिमा को अपने राजमहल में मंगवाई। उस प्रतिमा की मनोहारी प्रशान्त मुद्रा देखकर शाह का हृदय खिल उठा और उसने कहा—'यह प्रतिमा तो मैं नहीं दूँगा।' सुनकर आचार्य ने कहा—'तो मेरा आगमन निरर्थक हुआ?' शाह ने कहा—'यदि यह प्रतिमा मुझ से बोले तो मैं आपको प्रदान कर दूँगा।' आचार्य ने कहा—आप यदि पूजा-

सत्कार करें तो भगवान् अवश्य बोलेंगे।' शाह ने विधि के अनुसार पूजा-सत्कार किया और पूजक के वेष में ही प्रार्थना की—'भगवन् ! मेहरबानी करके बोलिये।' उसी समय महावीर प्रतिमा ने जीमणा (दाहिना) हाथ फैलाकर कहा—[1]

"विजयतां जिनशासनमुज्ज्वलं, विजयतां भूभुजाधिपवल्लभः।
विजयतां भुवि साहिमहम्मदो, विजयतां गुरुसूरिजिनप्रभः॥"

इस पद्य का अर्थ गुरु के मुख से श्रवण कर सम्राट् ने कहा—'इस देव को क्या दूँ ?' आचार्य ने कहा—'शाह ! ये देव सुगन्धित द्रव्यों से प्रसन्न होते हैं।' सूरिमुख से श्रवण कर मुहम्मदशाह ने सरट और मातंड गाम के दो गाँव पूजा-सत्कार के लिये प्रदान किये। श्रावक-गण धूप लाकर सदैव धूप-पूजा करने लगे और सम्राट् ने वहाँ नया प्रासाद निर्माण करवाया।

रायण वृक्ष से दूध बरसाना

कन्यानयन महावीर-प्रतिमा का चमत्कार देखकर सम्राट् ने कहा—'गुरुजी !, कान्हड महावीर के समान चमत्कारी और भी कोई तीर्थ है ?' आचार्य ने, 'शत्रुञ्जयतीर्थ की प्रशंसा की।' कौतुक-प्रिय और दर्शनोत्सुकी सम्राट् ने गुरु की आज्ञा से संघ लेकर शत्रुञ्जय गया। तीर्थ के दर्शन कर शाह अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उस समय आचार्य ने कहा—'यदि इस रायणवृक्ष को मोतियों से बधाया जाय तो यह वृक्ष दूध की वर्षा करता है।' सम्राट् ने रायण को मोतियों से बधाया, उसी समय रायन से दूध झरने लगा।

आचार्य ने सम्राट् को संघपति की क्रिया करवा कर संघ के समक्ष संघपति पद प्रदान किया। सम्राट् ने वहाँ अपनी आज्ञा अंकित करवाई कि 'जो इस तीर्थ की आशातना करेगा वह पातिशाह का अपमान करेगा।'

---

१. पंचशती के अनुसार प्रतिमा ने शाह के २१ प्रश्नों के उत्तर प्रदान किये।

तीर्थ से उतर कर सम्राट् ने सब लोगों से कहा कि 'अपने-अपने देवों की प्रतिमाओं को लाओ।' शाह के आदेश से सब अपने-अपने देवों की प्रतिमाओं को लाये। सब प्रतिमाओं को एकत्रित देखकर शाह ने कहा—'इन सब में बड़ा देव कौन है?' इस प्रश्न का किसी ने उत्तर नहीं दिया। तब शाह ने अर्हत्प्रतिमा को बीच में रखकर आजू-बाजू अन्य प्रतिमाएँ रखीं और इसी प्रकार स्वयं मध्य में बैठकर अपने दोनों तरफ सशस्त्र सैनिकों को खड़ा करके पूछा—'कौन बड़ा है?' सबने कहा—'आप बड़े हैं।' सुनकर सम्राट् ने कहा—'वैसे ही शस्त्र-रहित होने से जिनदेव बड़े हैं और शस्त्रधारी देव इनके रक्षक हैं।' जनता ने कहा—'आपके वचन प्रमाणीभूत हैं।'

वहाँ से सम्राट् संघ सहित गिरनार तीर्थ आया और तत्र स्थित भगवान् नेमिनाथ की प्रतिमा को अच्छेद्य और अभेद्य सुनकर परीक्षा के लिये प्रतिमा पर आघात किये। आघात से प्रतिमा अग्निकण उगलने लगी। यह देखकर, क्षमा याचना कर, नमस्कार कर १०० स्वर्णटंकों से प्रतिमा को बधाया।

चौंसठ योगिनी प्रतिबोध

एक समय आचार्य व्याख्यान दे रहे थे। उस समय ६४ योगिनियाँ उनको छलने के लिये श्राविका (उपासिका) रूप में उपाश्रय में आकर सामायिक लेकर बैठ गईं। पद्मावती ने आचार्य को संकेत किया कि 'ये योगिनियाँ आपको छलने के लिये आई हैं।' आचार्य ने उनकी तरफ दृष्टि-क्षेप करके देखा तो प्रतीत हुआ कि वे अपलक निर्निमेष दृष्टि से मेरी तरफ देख रही हैं—और मानो ये व्याख्यान-सुधा से तृप्त हो रही हों। आचार्य ने मंत्र-शक्ति से उनको स्तंभित कर दी। उपदेश के पश्चात् समस्त उपासक वर्ग अपने स्थान को चला गया। ये योगिनियाँ भी उठने लगीं—किन्तु देखा कि आसन चिपक रहा है, पुनः बैठ गईं। यह देखकर आचार्य ने कहा—उपासिकाओं! साधुओं के गोचरी के लिये जाने का समय हो गया है;

अतः आप लोग वंदन करके स्वस्थान जायें। योगिनियाँ बोलीं—भगवन्, अपराध क्षमा हो, हम तो आपको छलने के लिये यहाँ आईं थीं किन्तु हम स्वयं आप से छली गईं। कृपाकर हमें मुक्त करिये।' आचार्य ने कहा—यदि आप लोग मुझे 'वचन' दें तो मैं आप लोगों को मुक्त कर सकता हूँ।' योगिनियाँ बोलीं—आप क्या वचन चाहते हैं? हम देने को बाधित हैं। आचार्य ने कहा—'हमारे गच्छ के आचार्य योगिनीपीठ (उज्जैन, दिल्ली, अजमेर और भरुच) की तरफ विहार करें तो उन्हें किसी भी प्रकार का उपद्रव-परीषह नहीं होना चाहिये।' योगिनियों ने स्वीकृति दी। आचार्य ने उन्हें मुक्त किया वे अपने स्वस्थान को चली गईं।[1]

संघ का उपद्रव निवारण

एक नगर के उपासक वर्ग दो देवियों के रोगादि उपद्रवों से अत्यन्त पीड़ित थे। नागरिकों के कई उपचार किये गए किन्तु सफल न हो सके। अंत में उन्होंने दो प्रतिनिधियों को आचार्य के समीप भेजा। वे दोनों उपासक आचार्य के समीप आये। उस समय आचार्य ध्यानावस्था में थे और उनके समीप दो सुन्दर युवतियाँ खड़ी थीं। युवतियों को देखकर दोनों उपासक विचार करने लगे कि 'गुरुजी के पास तो युवतियों का परिग्रह (सान्निध्य) है। यहाँ निवेदन करने से हमें क्या सफलता मिलेगी' वापस लौटने लगे, किन्तु स्तंभित हो गये। इसी समय आचार्य ने ध्यान पूर्ण किया और उसी समय दोनों युवतियों ने प्रश्न किया—'भगवन्! आपने हमें किसलिये बुलाया है।' आचार्य ने कहा—'तुम दोनों संघ में उपद्रव करती हो, इसलिये तुम्हें शिक्षा देने के लिये यहाँ बुलाया है। देवियों ने कहा—'भगवन् अब आज से उपद्रव नहीं करेंगी—हमें क्षमा कीजिये। आचार्य के क्षमा करने पर वे दोनों देवियाँ चली गईं और दोनों उपासक भी मुक्त हो गये। दोनों उपासकों ने नमन कर, देवियों का कारण पूछा। गुरुदेव ने कहा—

1. इस प्रकार का प्रसंग दादा जिनदत्तसूरि के जीवन में भी आता है, तुलना करें।

'सुना था कि आपके नगर में ये दोनों देवियाँ उपद्रव कर रही हैं, इसीलिये इनको बुलाया था। अब आगे से संघ में किसी प्रकार का उपद्रव नहीं होगा। यह सुनकर दोनों प्रतिनिधि अत्यन्त प्रसन्न हुये और अपने नगर में आकर यह वार्ता सुनाई।

आचार्य सोमप्रभ से मिलाप और चूहों को शिक्षा

एक समय सुलतान के साथ प्रवास करते हुये आचार्य जिनप्रभ जंघराल नगर (पाटण के निकट) पहुँचे। वहाँ उस समय तपागच्छ के आचार्य सोमप्रभसूरि विराजमान थे। उनसे मिलने को आ० जिनप्रभ उनके उपाश्रय (स्थान पर) गये। आ० जिनप्रभ को आये देखकर आचार्य सोमप्रभ ने अभ्युत्थानादि द्वारा उनका बहुत स्वागत-सत्कार करते हुये कहा—'आचार्य देव ! आप आराध्य हैं। आपके प्रभाव से आज सर्वत्र जैन-शासन का जय-जयकार हो रहा है। आपकी शासन-सेवा अतुलनीय है।' आचार्य जिनप्रभ ने प्रत्युत्तर में कहा—आचार्यवर ! आप क्या कह रहे हैं ? सम्राट् के साथ रहने के कारण हम संयम क्रिया यथावत् पालन नहीं कर पाते हैं। आपकी शास्त्रीय साधु-दिनचर्या श्लाघनीय और अनुकरणीय है।' इस प्रकार दोनों आचार्य प्रेमालाप मग्न थे।

उसी समय एक मुनि ने प्रतिलेखन करते हुये अपनी सिविरका (झोली) को चूहों द्वारा काटी हुई देखकर—सोमप्रभसूरि (अपने गुरु) को दिखाई। आ० जिनप्रभ पास में ही बैठे हुये थे; आकर्षण से समस्त चूहों को वहाँ बुलाया—वे आकर भयभीत होकर सामने खड़े हो गये। आचार्य ने उनसे कहा—'तुम में से जिस किसी ने वस्त्र काटने का अपराध किया हो, वह यहाँ रहे और सब चले जायें। अपराधी चूहे को छोड़कर सब चले गये। उसे भयाक्रान्त देखकर आचार्य ने उस चूहे से कहा—भय न खाओ, आगे से ऐसा अपराध न करना, तुम उपाश्रय छोड़कर चले जाओ, वह उपाश्रय से बाहर चला गया। यह आश्चर्य देखकर सब साधु बहुत

चकित हुये।[1]

खंडेलपुर के निवासियों को जैन बनाना

जांगल देश (राजस्थान) के खंडेलवाल गोत्रीय शिवभक्त गुड़-खांड का व्यापार करते थे। पश्चात् गुड़ के स्थान पर मदिरा का व्यापार करने लगे। उन मदिरा व्यवसायी शिवभक्तों को प्रतिबोध देकर आचार्य ने उन्हें सं० १३४४ (१७४) में जैन बनाया :

> "खंडेल्लपुरे नयरे तेरस्सए चउत्ताले।
> जंगलया सिवभत्ता ठविया जिणसासणे धम्मे॥"

---

१. चूहों की शिक्षा के संबंध में पंचशतीकार ने पूर्ववृत्त इस प्रकार दिया है—किसी वेलाकुल में धर्ममूर्ति धनसेठ रहता था। एक दिन व्यापार के लिये चौराहे पर गया। उस समय मजीठ आदि वस्तुओं से भरे हुए कई जहाज आये हुए थे। वहाँ के व्यापारी सात-आठ जहाजों का माल खरीद कर चले गये, अवशिष्ट तीन जहाजों का माल किसी ने भी नहीं खरीदा। धनसेठ उन्हीं ३ जहाजों का माल खरीद कर ले गया। रात्रि को स्वप्नावस्था में किसी देव ने सूचित किया—'इन जहाजों का माल ध्यान से देखना, तुम्हारे यहाँ कल्पवृक्ष आया है।' प्रातःकाल उठते ही उन जहाजों के माल को देखने पर पांच रत्न प्राप्त हुये। धनश्रेष्ठि उसी समय जहाज के व्यापारी के पास जाकर पूछा कि उक्त जहाजों का माल आप ने किससे खरीदा था? व्यापारी ने कहा—चोरों के पास से। व्यापारी के पास से लौटकर सेठ ने विचार किया कि इस धन को धर्म में ही व्यय करना चाहिए। ऐसा विचार कर उसने नया जिनमंदिर का निर्माण करवाया। इस प्रकार पापानुबन्धी को धर्मानुबन्धी किया। एक समय आचार्य जिनप्रभ को बड़े आग्रह से बुलाकर अपने स्थान पर रखा और आहारादि दान से सत्कार किया। प्रतिलेखना के समय एक साधु ने आचार्य से शिकायत की कि निशिथ को चूहों ने काट दी इत्यादि।

कंवला तथा विवाद निवारण

एक समय मेदपाट (मेवाड़) देशीय पाल्हाक नाम का वैद्य सुलतान की चिकित्सा करने के लिये आया हुआ था। एक दिन पाल्हाक कोमल्लसूरि शाखा (कंवला-उपकेशगच्छ) के उपाश्रय में गया। कोमलशाखीय यतियों ने तपागच्छ के आचार्यों की निंदा की। पाल्हाक वैद्य सहन न कर सका। कलह का रूप वार्ता तक न रहकर दण्डा-दण्डी का हो गया, किसी का हाथ टूटा तो किसी का मुख। सब कलह करते हुये सुलतान के पास आये। सुलतान ने सारा वृत्तान्त सुनकर, आचार्य जिनप्रभ के संकेतानुसार आदेश दिया कि तुम सब न्यायी भी हो और अन्यायी भी हो, दण्ड किसे दिया जाय ! जाओ, आगे से कभी कलह मत करना।

शिष्य-परम्परा

आचार्य जिनप्रभसूरि का शिष्य-परिवार विशाल था। कितना था यह तो ज्ञात नही किंतु देवगिरि जाते हुये जिनदेवसूरि के पास १४ साधुओं को छोड़कर गये थे, साईवाण बाग में ५ दीक्षाए प्रदान की थी; आदि उल्लेखों से विशाल-समुदाय होना प्रतीत होता है। वैसे आपकी परम्परा मे प्रतिभाशाली और धुरन्धर आचार्य एवं अनेकों साधु हुये हैं और ऐतिहासिक प्रमाणों से १८वी शती तक आपकी परम्परा चलती रही है; जिनका सामान्य परिचय इस प्रकार है।

आचार्य जिनदेवसूरि

आपके पिता का नाम कुलधर[1] और माता का नाम वीरीणि था। जिनप्रभसूरि के आप प्रमुख शिष्यों में से थे। जिनप्रभसूरि ने स्वहस्त से ही आचार्यपद प्रदान किया था। आचार्य जिनप्रभसूरि जिस समय सम्राट् मुहम्मद तुगलक से मिले थे उस समय आप भी साथ थे और प्रवेश महोत्सव के समय हाथी पर आप भी बैठे थे। जिस समय आचार्य जिनप्रभ ने

---

१. जिनदेवसूरि गीत (ऐति. जै.का.सं.)

देवगिरि की ओर प्रस्थान किया था उस समय आचार्य जिनप्रभ ने १४ साधुओं के साथ आपको सम्राट् के पास दिल्ली में ही रखा था। इस प्रसंग का आचार्य जिनप्रभ स्वयं स्वरचित कन्यानयनीय महावीर-कल्प में किया है[1] :

"इधर दिल्ली में विराजित जिनदेवसूरि विजयकटक (शाही छावनी) में सम्राट् से मिले। सम्राट् ने बहुत सम्मान के साथ एक सराय (मुहल्ला) जैन संघ के निवास के लिये दी। इस सराय का नाम 'सुलतान सराय' रखा गया। वहाँ सम्राट ने पौषधशाला और जैन-मन्दिर बनवा दिया एवं ४०० श्रावकों को सकुटुम्ब निवास करने का आदेश दिया। पूर्वोक्त कन्यानयनीय महावीर प्रतिमा को इस सराय में सम्राट के बनवाये हुये मन्दिर में विराजमान किया गया। श्वेताम्बर-दिगम्बर एवं अन्य धर्मावलम्बी जन भी भक्ति-भाव से इस प्रतिमा की पूजा करने लगे।"

देवगिरि से दिल्ली आते हुये सूरिजी के साथियों को 'अल्लावपुर' में मल्लिकों ने परेशान किया था; उस समय यह वृत्तान्त जानकर जिनदेवसूरि ने सम्राट से मिल कर इस उपद्रव का निराकरण करवाया था। इस से स्पष्ट है कि सम्राट के हृदय में इनके प्रति बहुत गौरवपूर्ण सम्मान था।[2]

आपके रचित कालिकाचार्य कथा और शिलोञ्छनाममाला[3] (सं. १४३३) प्राप्त है।

जिनमेरुसूरि—जिनदेवसूरि के पट्टधर थे। आपके गुरुभाई श्री जिनचन्द्रसूरि थे।

जिनहितसूरि—जिनमेरुसूरि के पट्टधर थे। आपके रचित वीरस्तव

---

१. विविधतीर्थकल्प, पृ.४६।

२. वही, पृ. ९५

३. शिलोञ्छनाममाला श्रीवल्लभोपाध्याय रचित टीका के साथ मेरे द्वारा सम्पादित होकर शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाली है।

गा० ९ और तीर्थमालास्तव (चउवीसंपि जिणिंदे) गा० १२ एवं कर्म प्रतिष्ठित प्रतिमायें प्राप्त हैं।

जिनसर्वसूरि—जिनहितसूरि के पट्टधर थे।

जिनचन्द्रसूरि—जिनसर्वसूरि के पट्टधर थे। आपकी प्रतिष्ठित कई प्रतिमायें (सं. १४६९-१५०६) प्राप्त हैं।

जिनसमुद्रसूरि—जिनचन्द्रसूरि के पट्टधर थे। आपकी रचित रघुवंश एवं कुमारसंभव टीका प्राप्त है।

वाचनार्थ चारित्रवर्द्धन

पंच महाकाव्यों के प्रसिद्ध व्याख्याकार वाचनाचार्य चारित्रवर्द्धन भारतीय वाङ्मय के एक समर्थ प्रतिभाशाली एवं विश्रुत विद्वान् थे। व्याकरण, निरुक्त तथा अलंकार विषयक आपका ज्ञान इतना व्यापक था कि अन्य परवर्ती टीकाकारों को भी आपका 'मत' स्वीकार करना पड़ा। आपकी टीकाओं को देखने से न केवल हमें उनके व्याकरण तथा लक्षणशास्त्र के अगाध ज्ञान का पता चलता है अपितु उनके न्याय, दर्शन, जैन सिद्धान्त और साहित्य का भी पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है। अतः यह कहा जा सकता है कि आप सर्वदेशीय विद्वान् थे; यही कारण है कि आप स्वयं अपनी टीकाओं की प्रशस्ति में अपनी योग्यता का गर्व भरे शब्दों में स्वयं का 'नरवेष नरस्वती' उपनाम स्थापित करते हुये लिखते हैं :—

तच्छिष्य-प्रतिपक्षदुर्द्धरमहावादीभपञ्चाननो,
नानानाटकहाटकाभरगिरिः साहित्यरत्नाकरः।
न्यायाम्भोजविकाशवासरमणिर्वौद्धेति जाग्रत्प्रभो
वेदान्तोपनिषन्निषण्णधिषणोऽलङ्कारचूडामणिः॥
श्रीवीरशासनसरोरुहवासरेशः,
सद्धर्मकर्मकुमुदाकर पूर्णिमेन्दुः।
वाचस्पतिप्रतिमधीर्नरवेषवाणि—
चारित्रवर्धनमुनिर्विजयी जगत्याम्॥

× × ×

चारित्रवर्धन गणि श्री जिनप्रभसूरि की परम्परा के चौथे आचार्य श्री जिनहितसूरि के प्रशिष्य तथा उपाध्याय कल्याणराज के शिष्य थे :

वंशे श्रीजिनवल्लभस्य सुगुरोः सिद्धान्तशास्त्रार्थवित्,
दर्पिष्ठ प्रतिवादिकुञ्जरघटाकण्ठीरवः सूरिराट्।
नाना नव्यसुभव्यकाव्यरचनाकाव्यो विभाव्याऽमल-
प्रज्ञो विजनतो जिनेश्वर इति प्रौढप्रतापोऽभवत् ॥१॥

शिष्यस्तदीयोऽजनि जन्तुजात-हितार्थसम्पादनकल्पवृक्षः।
विपक्षवादिद्विपपञ्चवक्त्रः, सूरीश्वरः श्रीजिनसिंहसूरिः ॥२॥

तत्पट्टपूर्वाद्रिसहस्ररश्मि-जिनःप्रभः सूरिपुरन्दरोऽभूत्।
वाग्देवताया रसनां तदीयामास्थानपट्टं जगदु-र्बुधेन्द्राः ॥३॥

तदनु जिनदेवसूरिः, स्वधीमुषी तर्जितत्रिदशसूरिः।
निरुपमशमरसभूरिः, सूरिवरः समजनिष्ट यशी ॥४॥

तदनु जिनमेरुसूरि-र्दूरीकृतपातको निरातङ्कः।
समजनि रजनीवल्लभवदनो मदनोरगेतार्क्ष्यः ॥५॥

गुणगणमणिसिन्धुर्भव्यलोकैकबन्धु-
विधुरितकुमतौघः प्रीणिताशेषसङ्घः।
जिनमतकृतरक्षस्तर्जिताराति पक्षो-
जनि जिनहितसूरिस्त्यक्तनिःशेषसूरिः ॥६॥

जिनसर्वसूरिरभवत्तत्पट्टेऽपट्टितप्रबलमोहः।
सज्जनपङ्कजराजीविकासनात्सान्महोऽजस्रः ॥७॥

तस्य जिनचन्द्रसूरिः, शिष्यो दक्षः कलावतां पक्षः।
कर्णीकृतसकलजनोपकारसारः सदाचारः ॥८॥

सूरिर्जिनसमुद्राख्यस्तस्य जज्ञे महामतिः।
अखिलतनुश्रीसाधुवृन्दाम्भोजनभोमणिः ॥९॥

जिनतिलकसूरिरस्माद् विजयी जीयादशेषगुणकलितः ।
श्रीवीरनाथशासनसरसीरुहभास्करः श्रीमान् ॥१०॥
तत्पट्टपूर्वाचलमौलिचन्द्रः विपक्षवादिद्विपञ्चवक्त्रः ।
जीयात् सदाऽसौ जिनराजसौरिः, सत्पक्षयुक्तो जिनधर्मरक्षः॥११॥[1]
जिनहितसूरेः[2] शिष्यो, बभूव भूमीशवन्दिताङ्घ्रियुगः ।
कल्याणराजनामोपाध्यायस्तीर्णशास्त्राब्धिः ॥१२॥
तच्छिष्यो··············· [रघुवंश टीका प्र०]

गणि चारित्रवर्धन की पूर्वावस्था का वर्णन तथा दीक्षा-शिक्षा इत्यादि वर्णन पूर्णतः अनुपलब्ध है । केवल टीकाओं की प्रशस्तियाँ देखने से यह ज्ञात होता है कि आपका साहित्य-सर्जन काल सं० १४९२ से १५२० तक का है । आचार्य जिनहितसूरि के प्रशिष्य चारित्रवर्धन थे और आचार्य-परम्परा के अनुसार प्रशस्ति निर्दिष्ट जिनराजसूरि ५वें पट्ट पर आते हैं । इस दृष्टि से चारित्रवर्धन का दीक्षा-काल अनुमानतः १४७० स्वीकार किया जा सकता है । चाहे कल्याणराज अतिवृद्ध हों या चारित्रवर्धन; किन्तु यह निस्संदेह है कि इनकी दीक्षा-पर्याय बहुत बड़ी रही है । कुमारसंभव-टीका की रचना सं० १४९२ में हुई है । इस टीका का आद्योपान्त भाग अवलोकन करने से यह निश्चित ज्ञात होता है कि यह कृति प्रारंभिक अवस्था की नहीं, अपितु प्रौढ़ावस्था की है । तथा इसमें उल्लिखित स्वयं के लिये वाचनाचार्य पद को ध्यान में रखने से ऐसा अनुमान होता है कि लगभग २०–२२ वर्ष का समय उनकी दीक्षा को हो चुका होगा । इस दृष्टि से दीक्षा-समय १४७० के लगभग ही आता है । सं० १४९२ की रचना में जिनतिलकसूरि का उल्लेख होने से संभवतः वाचनाचार्यपद आपको इन्होंने ही प्रदान किया होगा ।

---

१. यह पद्य नैषध, सिन्दूरप्रकर, कुमारसंभव की प्रशस्तियों में नहीं है । केवल रघुवंश वृत्ति की प्रशस्ति में है।

२. नैषधीय प्रशस्ति में 'जिनहितसूरेः' के स्थान पर 'जिनसिंहसूरेः' पाठ है जो गुरु परम्परा तथा छन्दो भंगदृष्टि से अयोग्य है ।

इस प्रशस्ति के अनुसार आपका वंशक्रम इस प्रकार है :

- जिनवल्लभसूरि
  - जिनदत्तसूरि
    - जिनचन्द्रसूरि
      - जिनपतिसूरि
        - जिनेश्वरसूरि (द्वितीय)
          - जिनप्रबोधसूरि [बृहत्शाखा]
          - जिनसिंहसूरि [लघुखरतरशाखा]
            - जिनप्रभसूरि
              - जिनदेवसूरि
                - जिनमेरुसूरि
                  - जिनहितसूरि
                    - जिनसर्वसूरि
                      - जिनचन्द्रसूरि
                        - जिनसमुद्रसूरि (कुमारसंभववृत्ति क०)
                          - जिनतिलकसूरि
                            - जिनराजसूरि
                    - उ० कल्याणराज
                      - चारित्रवर्धन
                - जिनचन्द्रसूरि
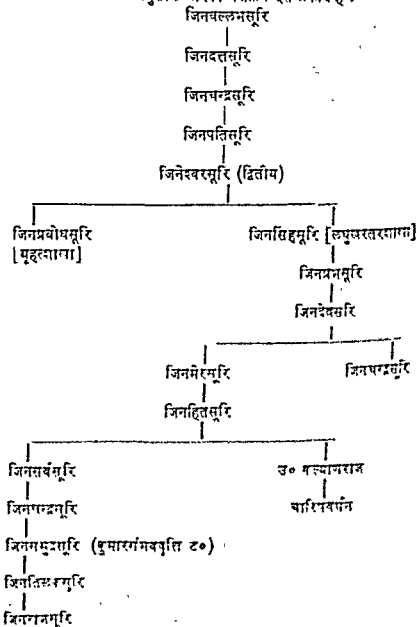
कवि की कोई भी मौलिक कृति प्राप्त नहीं है। व्याख्या-ग्रन्थ अवश्य प्राप्त हैं जो इनकी कीर्ति को अक्षुण्ण रखने में अवश्य समर्थ हैं। तालिका इस प्रकार है :

१. रघुवंश-शिष्यहितैषिणी वृत्ति[1]		अरडकमल्ल अभ्यर्थनया,
२. कुमारसंभव-शिशुहितैषिणी वृत्ति[2]	सं० १४९२,*	,, ,,
३. शिशुपालवध-वृत्ति		सहस्रमल्ल ,,
४. नैषधवृत्ति[3]	सं० १५११†	
५. मेघदूत वृत्ति[4]		
६. राघवपाण्डवीयवृत्ति		

---

१. मेरे संग्रह में।

२. गुजराती मुद्रणालय बंबई द्वारा सं० १९५४ में प्रकाशित।

३. नाहटाजी की सूचना के अनुसार गुजराती सभा कलकत्तादि में प्रतियाँ प्राप्त हैं।

* वर्षे विक्रमभूपतेर्विरचिता दृग्नन्दमन्वङ्किते,
माघे मासि सिताष्टमी सुरगुरावेषोऽञ्जलिर्वो बुधाः।
[कु० सं० वृ० प्र०]

† तेनामुष्यविपक्षवादिनिकराहङ्कारविश्वम्भरा-
भृल्लेखप्रभुणा "शिवेषु" शशभृत् संख्या कृते वत्सरे।
टीका राघवलक्ष्मभाषवतियो शक्रेण चक्रे महा-
काव्यस्यातिगरीयसो मतिमता श्रीनैषधस्यार्थदाः ॥१४॥
[नैषधप्र०]

४. मेरे संग्रह में, व मुद्रित।

७. सिन्दूरप्रकरवृत्ति सं० १५०५‡ उ० श्रीपत सम्मदेवा
८. भावारिवारणस्तोत्र-वृत्ति[1]
९. कल्याणमन्दिरस्तोत्र-वृत्ति[2]

रघुवंश और नैषधटीका में तो कवि ने अपनी प्रतिभा एवं पाण्डित्य का पूर्ण उपयोग किया है। नैषध की टीका में तो कवि ने यह प्रयत्न किया है *कि अन्य टीकाओं की भी यह 'जननी'—पथप्रदर्शिका बन सके:*

> यद्यपि बह्व्यस्टीकाः सन्ति मनोज्ञास्तथापि कुत्रापि ।
> एषा विशेषजननी भविष्यतीत्यत्र मे यत्नः ॥

यही कारण है कि गुजराती मुद्रणालय बम्बई से प्रकाशित कुमारसंभव-वृत्ति की प्रस्तावना में सम्पादक आपके पाण्डित्य की प्रशंसा में इस प्रकार लिखता है:

> "चारित्रवर्धनकृता शिशुहितैषिणी टीका.........., सा च श्लोकाभिप्रायं स्पष्टतया विशदीकरोति पदार्थांश्चाभिव्यनक्ति, अतो शिशुहितैषिणी व्युत्पित्सूनामतीवोपकारिणीति सम्प्रधार्य...."

सिन्दूर प्रकर जैसे १०० पद्यों के काव्य पर ४८०० श्लोक[3] प्रमाणोपेत टीका की रचना कर, गणिजी ने अपनी असाधारण योग्यता का परिचय दिया है। इस टीका में व्याख्याकार ने सुरुचिपूर्ण एवं मौलिक दृष्टान्तों की तो मानों माला ही खड़ी कर दी है।

---

‡ श्रीमद्विक्रमभूपतेरिपुविधुद्वयेन्दुसंख्यान्विते
वर्षे राधसिताष्टमीगुरुदिने टीकामिमां निर्ममे ।
सिन्दूरप्रकरस्य धारकगणो निर्मायपानाशिनान्,
दृष्टान्तैः कलितामनादिपरतश्चारित्रनामा मुनिः ॥११॥
वत्सरे लिखिता तस्मिन् धर्मदासेन धीमता ॥१४॥
[सिन्दूर० प्र०]

१. प्र० पुण्यविजयजी संग्रह।
२. हीरालाल र० कापड़िया द्वारा उल्लेख।
३. अनुष्टुभां सहस्राणि, चत्वार्यष्टौ शतानि च।
ग्रन्थसंख्या निजा ह्यत्र, विज्ञेया सर्वसंख्यया ॥१३॥

आपकी टीकाओं की प्रशस्तियों को देखने से यह मालूम होता है कि न केवल आप ही नरवेषसरस्वती थे अपितु आपका भक्त श्रावकवृन्द भी नरवेषसरस्वती तो नहीं किन्तु सरस्वत्युपासक अवश्य था, और इन्हीं भक्तों की अभ्यर्थना से ही इन्होंने महाकाव्यों पर अपनी लेखनी चलाई। ऊपर सूचित नं० १,३,७ के ग्रन्थों में व्याख्याकार ने जो उपासकों का परिचय दिया है वह ऐतिह्य दृष्टि से बहुत ही महत्त्व रखता है। व्याख्याकार प्रत्येक का परिचय प्रशस्तियों में इस प्रकार देता है :

"इत्यखण्डपाण्डित्यमण्डितपाण्डुभूमण्डलाखण्डलस्यापनाचार्यकर्पूरचीरधाराप्रवाहप्रभृतिविरदावलीचलितललितोत्कटवदान्यसुभटदेशलहरवंशसरसीरुहविकाशनमार्त्तण्डबिम्बप्रचण्डदोर्दण्डविकटचेवटगोत्रगोत्राभिदुन्नतसाधुश्रीदेशलसन्तानीय-साधु-श्रीभैरवात्मजसाधुश्रीसहलमल्लसमभ्यर्थिता····"

[शिशुपालवध प्र०]

× × ×

"श्रीमालवंशहंसो, डोडागोत्रे पवित्रगुणपात्रम्।
समजनि जगलूश्रेष्ठी, विशिष्टकर्मा वरिष्ठयशाः ॥१४॥
माल्लू श्रेष्ठी तस्य, प्रशस्यमूर्तिर्बभूव तनुजन्मा।
पुत्रोऽमुष्य स भूधर, इत्याख्यो दशजनमान्यः ॥१५॥
जगसीधर इति तस्माज्जातः स्मरविग्रहः कलानिलयः।
तस्यापि लखमसिंहस्तनयो विनयी नयाभिज्ञः ॥१६॥
तेजपालस्ततो जज्ञे, सुतो मुख्याचणोपि च।
पोपटो वाहड़ो न्यूनधर्मः शर्मनिधिः सुधीः ॥१७॥
अमुख्यमुख्यो दाक्षिण्यभाजनं तनुजो जयी।
देवसिंह इति स्वान्तःवासिताऽर्हत्पदाम्बुजः ॥१८॥
साधुः सालिगनामाऽभूत्तत्पुत्रः स परिवृत्तः।
एतस्याग्रहसमुद्भवात्सवाराऽपि जयन्त्यमी ॥१९॥

आहू: साधुधियां भूमिर्भरवो रिपुभैरवः ।
ततः सेहुण्डनामा च, धर्मधामा मनोरमः ॥२०॥
अरडकमल्लस्तुर्यो, वर्यो धुर्यः सताममात्सर्यः ।
सत्कार्यो धर्मधनो, मनोहरः सकलललनानाम् ॥२१॥
यद्यप्येष कनिष्ठस्तदपि गुणैर्ज्येष्ठ एव विख्यातः ।
कान्तगुणोऽनणुबुद्धिः शुद्धाचारो विचारज्ञः ॥२२॥
तस्मादृगत्वरमन्त्राखिलमुख्यो वस्तुजातमवधार्य ।
यो धर्म एव बुद्धिं विदधाति नितान्तगुरुधिषणः ॥२३॥
एतेनाभ्यर्थितोऽप्ययं·························

[कुमारसंभववृत्ति ८०]

× × ×

इसी श्रीमालवंशीय डोहागोत्रीय अरडक्कमल्ल की अभ्यर्थना में रघुवंश काव्य[1] की व्याख्या का भी प्रणयन किया है।

× × ×

श्रीमालवंशसरसीरुहतिग्मभानुः, सड्डोरगोत्र कुमुदाकरशीतभानुः ।
पारु इति प्रथितचारयशोविलासः, श्रीमानभूच्छुभमतिर्दलितापदोषः ॥१॥
तस्यात्मजोऽजनि जनव्रजनीरजार्को, बीजाभिधो विधुत····विपक्षलक्षः ।
वशीकृताखिलमहोपकृतिप्रसंगः, सर्वज्ञशासनसरोजमरालमौलिः ॥२॥
तत्पुत्रः कामदेवोऽभूत्, कामदेव-समद्युतिः ।
अर्थिनां कामदः कामं, राज्यजातरतिः (?) कृती ॥३॥
तस्यात्मभूः समजनिष्ट विशिष्टकीर्तिर्मण्डलसिंह इति सिंहसमानवीर्यः ।
धुर्यः सतां गुणवतां प्रथमः पृथुश्रीर्मण्डलकमलरोऽप्यनवद्यवीरः ॥४॥
पुत्रस्तदीयोऽजनि धनपालः, गुणाकरोऽखण्डगुणाभिरामः ।
जिनेन्द्रपादार्चनलालसात्मा, समस्तसंविज्जनतोषकारः ॥५॥

---

१. इति श्रीमालान्वयडोहागोत्रीयमन्त्रिश्रीअरडक्कमल्लकारित-
विर·························×

अभूतामस्य पुत्रौ द्वौ, सच्चरित्रपवित्रितौ ।
ज्येष्ठः सहजपालाख्यो, द्वितीयो भीषणः प्रभुः ॥६॥
निर्दूषणो योनिजवंशभूषणं, गुणानुरागेण वशीकृताशयः ।
अनन्यसामान्यवराण्यतां दधद्दधाति निःकेवलमेव धर्मताम् ॥७॥

य: कारुण्यपयोनिधिर्गुणवतां मुख्यः सतामग्रणी—
र्माधद्वै (?) रिकुलेभकेसरिगिरिशुविश्वोपकार-क्षमः ।
धर्मज्ञः सुविचक्षणः कविकुलैः संस्तूयमानो वशी,
जीयाज्जैनमताम्बुजैकमधुपः श्रीभीषणः सुद्धधी : ॥८॥

देवगुरुचरणनिरतो विरतो पापात् प्रमादसंत्यक्तः ।
सोऽयं भीषणनामा कामा तनुर्भाति धर्ममतिः ॥ ९ ॥
सोहमभ्यर्थितोऽत्ययं टीकां ठक्कुरभीषणैः ।
सिन्दूरप्रकरस्यास्याकार्षं चारित्रवर्धनः ॥ १० ॥

[सिन्दूरप्र० वृ०]

× × ×

उपासकों के लिये रघुवंश, कुमारसंभव तथा शिशुपालवध इत्यादि महाकाव्यों पर प्रौढ एवं परिष्कृत शैली में व्याख्या करना, उपासकों की योग्यता और बुद्धिमत्ता का प्रदर्शन करता है।

देशलहर सन्तानीय चेचटगोत्रीय भैरवसुत सहस्रमल्ल, श्रीमालवंशीय डोडागोत्रीय सालिगसुत अरडकमल तथा श्रीमालवंशीय डोरगोत्रीय ठक्कुर भीषण प्रायः विहार और उत्तर प्रदेश के ही निवासी थे और यह निश्चित है कि लघुखरतरशाखा का फैलाव भी इसी प्रदेश में था। आगे भी हम देखते हैं कि १७ वीं शती के अन्तिम चरण में जब इस लघु शाखा-परम्परा का ह्रास हो जाता है तो बृहत्शाखीय जिनराजसूरि के शिष्य जिनरंगसूरि को इस शाखा के अनुयायी स्वीकार करते हैं जो आज भी इसी रूप में अवस्थित हैं। अतः चारित्रवर्धन का विहार-भ्रमण प्रदेश भी यही प्रदेश रहा है। केवल २,४,७ नं० की कृतियों में संवत् का उल्लेख प्राप्त है, अन्यों में नहीं। नैषधटीका की रचना सं १५११ में

हुई है। यदि इस रचना को अन्तिम मान लें तो अनुमानतः १५२० तक आप विद्यमान रहे होंगे।

प्रस्तुत भावारिवारणस्तोत्र-टीका की भाषा-शैली तथा [illegible] देखते हुए यह निश्चिततया से कह सकते हैं कि यह प्रारम्भिक व्याख्या कृति है। इसमें स्वनाम के साथ वाचनाचार्यपद का उल्लेख होने से सं० १५[illegible] के पूर्व ही इसकी रचना हुई होगी। यह प्रारंभिक कृति होने पर भी व्युत्पत्ति की दृष्टि से उत्तम और पठनीय है।

न केवल गणि चारित्रवर्धन ही देवी पद्मावती के उपासक थे अपितु 'जैनप्रभीय' सारी परम्परा ही पद्मावती को इष्ट मानकर उपासना करती रही है। यही कारण है कि नैषधीय व्याख्या के प्रारंभ में ही चारित्रवर्धन लिखते हैं :

पद्मावती भगवती जगती नमस्या, भूयाद्भयाशिवशमिनी जगतो यशस्या।
नागाधिराजरमणी रमणीयहास्या, देवैर्नुता मम विपद्विनिरोधदास्या ॥२॥

जिनतिलकसूरि—जिनसमुद्रसूरि के पट्टधर थे। आपकी प्रतिष्ठित प्रतिमाओं के लेख सं० १५०८ से १५२८ तक के उपलब्ध हैं।

जिनराजसूरि—जिनतिलकसूरि के आप पट्टधर थे। आपकी प्रतिष्ठित कई प्रतिमायें प्राप्त हैं।

जिनचन्द्रसूरि—जिनराजसूरि के आप पट्टधर थे। आपकी प्रतिष्ठित कई प्रतिमाएँ प्राप्त हैं।

जिनभद्रसूरि—आपकी भी प्रतिष्ठित कई प्रतिमायें प्राप्त हैं।

जिनमेरुसूरि—

जिनभानुसूरि—आप जिनभद्रसूरि के शिष्य थे।

विद्वद् परंपरा

अभयचन्द्र—जिनहितसूरि के पौत्र और उपाध्याय [illegible] के शिष्य थे। आपकी रचित [illegible] और '[illegible]' (गुजराती) प्राप्त हैं।

विद्याकीर्ति—जिनतिलकसूरि के शिष्य थे। आपके रचित जीवप्रबोध प्रकरण (भाषा) (सं० १५०५ हिसार) प्राप्त है।

राजहंस—जिनतिलकसूरि के शिष्य थे। आपकी निम्नोक्त रचनाएँ प्राप्त हैः—वाग्भट्टालंकारटीका (सं० १४), दसवैकालिकबालावबोध, प्रवचनसार, जिनवचनरत्नकोष, एवं वर्धमानसूरि आदि के प्राकृतप्रबन्ध।

महीचन्द्र—जिनराजसूरि के पौत्र उपाध्याय कमलचन्द्र गणि के शिष्य थे। आपकी रचित उत्तमकुमारचौपाई (सं० १५९१ वै० सु० ३) प्राप्त है।

लक्ष्मीलाभ—आपके प्रणीत भुवनभानुकेवलिचरित्र प्राप्त है।

चारित्रवर्धन—देखें पृष्ठ ७९ से ८८ तक।

भानुतिलक—वा० भारतीचन्द्र के शिष्य थे। आपकी प्रणीत गुणस्थान प्रकरण टीका प्राप्त है।

समयध्वज—आप सागरतिलक के शिष्य थे। आपकी रचित सीतासती चौ०(सं० १६११ मा० व० ३) और पार्श्वनाथ फागु प्राप्त हैं।

(१) वि० सं० १५८५ वैशाख शुक्ला ५ गुरुवार को जिनप्रभसूरि परम्परीय मुनिराज के उपदेश से श्रीमालवंशी श्राविका रूपाई ने सचित्र कल्पसूत्र एवं कालिकाचार्य कथा लिखवाई। जिनचन्द्रसूरि के समय में उपाध्याय सागरतिलक के शिष्य समयध्वजोपाध्याय को श्राविका पूरी ने समर्पित किया।[१]

(२) सं० १६३५ कार्तिक कृष्णा ७ गुरुवार को आगरा में मुमुक्षु देवतिलक ने जिनप्रभसूरि रचित पर्युषणकल्पपञ्जिका की प्रति लिखी थी।

(३) १६४१ को सिघानकपुर में जिनहितसूरि के शिष्य आदित्य मुनि ने जिनभानुसूरि के समय में समयसारनाटक-वृत्ति की प्रति लिखी थी।[२]

(४) १७२६ फाल्गुन शुक्ला १० को उपाध्याय लब्धिरंग के शिष्य पं० नारायणदास की प्रेरणा से कवि हेमराज ने नयचक्र वचनिका बनाई थी।[३]

१-२. जयचन्द्रजी भंडार बीकानेर। ३. दानसागर भंडार बीकानेर।

टीका[1], अनुयोगचतुष्टयव्याख्या[2] प्रव्रज्याभिधानटीका[3], अजितशान्तिस्तव बोधदीपिका[4] नाम्नी टीका, भयहरस्तोत्र (नमिउण) अभिप्रायचन्द्रिका[5] टीका, उपसर्गहरस्तोत्र अर्थकल्पलता[6] टीका, पादलिप्तसूरिकृतवीरस्तोत्र टीका, गुणानुरागकुलक[7], कालचक्रकुलक[8], परमतत्त्वावबोधद्वात्रिंशिका[9][10],

---

१. देखें, जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास और जैनस्तोत्र संदोह भा० २.

२. प्र० । ३. देखें, हीरालाल कापड़िया की चतुर्विंशतिजिनानंद स्तुति, प्रस्ता०, पृ० ४७ ।

४. र० सं० १३६५ पौष० दाशरथिपुर ग्र० ७४०. प्र० ।

५. आ०—श्रीपार्श्वं स्वामिनं स्मृत्वा, मानतुङ्गगुरोः कृतौ ।
वृत्तिं भयहरस्तोत्रे, सूत्रयामि समासतः ॥१॥
अं०—भयहरस्तवने विवृतिर्मया व्यरचि किञ्चन मन्दधियाप्यसौ ।
अनुचितं यदवोचमिह क्वचित्तदनुगृह्य विशोध्यमृषीश्वरैः॥२॥
वृत्तिरेषा विशेषोक्तिः रोचिष्णुश्चारुचेतनैः ।
च्यवतां चिररात्राय, नाम्नाभिप्रायचन्द्रिका ॥२॥
संवद्विक्रमभूपतेः शरऋतूर्दिचमृगाङ्क मिते (१३६५)
पौषस्योज्ज्वलपक्षभाजि रविणा युक्तो नवम्यां तिथौ ।
शिष्यः श्रीजिनसिंहसूरिसुगुरोष्टीकामकार्षीदिमां,
श्रीसाकेतपुरे जिनप्रभ इति ख्यातो मुनीनां प्रभुः ॥३॥
प्रत्यक्षरं निरूप्यास्य ग्रन्थमानं विनिश्चितम् ।
अनुष्टुप्च्छंदसा त्रीणि शतानि परिभाव्यताम् ॥४॥

६. सं० १३६४ पौष कृष्णा ९ साकेतपुर ग्र० २७१, प्र० ।

७. सं० १३८० चतुर्विंशतिप्रबन्ध अनुवाद के परिशिष्ट में प्र० ।

८. गा० ३५, लींबड़ी भंडार ।

९. इसी संग्रह में ।

१०. ,, ,,

विशुद्धि[1], व्यवस्थापत्र[2]।

व्याकरण—कातन्त्रविभ्रमटीका,[3] रुचादिगणवृत्ति.[4]।

★ पूजाविधि के अन्तर्गत ही 'वन्दनस्थान विवरण, प्रत्याख्यान-विवरण, शान्तिपर्वविधि, चौराशी आशातना' है, स्वतंत्र नहीं।

'गृहप्रतिमायास्तु संक्षेपतः स्नपनविधिरयम्—"

"वंदणगणविवरणं समत्तं।"

'संपयं पच्चक्खाणठाइं भणंति × × × × पच्चक्खाणठाण-विवरणं सम्मत्तं।"

जिणपूजाविहिमाइ सुबहुविट्ठाणेसु जाण गन्थग्गं।

"पच्चक्खपरगणणाए बाहत्तरिसंजुया छ सया।"

"ग्रन्थाग्रं० ६७२ कृतिः श्रीजिनप्रभसूरीणां।"

जैन साहित्य मंदिर पालीताणा नं० ५९९ प० १४।

१. "सर्वविरतिप्रायश्चित्तं" इति सर्वविरतिसंक्षेपोऽलेखि श्रीजिन-प्रभसूरिभिः।—जैन साहित्य मंदिर पालीताणा—नं० ४९०,

२. "ॐ गुरुभ्यो नमस्कृत्य श्रीजिनप्रभसूरिभिर्व्यवस्थापत्रं लिख्यते-"
व्यवस्था ३२.
—जैन साहित्य मंदिर पालीताणा, नं० ५९९.

३. आ०—प्रणम्य परमं ज्योति, बालाना हितकाम्यया।
वक्ष्ये संक्षेपतः स्पष्टां, टीकां कातन्त्रविभ्रमे॥

अं. प्र:—पक्षेपुशक्तिशशाङ्कमित (१३५२) विक्रमाब्दे,
धाम्नाङ्किते हरतिथौ पुरि योगिनीनाम्।
कातन्त्रविभ्रम इह व्यतनिष्ट टीका-
मप्रौढधीरपि जिनप्रभसूरिरेताम्॥१॥
प्रत्यक्षरं निरूप्यास्य ग्रन्थमानं विनिश्चितम्।
एकपञ्चाशा समधिके, शतद्वयमनुष्टुभाम्॥ २॥

४. अं. प्र०—दुर्गवृत्तिगरुचादिगणस्य, श्रीजिनप्रभमुनिप्रभुरेताम्।
पञ्जिकामुपनीय विनेते वृत्तिमल्पप्रतिबोधनिमित्तम्॥१॥

तीर्थकल्प—विविधतीर्थकल्प[१]।

विविधतीर्थकल्प के अन्तर्गत निम्नकल्प हैं—

शत्रुञ्जयतीर्थकल्प,[३] रैवतकगिरिकल्पसंक्षेप, उज्जयन्तमहातीर्थकल्प, रैवतकगिरिकल्प, पार्श्वनाथकल्प, स्तम्भनककल्प, अहिच्छत्रानगरीकल्प,

---

अं०प्र०—श्रीधर्मदासकविना सुगतां हि सेवा-
हेवाकिना विरचिते गहनेऽत्र शास्त्रे ।
व्याख्यां विधा···सुगमासुकृतं यदापं,
तेनास्तु धीर्मम सदैव परोपकारे ॥१॥
श्रीविक्रमभूभर्त्तुर्वसुरसशक्तीन्दुसम्मिते (१३६८) वर्षे ।
नभसि सितद्वादश्यां, नृपभटपुरे नामनि विहरन् ॥२॥

१. अं० प्र०—आदितः सर्वकल्पेषु ग्रन्थमानमजायत ।
अनुष्टुभा पञ्चत्रिंशच्छती षट्चघधिका स्थिता ॥ १ ॥
कार्यो सजेत् ? किं प्रतिषेधवाचि पदं ? ब्रवीति प्रथमोपसर्गः ।
कीदृग् निशा ? प्राणभृता प्रियः कः ? को ग्रन्थमेतं रचयांचकार ?॥२॥
—जिनप्रभसूरयः ।

नन्दाऽनेकपशक्तिशीत[१]गुमिते श्रीविक्रमोर्वीपते-
र्वर्षे भाद्रपदस्य मास्यवरजे सौम्ये दशम्यां तिथौ ।
श्रीहम्मीरमहम्मदे प्रतपति क्ष्मामण्डलाखण्डले,
ग्रन्थोऽयं परिपूर्णतामभजत श्रीयोगिनीपत्तने ॥३॥
तीर्थानां तीर्थभक्तानां, कीर्त्तनेन पवित्रितः ।
कल्पप्रदीपनामायं, ग्रन्थो विजयतां चिरम् ॥४॥
(प्रकाशित)

३. अं० प्र०—

प्रारम्भेऽप्यस्य राजाधिराजः संघे प्रसन्नवान् ।
अतो राजप्रसादाख्यः, कल्पोऽयं जयताच्चिरम् ॥१२२॥
श्रीविक्रमाद्दे बाणाष्टविश्वेदेव (१३८५) मिते मितौ ।
सप्तम्यां तपसः साम्यदिवसेऽयं समर्थितः ॥१२३॥

अर्बुदाद्रिकल्प, मथुरापुरीकल्प, अश्वावबोधतीर्थकल्प, वैभारगिरिकल्प,[1] कौशाम्बीनगरीकल्प, अयोध्यानगरीकल्प, अपापापुरीकल्प, कलिकुण्डकुर्कुटेश्वरकल्प, हस्तिनापुरकल्प, सत्यपुरतीर्थकल्प, अष्टापदमहातीर्थकल्प, मिथिलाकल्प, रत्नवाहपुरकल्प, अपापाबृहत्कल्प[2] कन्यानयनीयमहावीर-प्रतिमाकल्प, प्रतिष्ठानपत्तनकल्प, नन्दीश्वरद्वीपकल्प, काम्पिल्यपुरतीर्थकल्प, अणहिलपुरस्थित अरिष्टनेमिकल्प, शंखपुरपार्श्वकल्प, नासिक्यपुरकल्प, हरिकंखीनगरस्थितपार्श्वनाथकल्प कपर्दियक्षकल्प, शुद्धदन्तीस्थितपार्श्व-नाथकल्प, अवन्तिदेशस्थ अभिनन्दनदेवकल्प, प्रतिष्ठानपुरकल्प, प्रतिष्ठान-पुराधिपतिसातवाहननृपचरित्र, चम्पापुरीकल्प, पाटलिपुत्रनगरकल्प, श्रावस्तीनगरीकल्प, वाराणसीनगरीकल्प, महावीरगणधरकल्प,[3] कोकावसतिपार्श्वनाथकल्प, कोटिशिलातीर्थकल्प, वस्तुपाल-तेजःपालमन्त्रिकल्प, ढीपुरीतीर्थकल्प, ढींपुरीस्तव[4], चतुरशीतिमहातीर्थनामसंग्रहकल्प, समवसरण-

---

१. अं० प्र०—वर्षे सिद्धाश्वरस्वद्गगशिगिकुमिते, (१३६४) वैक्रमे मासिमौलौ,
सेवाहेवाकिना श्रीविमलगुरुतरो देवता शीलितस्य ।
वैभारक्षोणिभर्तुर्गुणगणमणनव्यापृता भक्तिपूर्वैः,
सूरिर्जैनप्रभीयं मृदुविशदवचोगीयतां धीरधीभिः ॥१७॥

२. अं० प्र०—इय पावापुरीकप्पो, दीवमहूसवविहिकनरमणिज्जो ।
जिणपहसूरीहि कओ, ठिईहि गिरिदेवनिलयदंसे ॥१॥
तेरहसत्तावीसे, विक्कमवरिसम्मि भद्दवयबहुले ।
मुणिगणवासरतीए, समत्थिओ एस ताम्ब धणे ॥२॥

३. अं० प्र०—जिणपहसूरिहिं रइओ, गहमनुणिसिद्धि (१३८९) मिअविरसम्म-
समाहु ।
चिट्ठिगिपवयणनिमुहे, गणहरकप्पो चिरं जयउ ॥३॥

४. अं० प्र०—वसुरसदहनक्षोणिमिते (१३५१) ज्येष्ठमासे,
पुरुषनिमहे संघकोला उपेत्य पुरोमिता ।
मुदितमनागर्णोर्थस्तावन्त . प्रभावकयोदयो-
रिविविरचना चारु स्तोत्रं जिनप्रभसूरयः ॥४॥

रचनाकल्प, कुडुंगेश्वरनाभेयदेवकल्प, व्याघ्रीकल्प, अष्टापदगिरिकल्प, हस्तिनापुरतीर्थस्तव[1], कुल्यपाकस्थ ऋषभदेवस्तुतिः, आमरकुण्डपद्मावती-देवीकल्प, चतुर्विंशतिजिनकल्याणककल्प, तीर्थंकरातिशयविचार, पञ्च-कल्याणकस्तव, कोल्लपाकमाणिक्यदेवतीर्थकल्प, श्रीपुरः अन्तरिक्षपार्श्वनाथ-कल्प, स्तम्भनककल्पशिलोंछ, फलवर्द्धिपार्श्वनाथकल्प, अम्बिकादेवीकल्प, पञ्चपरमेष्ठिनमस्कारकल्प।

मन्त्र-साहित्य—सूरिमंत्रबृहत्कल्पविवरण[2], ह्रींकारकल्प[3], रहस्यकल्पद्रुम[4], शक्रस्तवाम्नाय[5] अलंकारकल्पविधि[6]।

---

१. अं० प्र०—

इत्थं पृथक्कविषयकिमिते शकाब्दे, वैशाखमासक्षितिपक्षगषष्ठतिथ्याम्।
यात्रोत्सवोपनतसंघयुतो यतीन्द्रः, स्तोत्रं व्यधाद् गजपुरस्य जिनप्रभोऽस्य ॥३॥

२. आ०—अर्हं बीजं नमस्कृत्य, सम्प्रदायलवो मया।
कल्पाद्गुरूपदेशाच्च सूरिमन्त्रस्य लिख्यते ॥१॥

अं०—इति श्रीसूरिमन्त्रस्याम्नायलेशं विदुष्यवान्।
दृष्ट्वा पुराणकल्पेभ्यः श्रीजिनप्रभसूरिराट् ॥१॥
(श्रीजिनप्रभसूरिसमुद्धृतः श्रीसूरिविद्याकल्प.)

अं०—"श्रीजिनप्रभसूरिसम्प्रदायागतः।" (प्रकाशित)

३. अं० प्र०—इति श्रीमायाबीजकल्पः श्रीखरतरगच्छाधीशभट्टारक-श्रीजिनप्रभसूरिविरचितः समाप्तः। (प्रकाशित)

४. "भट्टारकश्रीजिनप्रभसूरिकृतरहस्यकल्पद्रुममध्यात् प्रयोगा दृष्ट-(प्रत्ययाः लिख्यन्ते।" ग्रन्थ प्राप्त नहीं है। कदाचित् प्रयोगप्राप्त हैं। प्रतिलिपि नाहटा-संग्रह।)

५. आचार्य शाखा भंडार, बीकानेर।

६. आचार्य हरिसागरसूरि, लोहावट।

१४	चतुर्विंशतिजिनस्तवः	यं सन्ततमक्षमालोपशोभितं	३०
१५	,,	आनन्दसुन्दरपुरन्दर	२९
१६	,,	ऋषभदेवमनन्तमहोदयं	३०
१७	,,	ऋषभनायमनाथ	२९
१८	,,	तत्त्वानि तत्त्वानि भूतेषु सिद्धम्	२८
१९	,,	प्रणम्यादिजिनं प्राणी	२८
२०	,,	नाभेयं शोचि निर्ममो(आगरा भंडार)	२५
२१	,,	जिनर्षभप्रीणितभव्यसार्थ	८
२२	,,	नत सुरेन्द्रजिनेन्द्रयुगादिमा	९
२३	पुण्डरीकगिरिमण्डण ऋषभस्तवः [कातन्त्रसन्धिसूत्रगर्भित]	सिद्धो वर्णसमाम्नायः	२३
२४	युगादिदेवस्तवः [अष्टभाषामय]	निरवधिरुचिरज्ञानं	४०
२५	,,	मेरौ दुग्धपयोधि वा	३३
२६	,,	अस्तु श्रीनाभिभूर्देवो	११
२७	,,	अल्लाल्लाहि	११
२८	ऋषभदेवाज्ञास्तव	नयगमभंगपहाणा	११
२९	अजितजिनस्तवः	विश्वेश्वरं मथितमन्मथभूपमानं	२१
३०	चन्द्रप्रभजिनस्तवः [षड्भाषागर्भित]	नमो महसेननरेन्द्रतनूज	१३
३१	चन्द्रप्रभचरित्रम्	चंदप्पह चंदप्पह	२२
३२	चन्द्रप्रभस्तवः	दैवैर्यः स्तुष्टुवे तुष्टैः	४
३३	शान्तिनाथाष्टकम् [पारसीभाषा]	अजिकुहकाकुजु	९
३४	शान्तिजिनस्तवः	शृङ्गारभागुरगुरागुर (आगराभंडार)	२४
३५	,,	शान्तिनाथो भगवान्	२०

६०	वीरजिनस्तवः	विश्वश्रीधुरच्छिदे	२१
६१	,	श्रीवर्धमानः सुखवृद्धयेऽस्तु	९
६२	वीरनिर्वाणकल्याणकस्तवः	श्रीसिद्धार्थनरेन्द्रवंश	१९
६३	वीरजिनस्तवः [पञ्चकल्याणकमय]	पराक्रमेणेव पराजितोयं	३६
६४	,,	श्रीवर्द्धमानपरिपूरित	१३
६५	तीर्थमालास्तव.	चउवीसंपि जिणिंदे	१२
६६	तीर्थयात्रास्तवः	सिरिसत्तुजयतित्थे	९
६७	मथुरायात्रास्तोत्रम्	सुराचलश्रीजिति	१०
६८	मथुरास्तूपस्तुतिः	श्रीदेवनिर्मितस्तूप	४
६९	स्तुतित्रोटकः	नियजंमु सफलु	५
७०	,,	ते धन्नपुन्नमुकयत्यनरा	४
७१	विज्ञप्तिः	सिरिवीयराय देवाहिदेव	३५
७२	गौतमस्तवः	श्रीमन्तं मगधेषु	२१
७३	,,	जम्मपवित्तियसिरिमगहदेस	२५
७४	गौतमाष्टकम्	ॐ नमस्त्रिजगन्नेतुः	९
७५	गुधर्मगणधरस्तव· [विविधछंदमय]	आगमत्रिपथगा हिमवन्तं	२१
७६	जिनसिंहसूरिस्तवः	प्रभुः प्रदद्यान्मुनिप	१३
७७	सिद्धान्तागमस्तवः	नत्वा गुरुभ्यः श्रुतदेवतायै	४५
७८	४५ आगमस्तवः	सिरिवीरजिणं	११
७९	शारदास्तवः	वाग्देवते भक्तिमतां	१३
८०	सरस्वत्यष्टकम्	ॐ नमस्त्रिदशवन्दितक्रमे	९
८१	पद्मावतीचतुष्पदिका	जिणशासणु अवधावि	३७
८२	वर्धमानविद्यास्तवः	आमि किल्दुत्तरमय	१७
८३	परमतत्त्वावबोधद्वात्रिंशिका	धर्माधर्मान्तरं मत्वा	३२

८४	हीयाली	अपूर्व अनूलक्ष
८५	,, [अपूर्ण]	चारि चन्दन चउ

सारस्वतदीपक[1]

आचार्य जिनप्रभ का साहित्य

जैसा कि कहा जा चुका है कि आचार्य जिनप्रभ सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने अनेक विषयों में साहित्य-रचना की है। वर्गीकृत उनका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है

काव्य

आचार्य काव्य व काव्यशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् थे। उनका 'श्रेणिक चरित' नामक एक काव्यग्रन्थ मिलता है। यह 'द्व्याश्रयकाव्य' है। इस ग्रन्थ की रचना आचार्य ने सं० १३५६ वि० में की थी। कदाचित् इस ग्रन्थ की रचना में उन्हें हेमचन्द्राचार्य के 'सिद्धहेमशब्दानुशासन' के आधार 'द्व्याश्रयकाव्य' से प्रेरणा मिली थी। हेमचन्द्र ने अपने शब्दानुशासन के सूत्रों का सफल प्रयोग करते हुए गुजरात के चालुक्यवंश का इतिहास अपने

क्रमाङ्क, १५,१६,१७,२०,२४,३७,४७ और ६० ज्ञात करने में असमर्थ रहा हूँ। —लेखक

१. [illegible]-
[illegible] ।
[illegible]-
[illegible] ॥१॥

(सारस्वतदीपक प्रथम पद)

[illegible]

द्वयाश्रयकाव्य में प्रस्तुत किया है। यहाँ एक उदाहरण असङ्गत न होगा। इसमें काले अक्षरों में शब्द व्याकरण के प्रयोग हैं। भीमदेव सोलंकी (चालुक्य) द्वारा पराजित सिन्ध के हम्मुक के शौर्य का वर्णन करते हुए कवि कहता है :

अदमि न सुरैर्नो वा दैत्यैरदामि य आहवे।
स्म दमयति तं दामंदामं दमंदमभोजसा॥
चुलुककुलभूः कामंकामं ह्यकामघदामय।
समय निगडं प्रामंप्रामं य आमि न केनचित्॥
नाचामि नाकामि च केनचिद्या सा सोथ चौलुक्यकुलावतंसः।
आचाममाचाममभिभाववसैन्या न्याचामयत् सेक्षुयवा तदुर्वीम्॥

श्रेणिकचरित भी इसी श्रेणी का काव्य है। यह काव्यशास्त्र के नियमों के अनुसार महाकाव्य की श्रेणी का काव्य है; परन्तु इसको 'एकार्थ-काव्य' कहा जाय तो अधिक संगत होगा।

प्रथम सर्ग में कातन्त्रव्याकरण के सन्धिपाद को उपस्थित किया गया है। पाँचों सन्धियों के पृथक्-पृथक् रूप दिखाये गए हैं। काव्य का प्रारम्भ इस प्रकार होता है :—

सिद्धो वर्णसमाम्नायः सर्वस्योपचिकीर्षता।
येनादौ जगदे ब्राह्म्यै स नन्द्यान्नाभिनन्दनः॥
देशोऽस्ति मगधाभिख्यो यत्र मञ्जुस्वरा नराः।
समानश्रीसवर्णास्त्री युक्ता ह्रस्वेतराशयाः॥

सब का उपकार करने की इच्छावाले जिन प्रभु ने ब्राह्मी के वर्णों की मर्यादा सिद्ध की ऐसे नाभि राजा के पुत्र भगवान् ऋषभदेव ज्ञान-समृद्धि के साथ आनन्द प्रदान करें। मगध नाम का एक देश है, जिसमें सुन्दर स्वरवाले, समान लक्ष्मीवाले, समान वर्ण की स्त्रियों से युक्त प्रबल पुण्य रहते थे।

इन श्लोकों में कातन्त्रव्याकरण के प्रथम पांच सूत्रों (१. सिद्धो वर्णसमाम्नायः, २ तत्र चतुर्दशादौ स्वराः, ३. दश समानाः, ४. तेषां

इसमें मत्, आवाभ्यां, अस्मत् शब्द के पञ्चमी विभक्ति के तथा युष्मभ्यं, अस्मभ्यं आदि चतुर्थी के रूप आये हैं।

चतुर्थ सर्ग में कारक-प्रकरण को लेकर विभक्तियों के विभिन्न प्रयोग दिखाये गए हैं। उदाहरणार्थ :

स्मृताप्यग्नये स्वाहा वषट् प्राचीनबर्हिषे।
स्वधा पितृभ्य इत्येते मन्त्रास्त्राणाय न क्षमाः॥
स्यात् पुंसां श्रेयसे दारु यूपायेव जिनेन्द्र यत्।
तस्मै सचेताः को नाम त्वत्तीर्थाय न मन्यते॥

अग्नये स्वाहा, प्राचीनबर्हिषे (इन्द्र) वषट्, पितृभ्यः स्वधा आदि मंत्र याद तो किये थे परन्तु उनकी रक्षा करने में समर्थ था नहीं। हे जिनेन्द्र! यज्ञ के स्तम्भ की काष्ठ जिस तरह पुरुषों के कल्याण के लिए है इस बात को उसे आपके तीर्थ से सचेत प्राण नहीं मानता।

प्रथम श्लोक में स्वाहा, स्वधा, वषट् के योग में चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग करके 'नमः स्वस्तिस्वाहास्वधावषड्योगे चतुर्थी' इस व्याकरण सूत्र की पुष्टि की गई है। इसी तरह दूसरे में यूपाय, तीर्थाय, श्रेयसे आदि रूपों का प्रयोग 'तादर्थ्ये चतुर्थी' व्याकरण सूत्र के अनुसार हुआ है।

पञ्चम सर्ग में संस्कृत व्याकरण के तद्धित-प्रकरण के सिद्धरूप दिये गए हैं। प्रारम्भ में सर्गार्ध में समासों के सिद्धरूप आये हैं और अन्त में तद्धित के।

षष्ठ सर्ग में आख्यात (धातु) प्रक्रिया के प्रथमपाद के रूप दिखाये गए हैं। इसी तरह सप्तम सर्ग में धातु प्रक्रिया के दूसरे पाद के रूप दिखायें गए हैं। शेष सर्गों में आख्यात प्रक्रिया के अवशिष्ट ६ पादों तथा कृत प्रकरण के ६ पादों के रूपों को उपस्थित किया गया है।

काव्य का विषय एक उद्देश्य को लेकर चलता है। इसमें महाकाव्य के सभी गुण विद्यमान हैं; परन्तु जातीय पृष्ठभूमि के अभाव के कारण

जिनचन्द्रसूरि एवं षट्त्रिंशद्वादविजेता जिनपतिसूरि तक अविच्छिन्न रूप से होता रहा। आचार्य जिनपतिसूरि के समय तक चैत्यवास-प्रथा का ह्रास हो चुका था और सर्वत्र सुविहित पक्ष का प्रचार हो चुका था।

आचार्य जिनेश्वर से जिनपतिसूरि तक के समय में विधि-[illegible] प्रवृत्ति का विशेषतया प्रचार रहा। इस अवधि में कतिपय आचार्यों ने विधानात्मक कई छोटे-मोटे प्रकरणों की रचनाएँ भी की थी; जिनमें से प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं :

जिनचन्द्रसूरि	श्रावकविधि दिनचर्या
परमानन्द (अभयदेवसूरि शि०	सामाचारी
जिनवल्लभसूरि	प्रतिक्रमण सामाचारी, पौषधविधिप्रकरण
जिनदत्तसूरि	व्यवस्थाकुलक, शान्तिपर्वविधि, आचार्यपदादिव्यवस्था
मणिधारी जिनचन्द्रसूरि	व्यवस्थाकुलक
जिनपालोपाध्याय	संक्षिप्तपौषधविधि
जिनेश्वरसूरि (द्वितीय)	श्रावकधर्मविधि

किन्तु व्यवस्थित रूप से समग्र क्रियाओं-विधानों का आकर कोई भी ग्रन्थ विधिपक्ष का जिनप्रभसूरि तक निर्मित नहीं हुआ था। जबकि अन्य गच्छों की अनेक सामाचारी-ग्रन्थों का निर्माण और प्रचार हो चुका था। ऐसी अवस्था में विधिमार्गानुयायियों को अनेक सामाचारी ग्रन्थ देखकर भ्रम न हो तथा अपने विधिपक्ष पर आरूढ़ रहकर सामाचारी का पालन कर सकें इस दृष्टि से आ० जिनप्रभसूरि ने 'विधिमार्गप्रपा' नामक विशाल ग्रन्थ का निर्माण किया।

नामकरण

ग्रन्थ के नामकरण के सम्बन्ध में मुनि जिनविजयजी अपनी सम्पादकीय प्रस्तावना में लिखते हैं—

इस ग्रन्थ का सम्पूर्ण नाम, जैसा कि ग्रन्थ की सब से अन्त की गाथा में सूचित किया गया, विधिमार्गप्रपा नाम सामाचारी (विहिमग्गपवा नामं सामायारी, देखो, पृ० १२०, गा० १६) ऐसा है। पर इसकी पुरानी सब प्रतियों में अन्यान्य उल्लेखों में भी संक्षेप में इसका नाम 'विधिप्रपा' ऐसा ही प्रायः लिखा हुआ मिलता है, इसलिये हमने भी मूलग्रन्थ में इसका यही नाम सर्वत्र मुद्रित किया है; पर वास्तव में ग्रन्थकार का निज का किया हुआ पूर्ण नामाभिधान अधिक अन्वर्थक और संगत मालूम देता है। इस विधिमार्ग शब्द से ग्रन्थकार का खास विशिष्ट अभिप्राय उद्दिष्ट है। सामान्य अर्थ में तो 'विधिमार्ग' का 'क्रियामार्ग' ऐसा ही अर्थ विवक्षित होता है पर यहाँ पर विशेष अर्थ में खरतरगच्छीय विधि-क्रिया-मार्ग ऐसा भी अर्थ अभिप्रेत है। क्योंकि खरतरगच्छ का दूसरा नाम विधिमार्ग है और इस सामाचारी में जो विधि-विधान प्रतिपादित किये गये हैं वे प्रधानतया खरतरगच्छ के पूर्व आचार्यों द्वारा स्वीकृत और सम्मत हैं। इन विधि-विधानों की प्रक्रिया में अन्यान्य गच्छ के आचार्यों का कहीं कुछ मतभेद हो सकता है और है भी सही। अतएव ग्रन्थकार ने स्पष्ट रूप से इसके नाम में किसी को कुछ भ्रान्ति न हो इसलिये इसका 'विधिमार्गप्रपा' ऐसा अन्वर्थक नामकरण किया है। इसलिये इसका यह 'विधिमार्गप्रपा' नाम सर्वथा सुन्दर, सुसंगत और वस्तुसूचक है ऐसा कहने में कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

अन्य सामाचारी-ग्रन्थ

वैसे तो जिनप्रभसूरि ने इस ग्रन्थ में कतिपय आचार्यों और ग्रन्थों के नाम—मानदेवसूरि (पृ० २), जिनवल्लभसूरिकृत पौषधविधि (पृ० २२) पादलिप्तसूरिकृत निर्वाणकलिका (पृ० ६७), श्रीचन्द्रसूरिकृत प्रतिष्ठासंग्रह

(पृ० १११), कथारत्नकोष[1] (पृ० ११४), और सैद्धान्तिक श्रीविनयचन्द्र-सूरि (पृ० ११९), योगविधान (पृ० ५८) तथा महानिशीथ आवश्यकचूर्णि आदि दिये हैं किन्तु 'बहुविह सामायारी ओ दट्ठु,' के अनुसार तत्समय में प्रचलित सामाचारी ग्रन्थों का उल्लेख नहीं किया है। संभवतः उस समय तक प्रचलित उमास्वातिकृत पूजाप्रकरण, हरिभद्रसूरिकृत प्रतिष्ठाकल्प, चन्द्रगच्छीय सिद्धसेनसूरि कृत सामाचारी, अजितदेवसूरिकृत योगविधि (र० सं० १२७३), श्रीतिलकाचार्यकृत सामाचारी एवं श्रीचन्द्रसूरिकृत प्रतिष्ठाकल्प एवं सुबोधा सामाचारी आदि ग्रन्थ उनके सम्मुख अवश्य रहे होंगे।

चन्द्रगच्छीय श्रीतिलकाचार्य[2]-कृत सामाचारी[3] एवं श्रीचन्द्रसूरि[4]-कृत सुबोधा सामाचारी[5] ग्रन्थ से तुलना करने पर स्पष्ट हो जाता है कि तत्समय में प्रचलित न केवल वैधानिक विषय ही अपितु क्रिया-पद्धति भी एक ही थी। केवल कहीं-कहीं स्वगच्छीय मर्यादानुसार अन्तर प्रतीत होता है। ये दोनों सामाचारी-ग्रन्थ संक्षेप में विषय का प्रतिपादन करते हैं, वहाँ उन्हीं विषयों का प्रतिपादन विधिमार्गप्रपाकार विस्तार के साथ करते हैं, ताकि उस समय क्रियाकार को अन्य किसी सहायक की जरूरत न रहे। दीक्षाविधि, पदस्थापनविधि एवं प्रतिष्ठाविधिप्रकरण का तो अध्ययन करने

---

१. विधिमार्गप्रपा पृ० १११ में उपधानोद्यापनविधि के जो ५० पद्य दिये गये हैं वे देवभद्रसूरिकृत कथारत्नकोष पृ० ८१, गा० १० से ९५ और पृ० ७१ गाथा ११४ से १२४ तक के हैं।

२. चन्द्रग० शिवप्रभसूरि के शिष्य थे। इनका रचनाकाल १२६१ से १३०२ है। विशेष अध्ययन के लिये देखें, जै० सा० सं० इ० ५९८.

३. शाह नगीनदास करमचन्द भाई दोशी, गाडली पोल, अहमदाबाद से प्रकाशित।

४. देखें, [illegible]।

५. देवचन्द लालभाई पुस्तकोद्धार फण्ड से प्रकाशित।

पर ऐसा प्रतीत होता है कि मानों इस विषय के ये मौलिक एवं स्वतंत्र ग्रन्थ ही हो।

इन दोनों सामाचारी ग्रन्थों के साथ विषय साम्य ही नहीं, अपितु कतिपय प्रकरण तो अक्षरशः जैसे के तैसे प्राप्त होते है। उदाहरण के लिये तुलना कीजिये :—

विधिमार्गप्रपा	सुबोधसामाचारी
उपधानविधि, पृ० १२	पृ० ६.
पंचनमोक्कारेकिल० गा० ५४	
कल्लाणकंदादि ८ गाथा० ११	,, ३८
सावज्जकज्जादि० गा० ९ १५.	,, ३८
जइसिद्धाणादि० गा० ५ १०३.	" ४४
सुइराणमंतनासो आदि० गा० ६ १०३	,, ४७

× × ×

	सामाचारी
अरिहाणनमो पूर्यं आदि गा० ३६ पृ० ३१.	पृ० ४
पंचनमोक्कोर किल आदि गा० ५४. पृ० १२.	पृ० ६ गाथाओं का हेरफेर अवश्य हैं।
असंखयं जीविय आ० गा० १८ पृ० ४९	३५

× × ×

'सुबोधसामाचारी' तथा 'सामाचारी' में प्रतिपाद्य विषयो का संक्षेप में प्रतिपादन किया गया है जब कि विधिमार्गप्रपा में समग्र विषयों का विशद शैली में निरूपण किया गया है और सुबोधा सामाचारी में 'आलोचनाधिकार' नहीं है एवं सामाचारी में 'प्रतिष्ठाधिकार' नही है जब कि इन दोनों अधिकारों का भी इस ग्रन्थ में विस्तृत रूप में प्रतिपादन किया गया है।

'निर्वाणकलिका' वस्तुतः प्रतिष्ठाविधि ग्रन्थ है। इसमें २९ विधियाँ है,

दहन क्रिया के वर्णन करनेवाले भिन्न-भिन्न विधान प्रकरण हैं; और ३४ वें 'आलोयणविही' संज्ञक प्रकरण में ज्ञानातिचार, दर्शनातिचार आदि आलोचना विषयक अनेक भिन्न-भिन्न अन्तर्गत प्रकरण है। इसी तरह ३५ वे 'पइट्ठाविही' नामक प्रकरण में जलानयनविधि, कलशारोपणविधि, ध्वजारोपण विधि—आदि कई एक आनुषंगिक विधियों के स्वतंत्र प्रकरण सन्निविष्ट हैं।

इन ४१ द्वारों—प्रकरणों में से प्रथम के १२ द्वारों का विषय, मुख्यतः श्रावक जीवन के साथ संबंध रखनेवाली क्रिया-विधियों का विधायक है; १३ वें द्वार से लेकर २९ वें द्वार तक विहित क्रिया-विधियाँ प्रायः साधु जीवन के साथ संबंध रखती है और ३० वें द्वार से लेकर ४१वें द्वार तक में वर्णित क्रिया-विधान, साधु और श्रावक दोनों के जीवन के साथ संबंध रखने वाली कर्त्तव्यरूप विधियों के संग्राहक हैं।

यह ग्रन्थ सचमुच ही जैन क्रिया-विधानों का परिचय प्राप्त करने के इच्छुकों के लिये सुन्दर प्रपा-तुल्य एवं सर्वश्रेष्ट है। सारा ग्रन्थ प्राकृत गद्य में लिखा हुआ है, बीच-बीच में गाथाएं भी उद्धृत की गई है जो अधिकतर पूर्वाचार्यों की है। आलोचनाग्रहणविधि पद्य ६४ (पृ० ९३-९६) तथा पिण्डालोचना विधानप्रकरणगाथा ७२ (पृ० ८२-८६) तो ग्रन्थकार द्वारा रचित स्वतन्त्र प्रकरण से हैं। विषय की दृष्टि से यह ग्रन्थ अलभ्य सामग्री प्रस्तुत करता है। समग्र-विधि-विधानों का ऐसा विशद और क्रमबद्धरूप अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलता। यही कारण है कि परवर्ती समस्त गच्छों के विधान-ग्रन्थकारों ने किसी न किसी रूप में, अंश रूप से या पूर्णरूप से इस ग्रन्थ का अनुकरण किया है और इसे आदर्शरूप में माना है।

इस ग्रन्थ की रचना-समाप्ति वि० सं० १३६३ विजया दशमी के दिन कोशलानगर अर्थात् अयोध्या नगरी में हुई है। यह ग्रन्थ मुनि जिनविजय जी द्वारा सम्पादित होकर प्रकाशित हो चुका है।

अप्रकाशित हैं और इनकी एक मात्र प्रतियां जैन साहित्य मन्दिर, पालीताणा में क्रमशः ५९९, ४९० एवं ५९९ पर प्राप्त हैं।

मन्त्र साहित्य

जैन साहित्य में विधि-विधानों में प्रयुक्त होनेवाले मन्त्रों की संख्या भी बहुत अधिक है। 'ॐ नमो अरिहन्ताणं' बौद्ध शीलत्रय की तरह जैन-शासन का मूलाधार माना जाता है। जिनप्रभसूरि महाप्रभावक आचार्य थे। इसलिए मन्त्रों की ओर उनका ध्यान जाना भी अनिवार्य था। मन्त्र-साहित्य से सम्बन्धित उनके ग्रन्थ ये हैं:–'ह्रींकारकल्पविवरण, सूरिमन्त्र-बृहत्कल्पविवरण, चूलिका, रहस्यकल्पद्रुम, वर्धमानविधकल्प, शक्रस्तवाम्नाय, अलङ्कारकल्पविधि, पञ्चपरमेष्ठिमहामन्त्र स्तव, गायत्रीविवरण आदि।

ह्रींकारमन्त्रविवरण में ह्रींकारमन्त्र की महत्ता का वर्णन करते हुए उसकी प्रयोगविधि पर प्रकाश डाला गया है। ह्रींकारमन्त्र को चौबीस तीर्थङ्करों, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वरादि सब देवताओं से युक्त माना गया है। इससे भाग्यहीन को भी सिद्धि मिलती है। इसके जाप से सभी देवी-देवता सिद्ध होते हैं। सभी प्रकार के भय दूर होते हैं। बुद्धि प्राप्ति, शत्रु-उच्चाटन, द्रव्यप्राप्ति आदि के लिए इस ग्रन्थ में विभिन्न उपायों से ह्रींकार मन्त्र प्रयुक्त करने की विधि दी गई है। इससे पद्मावती देवी भी प्रसन्न होती है।

वर्धमानविधाकल्प प्राकृतभाषा में है। उपाध्याय पद धारक साधु के लिये आराधना विषयक विधान दिया गया है।

सूरिमन्त्रबृहत्कल्पविवरण में सूरि-मन्त्राक्षरों का फलादेश संस्कृत गद्य-पद्य में प्रस्तुत किया गया है। इन मन्त्रों का आराधन करनेवाला आचार्य धर्मोन्नति के साथ आत्मकल्याण करने में भी समर्थ होता है। ग्रन्थ में विद्यापीठ, महाविद्यापीठ, उपविद्यापीठ, मन्त्रपीठ, मन्त्रराजपीठ आदि पाँच

ग्रन्थकार ने तीर्थों व तीर्थभक्तों से सम्बन्धित घटनाओं का संस्कृत व प्राकृत भाषा में, गद्य व पद्य में प्रामाणिक वर्णन किया है जिससे उस समय की स्थिति का पता चलता है। स्वयं आचार्य जिनप्रभ के जीवन की अनेक घटनाओं—जैसे सुल्तान मुहम्मद की प्रसन्नता, फरमान, मूर्ति का उद्धार, तीर्थों की रक्षा, प्रतिष्ठा आदि की सूचना इन तीर्थकल्पों से ही मिलती है। ३५६० श्लोक-प्रमाण के इस ग्रन्थ की योगिनीपुर (दिल्ली) में समाप्ति की सूचना भी ग्रन्थ के अन्तिम समाप्ति काव्य से मिलती है।

इस ग्रन्थ का प्रामाणिक संस्करण मुनि जिनविजयजी द्वारा सम्पादित होकर सिंघी जैन ग्रन्थमाला से प्रकाशित हो चुका है।

जैन साहित्य

आचार्य जिनप्रभ जैनदर्शन, आगम, प्रकरण आदि साहित्य के भी परमगीतार्थ विद्वान् हैं। जैन-साहित्य पर इनका कोई मौलिक ग्रन्थ तो प्राप्त नहीं है किन्तु गुणानुरागकुलक, कालचक्रकुलक, उपदेशकुलक, परम-तत्त्वावबोधद्वात्रिंशिका, परमात्मद्वात्रिंशिका आदि दार्शनिक, सैद्धान्तिक एवं औपदेशिक लघुकायिक प्रकरण ग्रन्थ अवश्य प्राप्त हैं। ये सभी प्रकरण अभी तक अप्रकाशित हैं।

जैनागम, प्रकरण और स्तोत्र आदि अनेक ग्रन्थों पर आपकी सुप्रसिद्ध टीकाएँ उपलब्ध हैं। कुछ टीकाओं के नाम इस प्रकार हैं :

कल्पसूत्र 'सन्देह 'विषौषधि' टीका, साधुप्रतिक्रमणसूत्र-'अर्थनिर्णय-कौमुदी' टीका, षडावश्यक-टीका, प्रव्रज्याभिधान-टीका, अनुयोगचतुष्टय-व्याख्या, अजितशान्तिस्तोत्र-टीका, नमिऊणस्तोत्र-टीका, उपसर्गहरस्तोत्र-टीका, पादलिप्तीय वीरस्तोत्र-टीका और विषमपदपर्याय-टीका।

कल्पसूत्र टीका.

कल्पसूत्र जैनागमों में प्रसिद्ध सूत्र है। जिनप्रभ से पूर्व इस ग्रन्थ पर टिप्पनक आदि अवश्य प्राप्त थे किन्तु इस पर रहस्योद्घाटिनी कोई टीका

उस समय तक प्राप्त नहीं थी। आचार्य ने वि० सं० १३६४, अयोध्या में रहते हुए कल्पसूत्र पर 'सन्देहविषौषधि' नामक टीका की रचना कर इस अभाव को पूरा किया। टीका सुबोध एवं प्रामाणिक है और टीका का नाम भी अन्वर्थक प्रतीत होता है। परवर्ती प्रायः समस्त टीकाकारों ने अपनी कल्पसूत्र की टीकाओं में—किरणावली, कल्पलता, सुबोधिका, कल्पद्रुमकलिका, कल्पदीपिका आदि में किसी न किसी अंश में इस संदेहविषौषधि का अनुसरण किया ही है।

यह टीका हीरालाल हंसराज द्वारा अवश्य प्रकाशित हुई है किन्तु इसका प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित होने की अत्यावश्यकता है।

साधुप्रतिक्रमणसूत्र की अर्थनिर्णयकौमुदी-टीका का निर्माण वि० सं० १२६४ अयोध्या में, उपसर्गहरस्तोत्र पर 'अर्थकल्पलता' टीका का १३६४ साकेत (अयोध्या) में, अजितशान्तिस्तोत्र पर 'बोधदीपिका' टीका का एवं भयहर (नमिउण) स्तोत्र पर 'अभिप्रायचन्द्रिका' का सं० १३६५ दाशरथिपुर (अयोध्या) में हुआ है ये सब ही टीकायें सुबोध, परिमार्जित एवं प्रामाणिक शैली में लिखी हुई हैं।

षट्पदविषमकाव्य विवृति में संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के लगभग २१ पद्य हैं। पद्यों में अनेकार्थवाची श्लिष्ट शब्दों की अनेकधा आवृत्ति हुई है। इस क्रम से पद्य के अनेक अर्थ हो जाते हैं। एक श्लोक और उसकी जिनप्रभ द्वारा की गई टीका देखिये :

हंसनादमतं देवं देवानां विभयं भयम्।
यं भयं भविनां वादे वन्दे तं मदनासहम्॥

हंसनद०—तं देवाना देवं हरं वीतरागं वा वन्दे इति सम्बन्धः। यं किं विशिष्टम्? हंसस्येव नादः-नादस्तेन सुस्वरत्वान्मतं-लोकानां सम्मतं वीतरागं। महेश्वरपक्षे तु हंसेन नादः प्रसिद्धिर्यस्य हंसवाहनत्वाद् ब्रह्मा उच्यते, तस्य मतं पूज्यम्, ब्रह्मणोऽपि पूज्यत्वाद्। ईश्वरस्य ग्नेपाणि सर्वा-

ण्यपि विशेषणानि पक्षद्वयेऽपि तुल्यानि। विभयं विगतं नयम्। पुनः किं-विशिष्टम्? भयम्-नेभ्यम्, धातूनामनेकार्थत्वात्। कयां भविनां, क्व? वादे-विवादे, किमत्वतो वादो नेभ्यते यतो नयं....................यः मन्दस्तत्ला-ह्लादकत्वात्। पुनः ....नयोरपि मामविनाशकत्वात्। इत्यनु-लोमप्रतिलोमश्लोकार्थः।

स्पष्ट है कि उक्त श्लोक में शिव और वीतराग पक्ष के दो अर्थ निक-लते हैं। सभी विशेषणों के दोनों पक्षों में अलग-अलग अर्थ हैं।

एक अन्य फारसी भाषा का पद्य देखिये :

दोस्तीख्वान्दतुरा न वाशद (कु) मा हामा चुनी द्रोग् हिमि।
चीजे आमद वेमिदो, दिलुसिरा बुदी चुं नो कोवरु॥
तं याला रहमाण वाशद विरा दोस्ती निगस्तो दरा।
अल्लाल्लाह् तुरा सलाम् वुचिश्क् रोजी मरा मे दहि॥

दोस्तीख्वाद०—दोस्ती–अनुरागः ख्वान्द–स्वामिन् तुरा नय न वाशद-नास्ति कुमा–कस्मिन्नपि हामाचुनी-सर्वं द्रोग्-असत्यं हिमि-तिष्ठति। आद-पदार्थः यतः चीजे यः कोऽपि आमद-आजगामः वेमिदो-युष्मद् पार्श्वे दिलु-सिराबुदी-सञ्जातमध्यमानसः चुनी-ईदृशः कोवरः-कर्मकरः मामपि। (द्वितीयपदम्) तथा तं याला रहमागः तस्योपरि इरमाण वीतराग धाम इति विघते। विरा-पुनः। दोस्ती निगस्ती-रागानुबन्धः दरा-यतः कारणात् अल्लाल्लाह्—पूजावाचको शब्दो तुरा-तुभ्यं सलाम्-नमस्कारः। वुचिश्क्-महतो-रोजी-विभूतिः मरा-मे दहीति-देहि।

अपभ्रंश का एक पद्य भी देखिये :

अत्तीगोलीमेआरा वेहा मन उत्तावली निम्न मंदमिनेहा।
कत्र पविसही अन्, जानइ दोरा विरह मानुस जो मरई समु किम निठोरा।

इस पद के टीकाकार जिनप्रभ ने चार भिन्न-भिन्न अर्थ किये हैं। स्पष्ट है कि सारे पद दृष्टिकूट हैं। देखने पर ऊपर से कुछ दूसरा अर्थ ज्ञात होता है और विवक्षा कुछ और ही है। यह संस्कृत के सन्धानकाव्य

की परम्परा का ग्रन्थ है जिसे अपनी विवृत्ति से जिनप्रभ ने सरल, सुबोध बना दिया है।

उक्त कृतियों को देखने से स्पष्ट है कि आचार्य जिनप्रभ की प्रतिभा बहुमुखी थी। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, फारसी आदि अनेक भाषाओं पर उनको समान अधिकार प्राप्त था। उनकी कवित्वशक्ति व विषय-विवेचनो-प्रतिभा अपने समय में बेजोड़ थी। धर्म के गूढ़ रहस्यों को वे समझते थे। धर्म पर उनकी प्रगाढ़ श्रद्धा थी। इसके उपरान्त भी उनकी विचारधारा उदार थी। उनके कई स्तोत्र और गायत्रीविवरण आदि ग्रन्थ इस बात की पुष्टि करते हैं। वे न केवल एक जैन उपदेष्टा के रूप में ही स्मरणीय हैं, वरन् धर्म व दर्शन के तत्वों के व्याख्याता, इतिहास की घटनाओं को ग्रथित करनेवाले, महाकाव्यकार, व्याकरण के तत्त्वज्ञ, टीकाकार आदि अनेक रूपों से युक्त एक असाधारण प्रतिभावान् विद्वान् थे और सबसे अधिक प्रसिद्धि उनकी स्तोत्रकार के रूप में है।

आचार्य जिनप्रभ का स्तोत्र-साहित्य

जिनप्रभ ने विशाल स्तोत्र साहित्य की रचना भी की है। ऐसा प्रसिद्ध है कि वे नित्यप्रति एकाध नवीन स्तोत्र की रचना करके आहार ग्रहण करते थे। उन्होंने यमक-श्लेष-चित्र-छन्दोविशेष नयी-नयी प्रकार के ७०० स्तोत्रों की रचना की थी। इसका उल्लेख उनके सिद्धान्तागमस्तव की अवचूरि में मिलता है :

"पुरा जिनप्रभसूरिभिः प्रतिदिनं नवस्तवनिर्माणपुरस्सरं निरवद्याहार-ग्रहणाभिग्रहवद्भिः यमकश्लेषचित्रछन्दोविशेषादिनवनवभंगीसुभगाः सप्त-शतीमिताः स्तवाः।"

इन स्तोत्रों की रचना तीर्थंकर, गणधर, तीर्थ, तीर्थरक्षक, शारदा-देवी, अपने गुरु आदि को उद्देश्य करके हुई है। ये अपभ्रंश, प्राकृत, फारसी, संस्कृत आदि अनेक भाषाओं में रचित मिलते हैं। इनमें विविध छन्द, चित्रकाव्य आदि का प्रयोग हुआ है। कोई-कोई स्तोत्र-मंत्र-

गर्भित है। ७०० स्तोत्रों में से अब तक लगभग अस्सी स्तोत्र मिलते हैं, इनमें से कुछ स्तोत्र काव्यमाला (सप्तम गुच्छक), प्रकरणरत्नाकर (भा० २-४), जैनस्तोत्रसंग्रह, जैनस्तोत्रसमुच्चय, जैनस्तोत्रसन्दोह आदि में प्रकाशित हुए हैं। पाटण, खंभात, जैसलमेर, बीकानेर आदि के ज्ञानभंडारों में खोज करने पर और भी मिल सकते हैं।

इन सभी स्तोत्रों में षड्भाषा-गर्भित-स्तोत्र अधिक आश्चर्यप्रद है जिनमें फारसी-भाषा का भी साधिकार प्रयोग हुआ है। विदेशी भाषा पर ऐसा अधिकार तत्कालीन अन्य भारतीय लेखकों में अलभ्य है। नीचे प्राप्य स्तोत्रों का विषयानुसार वर्गीकरण करके सामान्य परिचय दिया जा रहा है :

चतुर्विंशति जिनस्तव

२४ तीर्थंकरों की समवेत स्तुति में प्रयुक्त स्तोत्रों की संख्या सबसे अधिक है। अब तक जिनप्रभ द्वारा रचित १३ चतुर्विंशति स्तवों का उल्लेख मिला है जिनमें ९ प्राप्य हैं। इनका परिचय इस प्रकार है :

चतुर्विंशतिजिनस्तवों में २ स्तोत्र 'आ' से प्रारम्भ होनेवाले हैं। एक, जिसका उल्लेख मात्र मिलता है, का प्रारंभ 'आनन्द-सुन्दर-पुरन्दर-नम्र' अक्षर-समूह से होता है। दूसरा, जिसका प्रथम श्लोक यह है :

आनम्रनाकिपतिरत्नकिरीटरोचिः नीराजितक्रमसरोरुहनिर्मलश्रीः।
उद्दामहेमवरमाणुमयतनो यः श्री नाभिनन्दन-जिनाधिपतिः पुनातु॥

इसमें वसन्ततिलका छन्द प्रयुक्त हुआ है। इसमें कुल श्लोकों की संख्या २५ है। अन्तिम श्लोक में जिनप्रभ ने अपना नाम भी दिया है।

'ऋ' से प्रारम्भ होनेवाले तीन स्तोत्रों का उल्लेख मिलता है। एक स्तोत्र का प्रथम श्लोक इस प्रकार है :

ऋषभनतसुरासुरशेखर-मन्दारदामपरागरञ्जितम्।
क्रमसरोरुहद्वं तव मौक्तिका जिनपते भवहितानुगुणे ॥ १ ॥

इस स्तोत्र में २९ द्रुतविलम्बित छन्द प्रयुक्त हुए हैं। इसमें प्रत्येक श्लोक के अन्तिम चरण मे ३-३ अक्षरों की आवृत्ति करके यमक का प्रयोग किया गया है। यमक आचार्य जिनप्रभ का प्रिय अलंकार है। प्रस्तुत स्तोत्र से कुछ उदाहरण देखिये—

मुकृतिनः कृतवर्मधराधवान्वयनभस्तलभासनभास्वरं।
श्रयत कांचनवारिरुहच्छदच्छविमलं विमलं जगदीश्वरम् ॥१३॥
उपनमन्ति तमीश समुत्सुकाः प्रणयते वरितुं सकलाश्रियः।
जगति तुभ्यमनन्त नमस्क्रियामवलये कलये द्विनयेन यः ॥१४॥
अवतु धर्मजिनेन्द्र कुभावना—रजनिनाशनसपृहयोदयः।
शममयः समयस्तव सुव्रता तनय मां नयमांमल विस्तरः ॥१५॥

यमक प्रयोग करते हुए ही जिनप्रभ ने २४ वें श्लोक में अपना नाम भी रख दिया है :

चलनकोटिविघट्टनचंचली-कृत सुराचल वीर जगद्गुरोः।
त्रिभुवनाशवनाशविधौ जिनप्रभवते भवते भगवन्नमः ॥२४॥

दूसरे स्तोत्र में २९ द्रुतविलम्बित छन्द प्रयुक्त हुए हैं। इसमे भी उपर्युक्त रीति से यमकालंकार का प्रयोग हुआ है। किन्तु इसमें केवल चतुर्थचरण का बन्धन नही है। चारों चरण यमकमय हैं। इसका प्रथम चरण उक्त विशिष्टता से युक्त देखिये:—

ऋषभनाथ ! भवनाथनिभानन !
प्रमृतमोहतमोहननक्षम !
दिश सुवर्ण ! सुवर्ण सुवर्णरुक् !
परमकाममकाम ! विदीर्णरुक् !

तीसरे स्तोत्र में ३० द्रुतविलम्बित छन्द प्रयुक्त हुए हैं। प्रत्येक श्लोक के चतुर्थ चरण में ३-३ अक्षरों के त्रिधा आवृत्ति होना इस स्तोत्र की प्रमुख विशेषता है। इसका प्रथम श्लोक इस प्रकार है :

ऋषभदेवमनन्तमहोदयं
नमत तं तपनीयतनूरुचम् ।
अजनि यस्य सुतो धुरि चक्रिणां
शुभरतो भरतो भरतोदरे ।।

इसी विशेषता से युक्त 'क' वर्ण से प्रारम्भ होनेवाला स्तोत्र २१ श्लोक वाला है। उसमें भी द्रुतविलम्बित छन्द प्रयुक्त हुआ है। इसके प्रथम दो श्लोक इस प्रकार हैं—

कनककान्तिधनुः शतपंचकोच्छ्रितवृषांकितदेहमुपास्महे ।
रतिमर्पिनं प्रथमं जिनं नृवृषभं वृषभं वृषलाञ्छनः ।।१।।
द्विरदलाञ्छितवाञ्छितदायक क्रमलुठत्त्रिदशासुरनायक ।
स्तुतिपरः पुरुषो भवति क्षितावजित राजितरा जितराग ते ।।२।।

अन्तिम श्लोक में आचार्य ने अपना नाम भी दिया है :

करकृताम्रफला पुरतो जिनप्रभवतीर्थमिमामिमधिष्ठिता ।
हरतु हेमरुचिः सुदृशा सुरम्मुपरमं परमं परमम्बिका ।।

'ज' वर्ण से प्रारम्भ होनेवाला एक चतुर्विंशति स्तव है। यह बहुत छोटा स्तोत्र है। इसमें ८ छन्द प्रयुक्त हुए हैं—७ उपजाति व एक शार्दूलविक्रीडितम्। प्रथम श्लोक इस प्रकार है—

जिनर्षभ श्रीजितनम्यसार्व-समस्तदोषाजितवीर्यनाथ ।
श्रीसंभवानन्दनसंपदःस्वामिन् प्रजानामभिनन्दन त्वम् ।।

'त' से प्रारम्भ होनेवाला एक स्तोत्र है। इसमें २७ इन्द्रवज्रा और १ शार्दूल विक्रीडित छन्द प्रयुक्त हुए हैं। अन्तिम छन्द उपर्युक्त स्तोत्र का अन्तिम छन्द है जिसमें आचार्य का नाम भी है। इस स्तोत्र के प्रत्येक चरण में सप्ताङ्क अथवा अष्टाङ्क यमकालंकार का प्रयोग हुआ है। यमक के इस प्रकार के बहुल प्रयोग के उपरान्त भी स्तोत्र में प्रसादगुण का अभाव नहीं हो पाया है। यह रचयिता की क्षमता का द्योतक है। प्रथम दो श्लोक अवलोकनीय है—

तत्त्वानि तत्त्वानिभृतेषु सिद्धं भावारिभावारि विशोपधर्मम् ।
दुर्बोधदुर्बोधमहं हरन्तमारम्भमारम्भजताऽदिदेवम् ॥१॥
नेन्द्रा जिनेन्द्राजिततेस्तवेलं काहंतुकाहंतुरयं नयस्य ।
मामत्रमामत्रतयापि कुंद दंतावदंतावलचिह्नदीनम् ॥२॥

'न' अक्षर से प्रारम्भ होनेवाले २ 'चतुर्विंशति जिनस्तव' हैं। एक छोटा है जिसमें केवल ९ द्रुतविलम्बित छन्द हैं। छोटा होते हुए भी प्रवाह और प्रसन्न-यमक प्रयोग की दृष्टि से यह उत्कृष्ट स्तोत्रों में गिना जा सकता है। इसके प्रथम दो छन्द देखिये—

नत सुरेन्द्र जिनेन्द्र युगादिमाजित जिता किल कर्ममहारिपो ।
अभव संभव संभवनाथ मे प्रणत कल्पतरो कुरु मंगलम् ॥१॥
त्वमभिनन्दन नन्दननाथ मे ध्रुवगते सुमते सुमते सदा ।
सुकृतसद्म सुपद्म जिनेश मे प्रवरतीर्थपते कुरु मंगलम् ॥२॥

दूसरे स्तोत्र में २५ छन्द हैं। इसका प्रारम्भ 'नाभेयं शोचि निर्ममो' शब्दों से होता है।

'प' अक्षर से प्रारम्भ होने वाले स्तोत्र दो हैं। एक में २९ श्लोक हैं। छन्द उपजाति प्रयुक्त हुआ है। अनायास ही आजानेवाले अनुप्रासों की छटा इसमें भी दर्शनीय है। इसका प्रथम श्लोक है—

पात्वादिदेवो दशकल्पवृक्षा यस्मादधीत्यैहितदानविद्याम् ।
अपूपुजन् यच्चरणौ नखालिव्याजेन नूनं नवपल्लवैःस्वैः ॥

अन्तिम श्लोक में जिनप्रभ ने अपना नाम भी दिया है। दूसरे स्तोत्र में २७ अनुष्टुप् छन्द हैं। प्रत्येक श्लोक के द्वितीय चरण के अक्षरों को चतुर्थ चरण में दुहराया गया है। खंड-यमक व श्लेष का प्रयोग इस स्तोत्र की सबसे बड़ी विशेषता है। इसका यह प्रथम श्लोक है—

प्रणम्यादिजिनं प्राणी मरुदेवांग जायते ।
हरणे पापरेणूनां मरुदेवाग जायते ॥ १ ॥

एक स्तोत्र 'क' वर्ण से प्रारम्भ होता है। इसमें १५ स्रग्धरा, १ शार्दूलविक्रीडित और १ वसन्ततिलका—कुल १७ श्लोक आये हैं। इसका प्रथम श्लोक इस रूप में है :

का मे वामेय शक्तिर्भवतु तव गुणस्तोमलेशप्रशस्तौ
न स्याद्यस्यामधीशः सुरपतिसचिवस्यापि वाणीविलासः।
माने वा यांधिचारा कलयति क इव प्रौढिमारूढधारा
भक्तिव्यक्तिप्रयुक्तस्तदपि किमपि ते संस्तवं प्रस्तवीमि ॥

भाषा-प्रवाह व भावगुरुता की दृष्टि से यह स्तोत्र जिनप्रभ के सर्वोत्कृष्ट छन्दों में से एक है। एक उदाहरण पुनश्च देखिये—

संसाराम्भोधिवेला निबिडजडमतिध्वान्तविध्वंसहंसः
श्यामाश्यामाङ्गधामा शठकमठतपोधर्मनिर्माथदर्पः।
स्फारस्फूर्जत्फणीन्द्र प्रगुणफणमणिज्योतिरुद्द्योतिताशा-
चक्रश्चक्रिध्वजं त्वं जय जिन विजितद्रव्यभावारिवारः ॥ २ ॥

दो स्तोत्र 'ज'-वर्ण से प्रारंभ होनेवाले हैं। दोनों संस्कृत में हैं। एक २१ श्लोकात्मक फलवर्धिपार्श्वस्तव है जिसमें २० उपजाति १ शार्दूलविक्रीडित छन्द है। इसका प्रथम श्लोक यह है—

जयामल श्रीफलवर्धिपार्श्व पार्श्वस्थनागेन्द्र पृथुप्रभाव।
भावल्लरी खण्डितदिग्वितान सानन्दधामः स्तुवेऽहं ते त्वाम् ॥

दूसरा जीरापल्लीपार्श्वस्तव है जिसमें १४ स्रग्धरा व १ शार्दूलविक्रीडित—कुल १५ छन्द प्रयुक्त हुए हैं। प्रत्येक छन्द में यमक अलंकार का प्रयोग भी यथास्थान हुआ है। अधिकतर प्रथम व तृतीय चरणों के अन्तिम अक्षरों की आवृत्ति द्वितीय व चतुर्थ चरण के प्रारम्भ में होती है। प्रथम दो श्लोक उदाहरणार्थ देखिये—

जीरिकापुरपति सदैव तं देवमं परमहं स्तुवे जिनम्।
यत्प्रणाम जगतो धरांबरे खेचरं जनयति मंक्षुमञ्जनः ॥

नाथतत्त्व मुखेन्दुदर्शनं दर्शनं च नयनामृतं स्तुवे ।
येन मे दुरिततापहारिणा हारिणा लसति पुण्यवारिधिः ॥

'द' वर्ण से प्रारंभ होनेवाला एक 'पार्श्वस्तव' है जिसमें १० प्राकृत गाथाएँ हैं। स्तोत्र नवग्रह-स्तुतिगर्भित है। इस प्रकार का प्रयोग भी नितान्त नवीन है। प्रथम दो गाथाओं को देखिए जिनमें प्रथम में सूर्य और दूसरे में चन्द्रमा की स्तुति के साथ पार्श्वनाथ की स्तुति की गई है—

दोसावहारदक्खो नालीयायरवियासगोपसरो ।
रयणत्तयस्सजणओ पासजिणो जयउ जयचक्खू ॥
कयकुवलयपडिवोहो हरिणंकियविग्गहो कलानिलओ ।
विहिआरविन्दमहणो दिअराओ जयइ पासजिणो ॥

'त' वर्ण से प्रारम्भ होनेवाला भी एक ही स्तोत्र है। इसमें ११ इन्द्रवज्रा छन्द प्रयुक्त हुए हैं। यह अष्टप्रातिहार्यमय है। प्रत्येक श्लोक में द्वितीयचरण के शब्दों की चतुर्थचरण में आवृत्ति हुई है। सभंग श्लेष की छटा सर्वथा दर्शनीय है। प्रथम श्लोक इस प्रकार है—

त्वां विनुत्य महिमश्रियाढ्यं पन्नगांकमठदर्पकोपिणम् ।
त्वां पुनामि किमपीनरक्षिता-पन्नगां कमठदर्पकोपिणाम् ॥

दो उदाहरण और भी देखिये·—

तादृशः श्रवणस्तवोत्तमा फारकायवरदेशनाध्वनेः ।
प्रस्थितः क इव पाप्मनां निरा फारकामवरदेशनाध्वनेः ॥ ४ ॥
नाकिनामकयुगेन सादरं चामरैर्विपदभागवीज्यसे ।
त्वं न कैर्भव मुसाय मुह्ये चामरैर्विपदभागवीज्यसे ॥ ५ ॥

'प' वर्ण से प्रारंभ होनेवाले तीन 'पार्श्वस्तव' हैं जिनमें एक प्राकृत में है जिसमें २२ पद्य हैं। इसकी विशेषता यह है कि इसमें सम्पूर्ण उव-सग्गहर (उपसर्गहर) स्तोत्र की समग्र रूप से पादपूर्ति हुई है। इसका प्रथम पद्य यह है—

पणमिय सुरनरइंदा पयकमलं पुरिसपुंडरीय पासं ।
संपवण भत्तिपणओ, भणामि भवभमणभीमणओ ॥

अन्तिम पंक्ति में 'भ' व 'ण' अक्षर की आवृत्ति से उत्पन्न चमत्कार सर्वथा दर्शनीय है। उपसर्गहर-स्तोत्र की प्रथम गाथा है—

उवसग्गहरं पासं पासं वंदामि कम्मघणमुक्कं ।
विसहरविसनिन्नासं मंगलकल्लाणआवासं ॥

आचार्य जिनप्रभ ने अपने स्तोत्र की पादपूर्ति दूसरे, तीसरे, चौथे और पाँचवें पद्य में की है—

उवसग्गहरं पासं पणमह नट्ठकम्मदप्पासं ।
रोसरिउभेयपासं विणहिय लच्छीतणयवासं ॥ २ ॥
जं जाणइ तं लुणइ पासं वंदामि कम्मघणमुक्कं ।
जो झाइऊण सुक्कं झाणं पत्तो सिवमणुत्तरं ॥ ३ ॥
विसहर विसनिन्नासं रोसगइंदाइभयकयविणासं ।
मेरुगिरिसन्निकासं पूरिअ आसं नमह पासं ॥ ४ ॥
मरगयमणितणुभासं मंगलकल्लाण आवासं ।
दालियभयसंतापं थुणिमो पासं गुणपयासं ॥ ५ ॥

अन्तिम पद्य में उवसग्गहर-स्तोत्रकार भद्रबाहुस्वामी और साथ ही अपना नाम भी जिनप्रभ ने जोड़ दिया है—

सिरिभद्दबाहुरइयस्स जिणपहसूरिहिं मं सपहावं ।
संथवणस्स मणगस्स विहिय विवुहाणय पयस्स ॥२०॥

दूसरे 'प' वर्ण से प्रारंभ होनेवाले एक अन्य स्तोत्र में ८ उपजाति छन्द प्रयुक्त हुए हैं। इसकी प्रमुख विशेषता यह है प्रथम व तृतीय चरण के अन्त के अक्षरसमूह की दूसरे व चौथे चरण के प्रारंभ में आवृत्ति की गई है। गर्भस्तोत्र की छटा दर्शनीय है। इसमें प्रथम व द्वितीय पद्य उदाहरण के लिए पर्याप्त होंगे—

पार्श्वं प्रभुं पारदकोत्तमानंदकोविदानां · भववाहिपान्थो ।
आरात्पा दत्तनिरंतरानं निरंतरायं पदमाप्नुवीहि ॥
पीतोज्ज्वलनेन · महामयत महाभयस्य तवाहिनुम्नम् ।
पुष्पैः स पुष्पाढ्य कमलैरात्मानि सदोमतर्शीश निदेशे तदू ॥

तीसरे स्तोत्र का प्रारंभ 'पार्श्वनाथमनघं' अक्षरों से होता है। इसमें ९ छन्द होने का उल्लेख मिलता है।

'स' अक्षर से प्रारंभ होनेवाला एक प्राकृत स्तोत्र। इसमें १२ छन्द हैं। प्रथम ११ आर्या छन्द हैं। अन्तिम वसन्ततिलका नामक छन्द है। इसमें भी प्रथम व तृतीय चरण के कुछ अक्षरों की आवृत्ति द्वितीय व चतुर्थ चरण के प्रारंभ में होती है। एक शब्द बहुधा त्रिधा आवृत्त हुआ है। प्रथम दो छन्द उदाहरण के लिए देखिये—

सयलाहिवाहिजलधर समूहसंहरणचंडपवमाणं।
फलवद्धिपासनाहं संथुणिमो फणय इट्ठफलं॥
विहुयासं विहुयासं विहुयासं पत्तमभियुणन्ति सुमं।
अमयरया अमयरया अमयरया णुगइसमवयणं॥

स्पष्ट है कि यह भी फलवद्धि पार्श्वनाथ का स्तवन है। एक अन्य फलवद्धिमण्डनपार्श्वस्तव 'श्री' अक्षर से प्रारम्भ होता है जिसमें ९ छन्द हैं। प्रथम व नवम छन्द संस्कृत में हैं शेष ७ प्राकृत में। प्रथम छन्द यह है—

श्रीफलवर्द्धिपार्श्वप्रभुमोंकारं समप्रसौख्यानाम्।
त्रैलोक्याधारकीर्ति लक्ष्मीवीजं स्तुवेऽर्हताम्॥

इस स्तोत्र के अन्तिम श्लोक में रचनाकाल भी दिया गया है—

विक्रमवर्षे करवसुमुनिशिकु (१३८२) मिते माधवासितदशम्याम्।
व्यधित जिनप्रभसूरिस्तवमिति फलवद्धिपार्श्वप्रभो॥

'श्री' अक्षर से प्रारंभ होनेवाले ४ पार्श्वजिनस्तव और भी हैं। जिनमें एक स्तोत्र बहुत बड़ा है। इसमें ४३ अनुष्टुप् व १ द्रुतविलम्बित कुल ४४ छन्द प्रयुक्त हुए हैं। इस स्तोत्र की विशेषता यह है कि सभी विषम छन्दों (१,३,५ आदि) मे द्वितीय चरण के सभी अक्षरों की आवृत्ति चतुर्थ चरण में हुई है। इसी तरह सम छन्दों (२,४,६ आदि) में प्रथम चरण के अक्षरों की आवृत्ति तृतीय चरण में हुई है। इस स्तोत्र का प्रारंभिक छन्द है—

श्री पार्श्वः श्रेयसे भूयादलितालसमानसः।
अनन्ता संसृतिर्येन दलिताऽलसमानसः ॥ १ ॥

दो सम छन्द देखिये—

जिनास्यसारसंसार किं नेदानीं वराक रे।
जिनास्यसारसं सारमद्य मद्वीक्षितं मया ॥ ८ ॥
कल्याणगिरिधीरे मे त्वयि चेत् परमेश्वर।
कल्याणगिरिधीरे मे करस्था सर्वसंपदः ॥ १० ॥

इसी तरह दो विषम छन्द—

येन त्वदागमः स्वामिन् स्याद्वादेनोपराजितः।
निर्णीतः स कुतीर्थ्यानां स्याद् वादे नो पराजितः ॥ ३१ ॥
त्वद्गुणस्तुतिरंभोदकान्ते यमकहारिणी।
भव्यानाऽस्तु विज्ञानां कान्तेयमऽकहारिणी ॥ ४१ ॥

केवल सभंगश्लेष के चमत्कार की दृष्टि से ही यह स्तोत्र महत्वपूर्ण नहीं है वरन् भावगुरुता और साथ ही भक्ति-भावना की दृष्टि से भी इस स्तोत्र को आचार्य जिनप्रभ के स्तोत्रों में विशेष स्थान दिया गया है।

अन्य ३ पार्श्वजिनस्तव छोटे हैं। एक में ६ उपजाति व २ वसन्ततिलका छन्द प्रयुक्त हुए हैं जिसके प्रत्येक श्लोक के प्रथम व द्वितीय तथा तृतीय व चतुर्थ चरणों में पादान्त यमक है। अपनी समस्त विशेषताओं से युक्त प्रथम छन्द देखिये—

श्री पार्श्वपादाननतनागराज प्रोतर्पदेनः प्रकृतनागराम।
गतो हृताऽस्तु परिणामरागं त्वां संस्तुमः स्वर्गं गुणाम्बरागम् ॥

इसी तरह अन्तिम वसन्ततिलका भी दृष्टव्य है—

इत्थं फणीन्द्रप्रणतस्थितपार्श्वनाथ
स्तौ या स्तवं पठति प्रकृत पार्श्वनाथ।
तस्मै स्पृहालुविजनयन्न नम्रा
लक्ष्मीर्विभाति सुमनः सम्बन्धनम्रा ॥

अन्य पार्श्वजिनस्तव में भी ९ छन्द व्यवहृत हुए हैं—८ अनुष्टुप् व अन्तिम १७ अक्षरों का हरिणीछन्द। सभी छन्दों के द्वितीय चरण के अक्षरों को चतुर्थ में दुहरा कर पादान्त यमक दिखाया है। इसके प्रथम दो छन्द हैं—

श्रीपार्श्वं भावतः स्तौमि महोदधिमगर्हितम्।
उद्धरन्तं जगद्दुःखमहोदधिमगर्हितम्॥
दृग्गोचरं भवान् येषां प्रियंगुरुचिरायते।
प्राप्नुवन्ति सुखं नाथ ! प्रियं गुरु चिराय ते॥

तीसरे पार्श्वजिन-स्तोत्र मे ८ अनुष्टुप् छन्द हैं। प्रत्येक छन्द के प्रथमाक्षरों से आचार्य का नाम (श्रीजिनप्रभसूरयः) बनता है। इस प्रकार अपने नामाक्षरों का प्रयोग करने की आचार्य की सूझ भी अद्भुत है। इसके प्रथम तीन श्लोक देखिये जिनमें 'श्री जिन' अक्षरों का प्रयोग है—

श्री पार्श्वं परमात्मानं त्रैलोक्याभमसाक्षिणम्।
विज्ञानादर्श सङ्क्रान्तलोकालोकमुपास्महे॥
जिनः त्वन्नाममन्त्रं ये ध्यायन्त्येकाग्रचेतसः।
दुरापामपि श्रेयः श्रियं संवनयन्ति ते॥
नमस्ते जगतां पित्रे विधात्रे सर्वसम्पदाम्।
सवित्रे भव्यपद्मानामौमित्रे भुवनत्रयम्॥

वीर जिनस्तव

संख्या की दृष्टि से महावीर स्वामी की स्तुति में प्रयुक्त होने वाले वीर जिनस्तवों का तीसरा स्थान है। 'वीर जिनस्तव' १० हैं। जिनमें 'अ' से प्रारम्भ होनेवाला एक, 'क' से प्रारंभ होनेवाला एक, 'च' से प्रारम्भ होनेवाला एक, 'न' से प्रारंभ होनेवाला एक, 'प' से प्रारम्भ होनेवाला एक, 'श' से प्रारंभ होनेवाला एक, 'व' से प्रारम्भ होनेवाला एक व 'श्री' से प्रारंभ होनेवाले ३ स्तोत्र हैं। इनमें से कुछ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। एक चित्रकाव्यमय है जिनमें कुल २७—२४ अनुष्टुप्, १ वसन्ततिलका व २ शार्दूल विक्रीड़ित छन्द हैं। इसका प्रथम श्लोक है—

एक अन्य स्तोत्र पंचवर्गपरिहारमय है जिसमें २६ श्लोक हैं जिसका प्रारम्भ इस श्लोक से होता है—

स्वः श्रेयससरसीरुहसूरं श्रीवीरं ऋषिवरं सेव ।
सविशेषहर्षरसवशसुरासुरव्यूहसेव्यांऽह्रिहया ॥

एक वीरस्तव में लक्षण प्रयोग मिलते हैं । उसमें १७ श्लोक आये हैं जिसका प्रारम्भ इस श्लोक से होता है—

निस्तीर्णविस्तीर्णभवार्णवं त्वं रुक्कर्णमाकर्णितवर्णवादम् ।
सुपर्णमंहोहि दमे सुपर्णं श्रीपर्णवर्णं विनुवामि वीरं ॥१॥

समासों के लक्षणों का प्रयोग इस श्लोक में दृष्टव्य है—

द्विगोरिव तत्प्रणतस्य संख्या
पूर्वा प्रवृत्तिर्न कुतीर्थिकानाम् ।
विभो बहुव्रीहि समासदत्व-
मन्यार्थ एवोयदधासिवृत्तिम् ॥४॥

एक महावीरस्तव पंचकल्याणकमय है । इसमें ३६ श्लोक व्यवहृत हुए हैं । प्रारम्भ इस श्लोक से होता है—

पराक्रमेणेव पराजितोऽयम्
सिंहः सिषेवे धृतलक्ष्मदम्भः ।
सुखानि वः सानिरयं रमाणा
द्वैमातुरस्तीर्थंकरः करोतु ॥

अन्य स्तोत्र

दो स्तोत्र ऋषभदेव से सम्बन्धित हैं । जिनमें से एक में कातन्त्र-व्याकरण के सूत्रों को गुम्फित किया गया है । इसमें २३ श्लोक हैं प्रथम कुछ श्लोक देखिये जिनमें ग्रथित सूत्रों को रेखांकित किया गया है :

सिद्धोवर्णसमाम्नायः स्तव जिह्वे चिरन्तनः ।
पार्श्वजाये नमत्स्वेभेऽनन्तऽसिद्धे यदास्पदम् ॥

शौरसेनी भाषा का प्रारम्भिक पद्य है—

कुमुदमकथनिदानं ता इह धर्माण विज्जदे भगवं।
चिन्दाविदावनय्येव भोदि पावाण नाथ इमा ॥२१॥

पचीसवां पद्य समसंस्कृत का प्रथम श्लोक है—

हेमसरोरुहभासं कलिमलकमलालिमंघहिमभासं।
भवभयधूलिमहावल नाभेय भवंतमभिवन्दे ॥

दस पद्य अपभ्रंश भाषा के हैं जिनमें प्रथम तथा क्रम से उन्तीसवां है—

तउ रेहइ अलि सामली चिहुरावलि भुवि पिट्ठि।
निज्जिय रिउबलझाणडुगसुहउहणं असिलट्ठि ॥२९॥

चालीसवें संस्कृत श्लोक में कवि का प्राक्तन नाम शुभतिलक बड़े ही कलात्मक ढंग से गुंफित है। देखिये—

नन्दासोर्विशु[1]द्धयोगरसमोन्मीलत्[4] प्रतोपोन्वितं,
शस्तं सौष्ठवभ[2]ग्नमोहरचनं स्त्वं क[5] जहस्तच्छविः।
रच्यामादकरति[3]म्म सिद्धरमणी संवलृप्तभावः परं,
रंता ज्ञानरमां शमास्तरुव मे तन्याः सुविद्यां चिरम् ॥

अवचूरिकार ने आचार्य का प्राकृत नाम शुभतिलक दिया है। भाषा की विविधता के साथ सहजगंभीर भाव की दृष्टि से यह स्तोत्र जिनप्रभसूरि के स्तोत्र-साहित्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

युगादिदेव ऋषभदेव से सम्बन्धित एक अन्य महत्वपूर्ण स्तोत्र शार्दूलविक्रीड़ित छन्द में विरचित है। इसमें ३३ श्लोक हैं। प्रथम श्लोक देखिये—

मेरौ दुग्धपयोधि वाः कलशमिषाज्जन्माभिषेके ध्रुवं
यत्कीर्तिप्रकराः प्रसस्तुरभितो लोकत्रयीं व्याप्नुम्।
नैव क्वापि कदापि युष्मदपरं स्वामी करिष्याम (?) इ-
त्यद्गुस्त्यमनतः प्रणीतशपथास्तं नाभिसूनुं स्तुमः ॥

इस स्तोत्र में भी भावों की अद्भुत स्रोतस्विनी प्रवहमान है। स्वयं रचयिता ने अन्तिम श्लोक में इस भावगर्भित स्तोत्र को 'सुधीजनश्रोत्र-सुधासुगन्धः' कहा है। देखिये—

> सुधीजनश्रोत्रसुधासुगन्धः शार्दूलविक्रीडितवृत्तबन्धः।
> सतामयं भावरिपुद्विपेषु शार्दूलविक्रीडितमातनोतु ॥२१॥

शेष तीन ऋषभदेव से सम्बन्धित स्तोत्र छोटे हैं। प्रत्येक में ११ पद्य हैं। इनमें एक पद्य 'अल्लाल्लाहि' शब्दों से प्रारंभ होता है और फारसी भाषा में है। प्रथम पद्य देखिये—

> अल्लाल्लाहि तुराहं कीम्बद सहियानु तु मराम्वांद।
> दुनीयक रामेदानइ बुस्मारइ बुय चिरा न हर ॥ १ ॥

दूसरा प्राकृत भाषा में है। जिसका प्रथम पद्य देखिये—

> नयणमभणपहाणा विरहिं आराहिं आवि सपमाणा।
> भवशिवदाणसमाणा जिणपरआणा चिरं जयतु ॥ १ ॥

अन्तिम पद्य में रचयिता ने अपना नाम भी दिया है—

> इइ विण्णत्तो जिणनाहु ! जिणपहसूरीहिं जगगुरु पढमो।
> विण्णत्तीइ पसायं निव्विग्धं कुणउ अम्हाणं ॥ १ ॥

उक्त स्तव का नाम रचयिता ने ऋषभदेवशासन दिया है। अन्तिम युगादिजिनस्तव में भी ११ श्लोक हैं। ये सब अनुष्टुप् छन्द में हैं। इस स्तोत्र का यह प्रथम छन्द है—

> अस्तु श्रीनाभिभूर्देवो धिनाम्नाभ्यागमनंद:।
> पवित्रः पोषयँन्नाम्नो सुधर्मादिगतिः श्रिये ॥

अजितजिन से सम्बन्धित केवल एक स्तोत्र मिलता है। संभव है जिनप्रभ के ऐसे अन्य स्तोत्रों के उपलब्ध होने पर और भी मिल सकें। इस स्तोत्र में २१ श्लोक हैं। प्रथम बीस वसन्ततिलका छन्द में हैं और अन्तिम शार्दूलविक्रीडित है। यह स्तोत्र भी बड़ा चमत्कार पूर्ण है। इसमें प्रत्येक

दो-दो चरणों में तुक मिलाई गई है। अन्त्यानुप्रास का ऐसा सफल प्रयोग संस्कृत साहित्य में कम ही मिलता है। इस स्तोत्र का प्रथम श्लोक देखिये—

> विश्वेश्वरं मथितमन्मथभूपमानं
> देवं क्षमातिशयसंश्रितभूपमानम् ।
> तीर्थाधिराजमजितं जितशत्रुजातं
> प्रीत्या स्तवीमि यमकैर्जितशत्रुजातम् ॥

अन्तिम चार अक्षरों की आवृत्ति दूसरे चरण में होने के कारण यह यमक तो है ही। कहीं संपूर्ण प्रथम चरण तृतीय चरण में आवृत्त हुआ है जिसमें सभंगश्लेष की छटा अपूर्व है। तीसरा श्लोक देखिये—

> आनन्दकंदलितमानसदैवतेन
> स्तोतव्ययः सुरपुरन्ध्रिकटाक्षपातः ।
> आनन्दकं दलितमानसदैवतेन
> त्वामेकवीरमपहाय न मन्मथोऽन्यम् ॥ ३ ॥

अष्टम श्लोक में चारों चरणों में प्रथमचरण के शब्द ही दोहराये गए हैं फिर भी भावप्रेषण में किसी प्रकार की कमी न आने पाई है। देखिये—

> सत्यादराजितसमानवकामदारो
> सत्यादराजितसमानवकामदारो ।
> सत्यादराजितसमानवकामदारो
> सत्यादराजितसमानवकामदारो ॥ ८ ॥

यमक का चरमचमत्कार वहाँ देखने को मिलता है जहाँ सारा १२ वाँ श्लोक पुनः तेरहवें के रूप में दोहराया गया है। दोनों श्लोकों का अक्षर विन्यास सर्वथा दर्शनीय है—

> संपन्नकामलसदागमनाभिभूत
> मायारितापगितिशारदभारती ने ।

भव्याय देहि तरसा तरसा प्रसिद्ध
भूमानमत्रभवतीः कमलामताश्च ॥ १२ ॥

तथा—

संपन्न कामल सदागमनाभिभूत
भावारितापचिति का रमभा रती ते ।
भव्यायदेहितरसा तरसा प्रसिद्ध
भूमानमत्र भवतीः कमलामताश्च ॥ १३ ॥

अन्तिम श्लोक में जिनप्रभ ने अपना नाम तो दिया ही है साथ ही 'आनन्दनिष्यन्दी' स्तोत्र को पापनाशक भी कहा है—

यं त्रैलोक्यपतिस्तव स्तवमिमं सन्दृब्धवान् मुग्धधी—
रप्याचार्यजिनप्रभः श्रवणयोरानन्दनिष्यन्दिनम् ।
भक्तिव्यक्तितरंगरंगमनसां पुंसाममुं सादरं
पापं पाठतां प्रयाति विलयं संसारसन्तापि तु ॥ २१ ॥

इसीतरह का एक अन्य चमत्कारपूर्ण स्तोत्र 'अरजिनस्तव' है। इसमें १४ छन्द हैं प्रथम तेरह पंचदशाक्षरी श्लोक हैं। जिनमें ५ नगण एक गुरु आये हैं अन्तिम शार्दूलविक्रीडित श्लोक है। लेखक ने पुष्पिका में इस स्तव को केवलाक्षरमय कहा है जिसमें किसी भी प्रकार की मात्रा का प्रयोग नहीं हुआ है। बिना भाषा पर असाधारण अधिकार प्राप्त हुए ऐसा प्रयोग किया जाना असंभव है। माघ और भारवि ने एकाक्षर व द्व्यक्षर श्लोक लिखे हैं परन्तु वे अर्थ की दृष्टि से अत्यन्त क्लिष्ट हो गए हैं। यहाँ जिनप्रभ का प्रयोग अद्भुत है जिसमें किसी भी तरह की अर्थ की हानि न होने पायी है। इसका प्रथम श्लोक है—

जय [illegible]
जय [illegible] ।
जय [illegible]
जय [illegible] ॥ १ ॥

इस सारे स्तवों में अनुप्रासों का प्रयोग अपूर्व है। इस प्रकार का सफल प्रयोग कदाचित् मात्राओं के अभाव के कारण ही हो पाया है। अन्त्यानुप्रास की छटा भी निराली है। छेका, वृत्ति व अन्त्य अनुप्रासों को अपनी समस्त विशेषताओं के साथ नीचे के श्लोकों में देखिये—

नतशतमखतमखलजनमदर
गमयपरमपदमभयदसदर।
नवनवभवनभवदशमगम
शकलनगजकलगतदनवगम ॥ ७ ॥

अनुप्रास के साथ यमक का प्रयोग इस श्लोक में दर्शनीय है—

समलसतममहपरमतकलस
गणधरगणधरधामरसकलस।
भवदभवदनदलमलसदवम्
यतमवनमयसहनमहनवम ॥ १३ ॥

नेमिनाथ से सम्बन्धित भी एक ही स्तोत्र है। यह भी बड़ा ही चमत्कारपूर्ण है। इसमें २० विविध प्रकार के छन्द व्यहृत हुए हैं। प्रथम छन्द आर्या है। दूसरे से २० वें तक क्रमशः वंशस्थ, सुनन्दिनी, रथोद्धता, उपजाति, अनुष्टुप्, स्रग्विणी, द्रुतविलम्बित, रुचिरा, वसन्ततिलका, मृदंग, स्वागता, मन्दाक्रान्ता, शार्दूलविक्रीड़ित, स्रग्धरा, वियोगिनी, औपच्छन्दिक, पुष्पिताग्रा तथा मालिनी है। इस स्तोत्र का नाम क्रियागुप्त नेमिजिनस्तव है। इसके नाम से ही प्रकट होनेवाली विशेषता यह है कि इसके प्रत्येक श्लोक में कोई क्रिया गुप्त रक्खी गई है जिसका रचयिता ने अन्त में उल्लेख कर दिया है। इसका प्रारम्भ निम्न आर्या छन्द से होता है—

श्रीहरिकुलहीराकर, वज्रमणिर्वज्रपाणिनाप्रणतः।
रथचक्रमुक्तनेमे, प्रणमुपां धीमुपीमगुणाम् ॥

इस श्लोक में आया हुआ 'अवद' शब्द अगले श्लोक की क्रिया के साथ प्रयुक्त होता है पर वह यहाँ लुप्त है। देखिये—

विगददुहहेदुं मोहारिकेदुदयं
दलिदगुरुदुरिदमव विहिदकुमदक्खयं ।
नाधतं नमदि जोसदहनदवत्सलं
लहदि निच्चदि गति सोदद निम्मलं ॥

छठा पद्य उक्त समस्त विशेषताओं से समन्वित मागधी भाषा का है—

असुल सुलविसलनयनाय सेविनपदे
नमिल जय जंतु तुदि दिन्नसिवपुलपदे ।
चलन पुलनिलद संसालिसलसीलुदे
देहि महसामि तं सालि सासदपदे ॥

सातवाँ पैशाचीभाषा का पद्य है—

नलिताखिलतोसतया सततं, मदनानलनीलमनानगुणं ।
नलिनारुण पाततलं नमने, जिन नो इध तं स शिवं लभते ॥

आठवाँ चूलिका पैशाची भाषा का पद्य है—

कलनालिकनातुलतामहलं, चलनीकल चालुमशप्पसलं ।
ललनाचनकीतकुनंलुचिलं, जिनलावमहंसमलामि नलं ॥

नवें व दसवें पद्य अपभ्रंश भाषा के हैं। ये हिन्दी भाषा के सोरठे के पूर्वरूप हैं। हिन्दी का प्रारंभिक रूप भी इनमें देखा जा सकता है। एक पद्य देखिये—

सासयसुक्खनिहाणु, नाह न दिट्ठो जेहि नउं ।
पुन्न विहूणउ जाणु, निफलु जम्मु तिह नरपसुहं ॥

शेष तीन पद्य सम संस्कृत भाषा के हैं। अन्त्यानुप्रास के सौन्दर्य की दृष्टि से ही नहीं, प्रवाह की दृष्टि से भी इनकी भाषा द्रष्टव्य है। एक श्लोक देखिये—

हरिहिमकरहार कुन्दसुन्दरदेहाभय
केवलकमलाकेलिनिलय मंजुलगुणगणमय ।

कमलारुणकरचरणचरणभरधरणधवलवल—
सिद्धिरमणिसंगमविलासलालसमलमवदल ॥११॥

प्रवाह की दृष्टि से इसकी भाषा जयदेव की प्रांजल सुमधुर पदावली की याद दिलाती है। जयदेव के गीत गोविन्द की भाषा को देखने से विश्वास होता है कि इस प्रकार की ललितभाषा की अवश्य ही कोई सुदीर्घ परम्परा रही होगी। जिनप्रभ के सारे स्तोत्र मिल सकें तो अवश्य ही कुछ उनमें ऐसे मिल सकते हैं जो इस परम्परा की शृंखला में कड़ी का काम दे सकें।

शान्तिनाथ से सम्बन्धित तीन स्तोत्रों से हम परिचित हैं। इनमें एक 'शान्तिनाथाष्टक' फारसी भाषा में लिखा गया है। इनमें ९ पद्य हैं। इसका प्रथम पद्य देखिये—

अजिकुहकाफुजनूविशहरिहयिणापुरगो—
वनिपात साहि विससेणु खिम्मिति ओ राया जेवनि
कौम्यो ऐरादेवि तविहि सीतारामानइ
जुजिय किनू हरिपासदिगरहियपियरादान इ
आदिगरिरोजिपु फूरिपु सेदरिनिगार खानैनिपो
छारिदहप्वावि अह संदिवइ आतरि सौविन इह मो।

छप्पय छन्द में फारसीभाषा का उक्त प्रयोग अनूठा है। अन्तिम पद्य में जिनप्रभ ने समकालीन दिल्लीश्वर मुहम्मद (तुगलक) का नाम भी दिया है, जिसपर जिनप्रभ का अत्यन्त प्रभाव पड़ा था—

अजितेरोपमुहम्मद मनगमसचति मर्हन सिरामिय।
फिनरीदोशनिमिसराकउदो सुदीलति षामी ॥

दूसरे 'शान्तिजिनस्तवन' में २१ श्लोक हैं। जिनमें प्रथम २० अनुष्टुप् छन्द हैं व इक्कीसवां शार्दूलविक्रीडित है। प्रत्येक छन्द के द्वितीय चरण को चतुर्थ में दोहराया गया है। इस प्रकार यमक व अन्त्यानुप्रास का प्रयोग हुआ है। प्रथम छन्द देखिये—

श्री शान्तिनाथो भगवानष्टापदसमानरक् ।
बिभ्रद् गुणान् मया स्तोता-नष्टापदसमानरक् ॥

भावगौरव की दृष्टि से अन्तिम छन्द भी द्रष्टव्य है—

स्तुत्वा त्वामिति मार्गये मुहुरिदं श्रीनर्तकीनर्तने
नाट्याचार्य जिनप्रभंजनमहाविघ्नाम्बुदाच्छादने ।
धत्तां संततमेव तावकगुणग्रामाभिरामस्तव-
प्रज्ञापारमितामपारमहिम प्राग्भारमद् भारती ॥ २० ॥

तीसरा स्तोत्र अभी तक नहीं मिल सका । इसमें २४ श्लोक हैं । यह भी बड़ा चमत्कार पूर्ण है । इसका प्रारंभ 'शृंगार भासुर सुरासुर' शब्दों से होता है ।

एक स्तोत्र मुनिसुव्रत से सम्बन्धित है । यह संस्कृत भाषा में है । इसमें इकतीस श्लोक हैं । अभी तक मिला नहीं है । प्राप्त सूचनानुसार यह भी बड़ा ही चमत्कारपूर्ण है । इसका प्रारंभ 'निर्माय निर्माय गुणर्द्धि' शब्दों से हुआ है ।

आचार्य जिनप्रभ द्वारा रचित ३ गौतम स्वामी से सम्बन्धित स्तोत्र हैं । इनमें से एक 'गौतमाष्टक' है जिसमें ९ अनुष्टुप् छन्द प्रयुक्त हुए हैं । इसका प्रथम श्लोक निम्न है—

ॐ नमस्त्रिजगन्नेतुः वीरस्याग्रिमसूनवे ।
समग्रलब्धिमाणिक्यरोहणायेन्द्रभूतये ।

दूसरे 'गौतमस्तवन' में २१ विविध प्रकार के संस्कृत छन्द प्रयुक्त हुए हैं । इसमें पहला शार्दूलविक्रीडित है । दूसरे से सत्रहवें तक उपजाति छन्द है । अठारहवां वियोगिनी, १९वां वसन्ततिलका, २० वां रथोद्धता व २१ वां शिखरिणी छन्द है । इस स्तोत्र का प्रारंभिक श्लोक देखिये—

श्रीमन्तं मगधेषु गोर्बर इति ग्रामोऽभिरामोऽस्ति यः
तत्रोत्पन्नमनन्तविज्ञानमनिशं श्रीवीरनेता विभो ।

ज्योतिः संश्रय गौतमान्वयवियत्प्रद्योतनद्योमणिम्
तपोत्तीर्ण सुवर्णवर्णवपुषं भक्त्येन्द्रभूति स्तुवे ॥

तीसरा 'गौतम स्तोत्र' प्राकृत भाषा के २५ पद्यों में निबद्ध है। इस स्तोत्र में गौतम स्वामी का जीवन चरित बड़े ही सुन्दर शब्दों में उपस्थित किया गया है। भाषा बड़ी ही सुन्दर व सरस है। भावगर्भित भाषा का परिचय इन प्रारंभिक दो पद्यो मे मिलेगा—

जम्मपवित्तियसिरिमगहदेस अवयंस गुब्बरगामं।
गोयमगुत्तं सिरिइंदभूइगणहारिण नमिमो ॥
वसुभूइ कुलविभूषण ! जिट्ठाउडुजाय ! कंचणच्छाय।
पुहवीउअरसरोरुहमराल ! तं जयमु गणनाह ॥

अन्तिम पद्य में जिनप्रभ ने अपना नाम भी दिया है—

नमिरसुररायसेहरचुंबिअपय ! संथुओसि इअ भयवं।
जिणपह मुणिंद। गोयम मह उवरि पसीअ अविसामं ॥२५॥

आचार्य जिनप्रभ ने एक स्तोत्र अपने गुरु जिनसिंहसूरि की स्तुति में भी लिखा है। इस स्तोत्र को लेखक ने 'यमकस्तवकित' कहा है। अनुप्रासों की छटा तो दर्शनीय है ही। कही प्रथम चरण के शब्दों की आवृत्ति तृतीय चरण में हुई है तो कही द्वितीय चरण को चतुर्थ में दोहराया गया है। प्रथम श्लोक देखिये—

प्रभुः प्रदधान्मुनिपक्षिपंक्ते-
र्नागारिरागोपचितिं सदानः।
समुद्वहन् श्रीजिनसिंहसूरि-
र्नागारिनागोर्चितिं स दानः ॥

एक अन्य श्लोक देखिये जिसमें प्रथम चरण के अक्षरों की आवृत्ति तृतीय चरण में हुई है—

योगेन धीरोनित माननीय
श्रियस्तवांगे ननिनोपमानम्।

योगेन धीरोचित माननीय
प्रख्यातमूर्तं तमुदाहरामः ॥१०॥

अन्तिम छन्द भी द्रष्टव्य है—

श्रीमज्जिनेश्वरयतीश्वरपादपद्म
शृंगारभृङ्गकरणिजिनसिंहसूरिः ।
इत्थं स्तुतोऽस्तु यमकैः शर्मकरखेन्दु-
रानन्दकन्दलनदुर्ललितो नतानाम् ॥१३॥

एक अन्य स्तोत्र सुधर्म स्वामी से सम्बन्धित है। इसमें २१ विविध प्रकार के छन्द हैं। वे क्रमशः स्वागता, इन्द्रवज्रा, शार्दूलविक्रीडित द्रुतविलम्बित, उपचित्रा, वैश्वदेवी, रुचिरा, शालिनी, शिखरिणी, गीति, इन्द्रवंशा, आर्या, अनुष्टुप्, वसन्ततिलका, चण्डवृष्टिदण्डक, मंजुभाषिणी, मालभारिणी, अपरान्तिका, रथोद्धता, स्रग्धरा व हरिणी हैं। स्तोत्र का प्रारंभ इस श्लोक से हुआ है—

आगमनिम्नगा हिमवन्तं संसृतिनंत समूहमवन्तम् ।
नौ समानमभिनौमि सुधर्म-स्वामिनं महति मोहपयोधौ ॥

जिनप्रभ केवल छोटे श्लोक लिखने में ही सिद्धहस्त न थे वरन् बड़े से बड़ा छन्द भी साधिकार लिखने में समर्थ थे। उनके २७ अक्षरों के चण्डवृष्टिदण्डक को देखने से इस विषय में कोई सन्देह नहीं रहता।

जनुरभजत फाल्गुनोत्तरासु प्रधानद्विजन्मायनीवाऽभिवैनादना-
भिजलजलधिचन्द्रमाश्चण्डमर्त्यावतुल्यप्रतापाभिभूताभियातव्रजः ।
अधिगतवति वर्द्धमाने जिनेन्द्रे निवर्त्य परीक्ष्मलीन्द्य च यः पारा-
पगमनमुपगम्य वैभारशैले द्विपक्षीमवाप्तानवर्गं स जीयात्पुरान् ॥१५॥

एक स्तोत्र मंगलाष्टक के नाम से है जिसमें ८ अनुष्टुप् छन्द हैं। प्रत्येक श्लोक के चतुर्थ चरण के अन्त में 'मंगलम्' शब्द आया है जो वल्लभाचार्य के मधुराष्टक के 'मधुरं' शब्द से किसी भी तरह कम प्रभाव-

शाली नहीं है । इस स्तोत्र में बड़े ही विनयपूर्वक श्रद्धानत होकर जिनप्रभ के भक्ति-आपूरित हृदय ने इष्टदेव को भावसुमन अर्पित किए हैं । किसी तरह का चमत्कार न होते हुए भी भावगरिमा के कारण यह जिनप्रभ के श्रेष्ठ स्तोत्रों में गिना जा सकता है । स्तोत्र का प्रारंभ इस श्लोक से हुआ है—

जितभावद्विषां सर्वविदां तत्त्वार्थदर्शिनम् ।
त्रैलोक्यमहिताह्रीणामर्हतामस्तु मंगलम् ॥

अन्तिम श्लोक में जिनप्रभ ने श्लेष का आश्रय लेकर अपना नाम उल्लिखित किया है—

मंगलस्तोत्रमंगल्यप्रदीपस्यास्य दानतः ।
येऽर्चयन्ति जिनान् भक्त्या ते स्युः प्राप्तजिनप्रभाः ॥

दो पंचपरमेष्ठि स्तव हैं । प्रथम स्तोत्र में ५ अनुष्टुप् छन्द व्यवहृत हुए हैं । इस स्तोत्र का प्रारंभिक श्लोक यह है—

स्वः श्रियं श्रीमदर्हन्तः सिद्धाः सिद्धपुरीपदम् ।
आचार्याः पञ्चधाऽऽचारं वाचकाः वाचना वराम् ॥

उपर्युक्त स्तोत्र के अन्तिम श्लोक की तरह इस स्तोत्र के अन्त में भी जिनप्रभ ने श्लेष का आश्रय लेकर अपना नाम उल्लिखित किया है—

मंत्राणामादिमं मंत्रं तन्त्रं विघ्नौघनिग्रहे ।
ये स्मरन्ति सदैवेनं ते भवन्ति जिनप्रभाः ॥ ५ ॥

दूसरे पंचपरमेष्ठि स्तव में ७ आर्या छन्द प्रयुक्त हुए हैं । इस स्तोत्र की प्रथम आर्या है—

परमेष्ठिनः सुरवर्मनियतनुतविदितनिविष्टपायस्थान् ।
पंचापि सदा ध्यान् सुमनःप्रियदौरभान् सफलमुक्तीन् ॥

एक 'पंचनमस्कृतिस्तव' है । जिसमें ३३ श्लोक प्रयुक्त हुए हैं । प्रथम ३१ अनुष्टुप् छन्द हैं तथा अन्तिम २ शार्दूलविक्रीडित छन्द हैं । इस स्तोत्र

में 'पंचनमोकार' मंत्र व प्रक्रिया की महत्ता बतलाई गई है। स्तोत्र का प्रारंभ इस श्लोक से होता है—

प्रतिष्ठितं तमः पारेवाग्वर्तिवैभवम्।
प्रपंचवेदसः पंच नमस्कारमभिष्टुमः ॥

'पंचनमोकार' की महत्ता के कुछ अन्य श्लोक देखिये—

अहो पंचनमस्कारः कोऽप्युदारो जगत्सु यः।
सम्पदोऽष्टौ स्वयं धत्ते दत्तेऽनन्तास्तु ताः सताम् ॥ २ ॥
स्मृत्वा पंचनमस्कारं प्रविष्टायास्तमोगृहम्।
घटन्यस्तो महासत्याः पन्नगः पुष्पमाल्यभूत् ॥२५॥
एष माता पिता स्वामी गुरुर्नेत्रं भिषक् सखा।
प्राणत्राणं गतिर्दीपः शान्तिर्पुष्टिर्महन्मह ॥२८॥

एक 'पञ्चकल्याणकस्तव' है जिसमें ८ श्लोक हैं। इस स्तोत्र का प्रारंभिक वंशस्थ छन्द यह है—

निलिपलोकायितभूतलं श्रिया
नयन्मुदं नैरयिकानपि क्षणम्।
त्रिलोकलोकस्य रतेः प्रपंचकं
जिनेन्द्रकल्याणकपंचकं स्तुमः ॥

अन्तिम श्लोक में लेखक ने अपना नाम बड़े ही कौशल से गुंफित किया है—

इत्याहतस्त्रिभुवनप्रभुनत्क पंच-
कल्याणकव्यवपं हृदि यो बिभर्ति।
शस्त्राणि तै जिनप्रभाप्यपि मोहराजः
सौभाग्यभाग्यभुजि न प्रभवन्ति तस्मिन् ॥ ८ ॥

एक अन्य स्तोत्र 'त्रिजिनपंचकल्याणकस्तव' है। इसमें १५ श्लोक हैं। सभी अनुष्टुप् छन्द हैं। इसका प्रथम छन्द है—

पद्मप्रभप्रभोर्जन्म गर्भाधानं च नेमिनः ।
भवार्ति कार्तिक श्याम द्वादश्यां लुम्पतां मम ॥

इस प्रकार पञ्चकल्याणमहोत्सवों की तिथियों के नामों की गणना हुई है। अन्तिम श्लोक में लेखक का नाम भी दिया गया है।

एक स्तोत्र का नाम अर्हदादि स्तोत्र है। इसमें ८ श्लोक हैं। जिनमें प्रथम दो मन्दाक्रान्ता छन्द हैं। पहला श्लोक देखिये—

मौनेनोर्वी व्यहृत परितो वत्सराणां सहस्रं
यो निर्माणश्चरणयुगलं भव्यमालोपकारी ।
अर्हन्नुत्तारयतु हृदयात्स स्वकीयं कलानां
यो निर्माणश्चरणयुगलं भव्यमालोपकारी ॥

इस श्लोक में सम्पूर्ण द्वितीय चरण की आवृत्ति चतुर्थ चरण में हुई है। प्रसन्न यमक का अन्यत्र भी प्रयोग द्रष्टव्य है—

शिवरतांवरतोपवशान्नतो-मघवताऽप्रथतामतिदूरगः ।
अमदनो मदनोदनकोविदः शममलं मम लभयताज्जिनः ॥ ६ ॥
अविकलं विकलंकधिया सुखं विदधतं दधतं जगदीशिता ।
अकलहं कलहंसगति श्रये जिनवरं नवरंगतरंगितः ॥ ७ ॥

एक अन्य स्तोत्र 'वीतरागस्तव' है। इसमें १६ उपजाति छन्द प्रयुक्त हुए हैं। इस स्तोत्र का प्रारंभिक श्लोक है—

जयन्ति पादा जिननायकस्य
दोषापहा ध्वस्ततमोविकाराः ।
रवेरिवास्चर्गमतापकाश्च
न कौशिकक्लेशकराः शराश्च ॥

किसी प्रकार के चमत्कार या आवरण न होने पर भी 'वीतरागस्तव' भाव की दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट स्तोत्रों में गिना जाता है। अन्तिम श्लोक में लेखक का नाम भी है।

एक अन्य स्तोत्र का नाम प्राभातिक नामावली है। इसमें पहला श्लोक वसन्ततिलका है जिसमें जिनसिंहसूरि की स्तुति है। स्तोत्र के शेष अंश में जिनाचार्यों व तीर्थंकरों के नाम गिनाए गये हैं। नामों में ५ पाण्डवों व सीता आदि सतियों को भी गिनाया गया है। प्रथम श्लोक यह है—

> सौभाग्यभाजनमभंगुरभाग्यभंगी
> संगीतधाम निजधाम निराकृतार्कम्।
> अर्चामि कामितफलं हृति-कल्पवृक्षं
> श्रीमन्तमस्तवृजिनं जिनसिंहसूरिम्॥

अन्त में अपने गुरु परम्परा पट्टावली दी है।

एक स्तोत्र वीरजिन की 'विज्ञप्ति' के रूप में इसी नाम से मिलता है। यह प्राकृत भाषा में लिखा गया है। इसमें कुल २५ पद्य हैं। भावों की दृष्टि से यह बड़ा ही मधुर व मनोरम स्तोत्र है। इसका प्रथम पद्य यह है—

> सिरिवीरराय देवाहिदेव
> मब्वनु जणिय जय रिक्ख।
> विन्नयणिज्ज जिणेसर
> विन्नत्ति सुण तिहुयणेसु॥

एक स्तोत्र, जिसे स्वतंत्र ग्रन्थ भी गिनाया गया है, हीयाली है। 'हीयाली' शब्द का तात्पर्य दृष्टिकूट या पहेली है। स्तोत्र-साहित्य में इस प्रकार का प्रयोग अनूठा है। यह अपभ्रंश भाषा में है। अभी तक यह अधूरा ही मिला है। पूरा प्राप्त होने पर अमीर खुसरो की पहेलियों की परम्परा की एक कड़ी मिल सकती है। इसका पहला पद्य देखिये—

> अगुरु अमूल्ह जोणी संभवु निर्मल संपुनु सो दीसइ।
> हरिहर बंभु न सिद्धिनु गोरसु इंदु चंदु न मनीसइ॥

इस प्रसंग में चार पद्य हैं। आगे एक अपूर्ण पद्यहीयाली में हीयाली और मिलती है जिसका प्रथम पद यह है—

चारि चलण चउ सवण चउरभुज बंधुन करइ पचारि ।
बूझहु सकल सयाणा पंडित कासु कहउं सा नारि ॥

यह आदिकालीन हिन्दी भाषा का रूप समझने के लिए भी अधिक प्रामाणिक सिद्ध हो सकती है ।

जिनप्रभसूरि द्वारा विरचित ९ स्तोत्र ऐसे हैं जिनमें विभिन्न तीर्थ स्थानों के नाम आये हैं । उनमें एक 'तीर्थमालास्तव' प्राकृत में है जिसमें १२ पद्य हैं । सारे स्तोत्र में अनेक जैनतीर्थों के नाम गिनाए गये हैं । इस स्तोत्र का प्रारंभिक पद्य यह है—

नउविसपि जिणिंदे, सम्मं नमिऊणाइसरणत्थं ।
जत्ताऽराहिय तित्थं नाम संकित्तणं कुणमह ॥

दूसरा 'तीर्थयात्रास्तोत्र' है जिसमें २७ जैन तीर्थ स्थलों के नाम आये हैं । कुल ९ पद्य हैं । भाषा इसकी भी प्राकृत ही है । प्रथम पद्य देखिये जिसमें शत्रुंजयतीर्थ व उज्जयंत शैल के नाम आये हैं—

गिरि सत्तुंजयतित्थे रिसहजिणं पणिययामि भत्तीए ।
उज्जितसेल सिहरे जायवकुलमंडणं नेमिं ॥

तीसरा मथुरा-यात्रा स्तोत्र है जिसमें मथुरा-क्षेत्र के तीर्थस्थलों व जैन विग्रहों का उल्लेख आया है । इसमें १० उपजाति छन्द व्यवहृत हुए हैं । प्रथम छन्द देखिये—

सुराचलश्रीजितिदेवनिर्मिते स्तूपेऽभिरूपे वरशो कृतास्पदौ ।
सुवर्णनीलोत्पलकोमलच्छवि सुपार्श्वपार्श्वौ मुदिता स्तविमि वाम् ॥

चतुर्थ स्तोत्र में श्रीदेव द्वारा विनिर्मित मथुरास्तूप की स्तुति है । इसमें केवल चार श्लोक हैं । प्रथम श्लोक है—

श्रीदेवनिर्मितस्तूपशृंगारतिलकश्रियौ ।
सुपार्श्वपार्श्वतीर्थेशौ क्लेशं नाशयतां सताम् ॥

दो स्तोत्रों का नाम 'स्तुतित्रोटक' है । दोनों अपभ्रंश भाषा में लिखे

गये हैं। एक में ५ पद्य हैं तथा दियराम, विमलगिरि, उज्जिलगिरि, दिल्ली आदि स्थानों के नाम प्रयुक्त हुए हैं। प्रथम पद्य यह है—

नियजंमु रावणहं सुयं दियराय जुतिरयहं जत्त कियं।
निच्चलवणि वेचिउ नियधणं विमलगिरि वंदिउ आदिजिणं॥

दूसरे स्तुतित्रोटक में चार पद्य हैं और फलवद्धिपुर के पार्श्वविग्रह का वर्णन व स्तुति की गई है। प्रथम पद्य देखिये—

ते धन्नपुन्नसुकयत्थनरा जे पणमहि सामिउं भत्तिभरा।
फलवद्धिपुरट्ठियपासजिणं, अससेणह् नन्दण भमहरणं॥

उक्त सभी स्तोत्र 'विधिमार्ग-प्रपा' नामक ग्रन्थ में भी आये हैं।

एक अन्य स्तोत्र का नाम 'आगम स्तवन' है। जिसमें ४५ आगम ग्रन्थों के नाम प्रयुक्त हुए हैं। स्तोत्र में कुल ११ आर्याछन्द हैं। भाषा प्राकृत है। प्रथम छन्द यह है—

सिरिवीरजिणं सुयरयरोहणं पणमिऊनभत्तीए।
कित्तेमि तप्पणीयं सिद्धन्तमहं जगपईवं॥

'वर्धमान विद्यास्तवन' वर्धमान-विद्याकल्प नामक ग्रंथ में आया है। यह भी प्राकृत भाषा में विरचित है। इसमें १७ पद्य व्यवहृत हुए हैं। इस स्तोत्र के पठन का फल अन्तिम पद्य में मंगल कल्याण का आवास होना बताया गया है। प्रथम पद्य देखिए—

आमि किलट्ठुत्तरगम पयविन्नासो हुइज्ज पोउंमि।
तत्तो उद्धरिआओ यायगगिरिचन्दमेणेनं॥

पद्मावती चतुष्पदिका

पद्मावती चतुष्पदिका का उल्लेख अन्यत्र स्वतंत्र ग्रंथ के रूप में किया जा चुका है, किन्तु यह इतना छोटा है कि इसे एक बड़ा स्तोत्र कहना अधिक संगत है। भाषा अपभ्रंश है; परन्तु कहीं कहीं इसमें आदिकालीन हिन्दी भाषा का रूप भी देखा जा सकता है। इस विस्तृत स्तोत्र में १०

चतुष्पदियों में पद्मावती-देवी की स्तुति की गई है। भाषा-संगठन व भाव-विन्यास दोनों ही दृष्टियों से यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्तोत्र है। इसके प्रथम दो पद्य देखिए—

जिणमासणु अवधारि करेवि
झायहु सिरि पउमावइदेवि
भवियलोय आणंदपरे !
दुलहउसावयजम्मुलहेवि, मनरिमित्थसुर अणुसरहु ॥१॥ ध्रुवकम

इसकी प्रथम दो पंक्तियां चौपई छन्द (हिन्दी) के दो चरण हैं अंतिम चरण गाने की टेक की तरह है। दूसरा पद्य और देखिए—

पास नाह पयपंकयभुसलि, संघविग्घनिन्नासणिकुसलि।
मसिकर निम्मलगुणगणपुन्न, पउमएवि मम होहि पसन्न ॥

इसी तरह सारे पद्य चौपई छन्द हैं जिसके प्रत्येक चरण में १५ मात्राएं होती हैं और अन्त में ह्रस्व स्वर व्यवहृत होता है। १८वें पद्य में जिणदत्तसूरि का व ३६वें में जिनप्रभ के गुरु जिनसिंहसूरि के नाम भी आये हैं। अन्तिम पद्य में लेखक ने अपना नाम भी दिया है—

पउमायइ चउपईय पढंतु, होइ पुरिस तिहुयण सिरिवंतु।
इम पभणइं नियजस पप्पूरि, सुरहिय भवणु जिणप्पहसूरि ॥

इस स्तोत्र का न केवल भाव व भाषा की दृष्टि से ही महत्त्व है वरन् इसका ऐतिहासिक दृष्टि से भी उल्लेखनीय स्थान है। जायसी व तुलसी की दोहा-चौपाई शैली की प्राचीन परम्परा अप्राप्य है। यह तत्कालीन लोकभाषा (अपभ्रंश-हिन्दी का पूर्वरूप) में चौपई छन्द में लिखी हुई रचना है। यह और इसी तरह की अन्य चौपई व चौपाई छन्दों की रचनाएं मिलें तो इस त्रुटित परम्परा का पता लग सकता है।

कालचक्रकुलकम्

इसका नाम भी अन्यत्र एक स्वतंत्र ग्रंथ के रूप में प्रकरणग्रंथ में

गिनाया गया है। किन्तु इसे भी एक बड़ा स्तोत्र कहना अधिक उपयुक्त है। यह भी प्राकृत भाषा में विरचित है। कुल ३५ छन्द प्रयुक्त हुए हैं। सुख-निर्वाण के लिए इसका पठन फलदायक माना गया है। इसकी भाषा प्राचीन अपभ्रंश के अधिक निकट है उससे प्रस्फुटित होने वाली तत्कालीन हिन्दी के नहीं। भावों की दृष्टि से यह बड़ा ही गंभीर स्तोत्र है। इसके प्रारम्भिक दो छन्द देखिये—

> अवसप्पिणि उसप्पिणि भेएणं होइ दुविहउ कालो।
> सागर कोडाकोडीए वीसा एसो समप्पेइ।
> सुसमसुसमाद्दि सुसमा सुसमा दुसमा य दुसमसुसमाय।
> पंचमिया पुण दूसम तह दूसमदूसमा छट्ठी॥

शब्द चमत्कार भी दर्शनीय है। जैसा कि 'कुलकम्' नाम से ही स्पष्ट है एक छन्द के भाव दूसरे से संग्रथित हैं स्वतंत्र नहीं है। इस कुलक के रूप में कालचक्र की गाथा की रचना जिनप्रभ ने अबोध व्यक्तियों के बोधनार्थ की है जैसा कि अन्तिम छन्द से विदित होता है—

> अबुहजणबोहत्थं.........अप्पणो समानेण।
> कालचक्कस्स गाहा जिणपहसूरीहि संठविया।

दार्शनिक स्तोत्र

दो स्तोत्र जैनदर्शन के सिद्धान्तों से सम्बन्धित हैं। इसलिए इनका परिचय स्वतन्त्र रूप से दिया जाना ही अधिक उपयुक्त होगा। दोनों ही विस्तृत आकार वाले हैं। इनमें से एक नितांत महत्त्वपूर्ण 'सिद्धान्तागम' स्तव है। प्रस्तुत स्तोत्र में ४५ आगम ग्रन्थों के सिद्धान्तों एवं मर्म विषयों का विवेचन किया गया है। यह ४६ संस्कृत छन्दों में निबद्ध है। अनुष्टुप्, आर्या, आर्यागीति, उपजाति, इन्द्रवंशा, रथोद्धता, वंशस्थ, शालिनी, रुचिरा, वसन्ततिलका, हरिणी, स्रग्धरा आदि विविध छन्द प्रयुक्त हुए हैं। साथ में इस पर लिखी हुई एक अवचूरि (टीका)

भी मिलती है । अवचूरि के इस अंश से ही उनके प्रतिदिन स्तवनिर्माण प्रतिभा का पता लगता है—

"पुरा श्रीजिनप्रभसूरिभिः प्रतिदिनं नवस्तवनिर्माणपुरस्सरं निरवद्याहारग्रहणाभिग्रहवद्भिः प्रत्यक्षपद्मावतीदेवीवचसामभ्युदितं श्रीतपागच्छं विभाव्य भगवतां श्रीसोमतिलकसूरीणां स्वशैक्षशिष्यादिपठनविलोकनाद्यर्थं यमकश्लेषचित्रछन्दोविशेषादिनवनवभंगीसुभगाः सप्तशतीमिताः स्तवा उपदीकृता निजनामांकिताः । तेष्वयं सर्वसिद्धान्तस्तवो बहूपयोगित्वाद्विवियते ।—

स्तोत्र के प्रथम श्लोक में गुरु व गणधर सुधर्मा के साथ आचार्य बड़े ही विनीत होकर श्रुतदेवता—सरस्वती को भी प्रणति निवेदन करते हैं । देखिए—

नत्वा गुरुभ्यः श्रुतदेवतायै सुधर्मणे च श्रुतभक्तियुक्तः ।
निरुद्धनानावृजिनागमानां जिनागमानां स्तवनं तनोमि ॥

आगे प्रत्येक श्लोक में जिनागमों का वर्णन मिलता है । स्तोत्र की विषय स्थापन शैली के लिए कुछ श्लोक व उनकी अवचूर्णि द्रष्टव्य है ।—

सामायिकादिकषडध्ययनस्वरूप-
—मावश्यकं शिवरमावदनात्मदर्शम् ।
निर्युक्तिभाष्यवरचूर्णि विचित्रवृत्ति-
स्पष्टीकृतार्थनिवहं हृदये वहामि ॥

"अवश्यकरणादावश्यकम् । सामायिकादिकानि सामायिक-चतुर्विंशति-स्तव-वन्दनक-प्रतिक्रमण-कायोत्सर्ग—प्रत्याख्यानरूपाणि यानि षडध्ययनानि तत्स्वरूपम् । शिवरमाया (मोक्षलक्ष्म्याः) वदनात्मदर्शं दर्पणतुल्यम् । पुनः किंविशिष्टम् । निर्युक्तिः श्री भद्रबाहुकृता एकादशसहस्रप्रमाणा । भाष्यं सूत्रार्थप्रपंचनम् । यथावच्चूर्णिरष्टादशसहस्रप्रमाणा पूर्वाचार्यविहिता । विचित्रवृत्तिरनुगतार्थवर्णनं द्वाविंशतिसहस्रप्रमाणम् । एताभिः स्पष्टीकृतोऽर्थनिवहो यस्य तथाविधं हृदये वहामि स्मरामि ।"

प्रवचननाटकनान्दी प्रपंचितज्ञानपंचकसतत्त्वा ।
अस्माकममन्दतमं कन्दलयतु नन्दिरानन्दम् ॥

"प्रवचनं जिनमतमेव नाटकं तत्र नान्दी द्वादशतूर्यनिर्घोषः तन्मूलत्वा-न्नाटकस्य । प्रपंचितं प्रकटीकृतं ज्ञानपंचकस्य मतिश्रुतावधिमनःपर्यव केवलज्ञानरूपस्य सतत्त्वं स्वरूपं यया सा नन्दिरस्माकममन्दतमं बहुतर-मानन्दं कन्दलयतु वर्धयतु ।"

अन्तिम श्लोक में जिनप्रभ ने अपना नाम देने के साथ-साथ स्तोत्र को कण्ठस्थ करने का फल श्रुतदेवता–सरस्वती के द्वारा सन्तुष्ट होकर वर प्रदान करना कहा है—

इति भगवतः सिद्धान्तस्य प्रसिद्धफलप्रदां
गुणगणकथां कण्ठे कुर्याज्जिनप्रभवस्य यः ।
विसरतितरां तस्मै तोपाद्वरं श्रुतदेवता
स्पृहयती च सा मुक्तिश्रीस्तरसमागमनोत्सवम् ॥

जिनागम सिद्धान्तों का एकत्र-विवेचन करके आचार्य ने निश्चय ही जिज्ञासुओं के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य किया है । इसे एक तरह की अनुक्रमणिका या कोष कहना अधिक संगत होगा ।

'सिद्धान्तागमस्तव' की तरह ही दूसरा महत्त्वपूर्ण स्तोत्र 'परमतत्त्वा-वबोध द्वात्रिंशिका' है । इसमें ३२ अनुष्टुप् छन्द हैं । इस लघुकाय स्तोत्र में, छोटे-छोटे श्लोकों में बड़े ही सरल शब्दों में भाव ही रोचक ढंग से आचार्य जिनप्रभ ने 'परमतत्त्व' का विशद विवेचन किया है । जैनधर्म की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह व्यावहारिक है । इसी व्यावहारिकता ने उसे मनोविज्ञान व विज्ञानसम्मत बना दिया है । नैतिकता पर जैनधर्म में सबसे अधिक बल दिया गया है । नीति और व्यवहार के अद्भुत मिश्रण के साथ उच्चकोटि के दार्शनिक विवेचन को हम इस स्तोत्र के अन्दर पाते हैं । परमसुख की प्राप्ति के लिए इस स्तोत्र के ३२ श्लोक

जैसे ३२ चिन्तामणि मौक्तिक हैं जिनके चिन्तन का फल अमोघ व सद्यः साध्य है। प्रथम श्लोक देखिए—

धर्माधर्मान्तरं मत्वा, जीवाजीवादितत्त्ववित्।
ज्ञास्यति त्वं यदात्मानं, तदा ते परमं सुखम्॥

इन सीधे सादे श्लोकों में चाणक्य के सूत्रों की तरह का महान् ज्ञान भरा हुआ है। बिहारी के दोहों की तरह ये भी नाविक के तीर से उपमेय है जो छोटे दीखने पर भी हृदय में गंभीर घाव कर जाते हैं। आगे के २ श्लोक देखिए—

यदा हिंसां परित्यज्य कृपालुस्त्वं भविष्यसि।
मैत्र्यादिभावना-भव्यस्तदा ते परमं सुखम्॥
न भाषसे मृषा भाषा विश्वविश्वासघातिनीम्।
सत्यं वक्ष्यसि सौहित्यं तदा ते परमं सुखम्॥

अर्थात् जब हिंसा को छोड़ कर के कृपालु बन जाओगे, मैत्रीभावना बढ़ा कर भव्य बन जाओगे, विश्वविश्वासघातिनी झूठ न बोलोगे और सुन्दर हितकारिणी सत्य वाणी बोलोगे तभी परम सुख की प्राप्ति होगी।

जैन समाज की भाषागत प्रसिद्ध प्रार्थना 'बारहभावना' के अन्तर्गत इस प्रकार के भावों के लिए ही तो आकांक्षा प्रकट की गई है। गीता की समत्वभावना भी स्तोत्र में प्राप्य है—

स्वरे श्रव्ये च वीणादौ खरोष्ट्रीणां च दुःश्रवे।
यदा सममनोवृत्तिस्तदा ते परमं सुखम्॥
इष्टेऽनिष्टे यदा दृष्टे वस्तुनि न्यस्तशस्तधीः।
प्रीत्यप्रीतिविमुक्तोऽसि तदा ते परमं सुखम्॥
घ्राणदेशमनुप्राप्ते यदा गन्धे शुभाशुभे।
रागद्वेषौ न चेत्तत्र तदा ते परमं सुखम्॥
यदा मनोज्ञमाहारं यद्वा तस्य विलक्षणम्।
समासाद्य द्वयोः साम्यं तदा ते परमं सुखम्॥

सुखदु:खात्मके स्पर्शे समायाते समो यदा।
भविष्यसि भवाभावी तदा ते परमं सुखम् ॥

गीता व स्तोत्र के इस श्लोक में कितनी समता है देखिए—

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

गीता—२/५८

तथा—

अंगोपांगानि संकोच्य कूर्मवत्संवृतेन्द्रियः।
यदा त्वं कायगुप्तोऽसि तदा ते परमं सुखम् ॥

और भी देखिए—

यदामित्रेऽथवा मित्रे स्तुति निन्दां विधातरि।
समानं मानसं तत्र तदा ते परमं सुखम् ॥
लाभालाभे सुखे दुःखे जीविते मरणे तथा।
औदासीन्यम् यदा ते स्यात्तदा ते परमं सुखम् ॥
यदा यास्यसि निष्कर्मा साधुधर्मधुरीणताम्।
निर्वाणपथसंलीनस्तदा ते परमं सुखम् ॥

यहाँ तो गीता की नैष्कर्म्य-भावना और भी स्पष्ट हो जाती है। स्पष्ट है कि स्तोत्र रचना करते समय आचार्य जिनप्रभ गीता से प्रभावित हुए थे। या यों कहना अधिक संगत होगा कि जिस तरह तुलसीदास ने रामायण में 'नानापुराणनिगमागमसम्मत' ज्ञान भर दिया, जिनप्रभ ने भी अनेक दार्शनिक व धार्मिक ग्रंथों का व्यावहारिक ज्ञान प्रस्तुत स्तोत्र में समन्वित रूप में उपस्थित कर दिया। स्पष्ट है कि सदाचार व उत्तम भावनाओं के लिए विशेष धर्म का बन्धन नहीं है। ये सभी स्थानों पर समान रूप से मिल सकती हैं। महामुनि याज्ञवल्क्य ने धर्म की यथेष्ट परिभाषा देने पर भी सन्तोष न होने पर इतना कह दिया है और यहीं परम ज्ञान है कि—

एषः तु परमो धर्मः यद्योगेनात्मदर्शनम् ।

'अर्थात् योग द्वारा सर्वत्र आत्मदर्शन ही परमधर्म है।' कुछ ऐसी ही बात जिनप्रभ ने भी अन्तिम श्लोक में कहकर विरति ग्रहण की है—

आत्मपद्मवनं ज्ञान-भानुना बोध्य लप्स्यसे ।
यदा जिनप्रभां वर्या तदा ते परमं सुखम् ॥

अर्थात् जब आत्मारूपी पद्मवन को ज्ञानभानु की प्रभा से आलोकित कर श्रेष्ठ जिनप्रभा को प्राप्त कर लोगे तभी परमसुख की प्राप्ति होगी। यह जिनप्रभा की प्राप्ति सर्वत्र आत्मदर्शन का दिव्यज्ञान—दिव्य दृष्टिकोण ही है।

निश्चय ही प्रस्तुत स्तोत्र जिनप्रभाचार्य के स्तोत्र साहित्य में भावों की दृष्टि से सबसे गंभीर और महान् सन्देश से ओतप्रोत है। भाषागत चमत्कार प्रदर्शन करने में ही जिनप्रभ सिद्धहस्त नहीं थे वरन् मौलिक, समन्वित व संयत विचार देने में भी उन्हें कृपण नहीं कहा जा सकता। यह बात इस स्तोत्र को देख कर समझी जा सकती है। यह स्तोत्र साधारण व्यक्ति के लिए भी बोधगम्य है।

वाणीवन्दना

जिनप्रभाचार्य के प्राप्य स्तोत्रों का परिचय दो अन्य स्तोत्रों के बिना अधूरा ही रह जायगा। ये स्तोत्र केवल स्तोत्र की दृष्टि से ही महत्त्वपूर्ण नहीं हैं वरन् ये रचयिता के विचारौदार्य को भी प्रकट करते हैं। दोनों में वाग्देवी सरस्वती की वन्दना अत्यन्त भावप्रवण हृदय से की गई है। इनमें एक छोटे स्तोत्र का नाम 'सरस्वत्यष्टक' है। जिसमें ९ रथोद्धता छन्द प्रयुक्त हुए हैं। कहीं-कहीं यमक और अनुप्रास की छटा भी मिलती है परन्तु रचयिता की दृष्टि चमत्कार की ओर कदापि नहीं रही; भावों की सहज-मधुर सरणि ही उसमें विद्यमान है। स्तोत्र का प्रारंभ प्रणवमंत्र (ॐ) से होता है—

ॐ नमस्त्रिदशवन्दितक्रमे
सर्वविद्वज्जनपद्मभृंगिके ।
बुद्धिमान्द्यकदलीदलीक्रिया
शस्त्रि तुभ्यमधिदेवते गिराम् ॥

भारती की महिमा के कुछ श्लोक देखिए—

दत्तह्लीन्दुकमलश्रियो मुखं
यैरलोकि तव देवि सादरम् ।
ते विविक्तकवितानिकेतनं
के न भारति भवन्ति भूतले ॥
श्रीन्द्रमुख्य विबुधार्चितक्रमां
ये श्रयन्ति भवतीं तरीमिव ।
ते जगज्जननि जाड्यवारिधिं
निस्तरन्ति तरसा रसा स्पृशः ॥

तथा—

विश्वविश्वभुवनैकदीपिके
नैपुणी मुषितमोहविप्लवे ।
भक्तिनिर्भरकवीन्द्रवन्दिते
तुभ्यमस्तु गीर्देवते नमः ॥

यह अष्टक सरस्वती के 'ॐ ह्रीं श्रीं' बीजनिमित मंत्र से गर्भित है। स्वयं जिनप्रभ ने अन्तिम श्लोक में इसे स्पष्ट किया है—

उदारसारस्वतमंत्रगर्भितम्
जिनप्रभाचार्यकृतं पठन्ति ये ।
वाग्देवतायाः स्फुटमेतदष्टकं
स्फुरन्ति तेषां मधुरोज्ज्वला गिरः ॥

वाग्देवी सरस्वती की वन्दना करते समय जिनप्रभ उतने ही प्रसन्न व भावप्रवण दिखाई पड़ते हैं जितने ऋषभदेव या अन्य किसी तीर्थंकर की

स्तुति करते समय। इनके दूसरे स्तोत्र का नाम 'शारदास्तव' है। इसमें १२ उपजाति व १ वसन्ततिलका छन्द प्रयुक्त हुए हैं इसमें केवल प्रणति निवेदन ही नहीं है शब्द चमत्कार भी उसी मात्रा में प्रस्तुत हैं। विषम संख्या के छन्दों के दूसरे चरण की चौथे चरण में आवृत्ति की गई है। इसका प्रारंभिक श्लोक यह है—

वाग्देवते भक्तिमता स्वशक्ति-
कलापवित्रासितविग्रहे मे।
बोधं विशुद्धं भवतो विधत्तां
कलापवित्रासितविग्रहा मे॥

इसी तरह सम संख्या के छन्दों में प्रथम चरण की आवृत्ति तृतीय चरण में हुई है। दूसरा श्लोक देखिये—

अंकप्रवीणाकल हंसपत्रा-
कृतस्मरेणानमतां निहन्तुम्।
अंकप्रवीणा कलहंसपत्रा
सरस्वती शश्वदपोहताद्वः॥

यमक के चमत्कार ने इस श्लोक से भाव को किस तरह प्रभावप्रेपणीय बना दिया है—

सितांशुका ते नयनाभिरामां
मूर्तिं समाराध्य भवेन्मनुष्यः।
सितांशुकांति नयनाभिरामां-
धकारसूर्यः क्षितिपावतंसः॥

अन्तिम श्लोक में भक्तहृदय की प्रणतिपुरस्सर श्रद्धांजलि देखिये, जिसमे कवि ने अपना नाम को गुम्फित किया है—

मल्लूप्तस्तुतिनिविड़भवितजडस्वप्रकृतै-
र्गुम्फैगिरामिति गिरामधिदेवता मा।
यालोऽनुकम्प्य इति रोपयनु प्रसाद-
स्मेरां दृशं मयि जिनप्रभसूरिवर्य्या॥

इस प्रकार इन सभी प्राप्य स्तोत्रों का संक्षिप्त परिचय व सामान्य विशेषताओं का उल्लेख करने के बाद सारे स्तोत्र-साहित्य पर समष्टि रूप से विचार कर लेना असंगत न होगा।

जिनप्रभ-स्तोत्र-साहित्य की सामान्य विशेषताएँ

भक्ति, विनय व औदार्य

जिनप्रभसूरि के सारे स्तोत्र धार्मिक गीतिकाव्य की महती सम्पत्ति हैं। वे मुक्तक हैं इस लिए उनके भावपक्ष पर विचार करते समय उनके स्तोत्रों में *व्यंजित भक्ति, विनय तथा औदार्य* पर सर्व प्रथम हमारा ध्यान जाता है। जैन-धर्म एक व्यावहारिक-धर्म है और भक्ति स्वयं धर्म का सबसे अधिक व्यावहारिक पहलू है। विगत दो सहस्राब्दियों में उठे हुए भक्ति के विभिन्न आन्दोलनों ने इस पहलू को प्रभूत विकसित बना दिया है। विष्णु के विभिन्न अवतारों व विग्रहों की कल्पना, नवधा विभक्तीकरण, प्रत्येक प्रकार की भक्ति की अनेक भूमिकाएँ आदि देखकर उसके विकसित स्वरूप का अनुमान लगाया जा सकता है।

इन भक्ति सम्बन्धी आन्दोलनों ने जैन धर्म पर भी प्रभाव डाला। श्रद्धाप्रधान होने से भक्ति जैन-धर्म के अनुकूल थी और प्रत्येक जैन व्यावहारिक दृष्टि से साधक होने पर भी भक्त प्रथम था। हाँ, सभी तीर्थंकर जिन थे। अतएव सभी जैनसाधक उस अवस्था की प्राप्ति के प्रयत्न में उनके सेवक थे। इसलिए जैनधर्म में दास्य-भक्ति ही प्रमुख रही। सख्य भक्ति को उसमें किसी भी प्रकार का कोई स्थान नहीं। हाँ श्रवण, कीर्तन, स्मरण, भजन, पूजन, वन्दन व आत्मनिवेदन का दास्यभक्ति से कोई विरोध नहीं है इसलिए इनको भी उतना ही महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

भक्ति के उपजीव्य जैनधर्म के अनुसार केवल चौबीस तीर्थंकर ही नहीं हैं। उनके जीवन से सम्बन्धित द्रव्य व तीर्थस्थान भी भक्ति के उपजीव्य रहे हैं। इसलिए जैनधर्मानुयायी स्त्री-पुरुष तीर्थों व द्रव्यों को भी

तीर्थङ्करों के साथ स्तुति करते हैं। आचार्य जिनप्रभसूरि ने भी इन सभी के लिए स्तोत्र लिखे।

जैनधर्म में भक्ति नवधा के स्थान पर षडधा मानी गई है। भक्ति की परिभाषा देखिए—

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम्।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्गुणलब्धये ॥

अर्थात् मोक्षमार्ग के नेता (हितोपदेशी), कर्मरूपी पर्वतों का भेदन करने वाले (वीतराग) और विश्व के तत्त्वों को जानने वाले (सर्वज्ञ) आप्त (अर्हंत) की भक्ति, उन्हीं के गुणों को पाने के लिए करता हूँ।

स्पष्ट है कि विशिष्ट गुणवालों (अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु) के गुणों में अनुराग करके उनका सान्निध्य प्राप्त करने की क्रिया ही भक्ति है। जो जैनधर्म के अनुसार ६ प्रकार की मानी जा सकती है—

१. नामभक्ति—नाम व गुणों का स्मरण।
२. स्थापना भक्ति—मूर्तियों का स्थापन, पूजन व दर्शन।
३. द्रव्य भक्ति—अरिहंत तथा सिद्धपुरुष के स्वरूप का चिन्तन।
४. भावभक्ति—अरिहंत तथा सिद्ध भावों का विचार करना।
५. क्षेत्रभक्ति—तीर्थस्थानों के सहारे वहाँ जन्म व निर्वाण प्राप्त करने वाले महान् पुरुषों का स्मरण।
६. कालभक्ति—जिन कालों में महान् पुरुषों ने जन्म, तप ज्ञान व निर्वाण प्राप्त किया उनके सहारे उन महान् पुरुषों के स्मरण द्वारा भक्ति।

यदि भक्ति के उक्त प्रकारों को ध्यान में रखकर आचार्य जिनप्रभ के स्तोत्र साहित्य का विहगावलोकन किया जाय तो पता चलता है कि आचार्य ने इन सभी दृष्टिकोणों से भावविभोर होकर अपने इष्टदेव के प्रति प्रणति निवेदन की है।

केवल काल (समय) को लेकर आचार्य ने 'कालचक्रकुलकम्'

नामक स्तोत्र लिखा है। उनके विभिन्न तीर्थमालास्तव तथा किसी विशिष्ट तीर्थस्थल के नाम से संलग्न तीर्थङ्कर सम्बन्धी स्तोत्र क्षेत्र-भक्ति के अच्छे उदाहरण हैं। अरिहंत व सिद्ध भावों का दर्शन उनके दार्शनिक स्तोत्रों में होता है जो भावभक्ति के उदाहरण हैं। 'परमतत्त्वावबोधद्वात्रिंशिका' इस प्रकार के स्तोत्रों का चूड़ामणि कहा जा सकता है। द्रव्यभक्ति के उदाहरण तीर्थंकरों के विग्रहों का चित्रोपम वर्णन करने वाले स्तोत्र बन सकते हैं। नाम और स्थापन भक्ति के उदाहरण तो सभी बन सकते हैं। यहीं नहीं जिनप्रभ ने अपने गुरु को भी बड़े ही प्रणत भाव से श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है जो नामभक्ति के उदाहरण के रूप में उपस्थित की जा सकती है।

विनय और भक्ति का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। इष्टदेव अथवा महान् पुरुष की महत्ता और अपनी लघुता विनय को जन्म देती है। विनय के अभाव में कोई भक्त भक्त नहीं रह सकता। आचार्य ने अपने सभी स्तोत्रों में विनयशीलता का अच्छा परिचय दिया है। कहीं-कहीं तो वे इतने भाव विह्वल हो जाते हैं कि उनके स्तोत्रों का पाठ करने वाले साधक के नेत्र आर्द्र और कण्ठ वाष्परुद्ध गद्‌गद हो जाते हैं। तुलसी का विनय दीनता मिश्रित है किन्तु आचार्य जिनप्रभ के विनय में एक सिद्धिपथ के पथिक की विनम्र-दृढ़ता व अथक विश्वास के दर्शन होते हैं। सभी स्तोत्रों में आचार्य आत्मविश्वासी रहे हैं और उनकी ज्ञान-गरिमा तो सर्वत्र झलकती ही है।

आचार्य जिनप्रभ मोहम्मद तुगलक के संपर्क में आये थे और उनके पास सुदीर्घ काल तक रहे भी थे अतएव उनमें धार्मिक उदारता होनी ही चाहिए। केवल शारदा स्तवन मात्र से ही उनकी यह उदारता प्रकट नहीं होती, फारसी जैसी विदेशी भाषा को स्तोत्र रचना के लिए अपना कर भी उन्होंने अपनी उदारता की पुष्टि की है। ऐसी साम्प्रदायिकता उदारता नियमित ही बहुत ऊँची वस्तु है और आचार्य जैसे निस्पृह, सर्वस्व-त्यागी में ही मिल सकती है।

भाषा

आचार्य जिनप्रभ अनेक भाषाओं के पण्डित थे। संस्कृत, समसंस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, पैशाची, फारसी आदि अनेक भाषाओं में उन्होंने अपने भावप्रसून इष्टदेव को समर्पित किए हैं और सभी पर उनका असाधारण अधिकार प्रकट होता है। अनुप्रास, यमक, श्लेषादि शब्दालंकारों से उनकी भाषागत सामर्थ्य झलकती है। प्रासाद व माधुर्य गुणयुक्त प्रांजल पदावली के दर्शन सर्वत्र होते हैं। भाव-प्रवणता के कारण उसमें ओज व सहज-गाम्भीर्य का प्रवेश हो गया है। प्रवाह कहीं टूटने नही पाता।

षड्भाषा-गर्भित व अष्टभाषा गर्भित स्तोत्र उनके साधिकार-भाषा-प्रयोग के उदाहरण हैं। कातंत्रसंधिसूत्रगर्भित, षड्ऋतुगर्भित, उपसर्गहर-स्तोत्र पादपूर्तिमय, विविधछन्दोनामगर्भित, लक्षण-प्रयोगमय आदि अनेक स्तोत्र अर्थगाम्भीर्य को पुष्टि करते हैं। चित्रकाव्यमय स्तोत्र में यही बात और भी सफलतापूर्वक देखी जा सकती है। इतना अवश्य है कि इन प्रयोगों के उपरान्त भी भाषा बोधगम्य बनी रहती है।

यही नहीं, उनकी भाषा में गंभीर से गंभीर दार्शनिक भावों को सरलतम ढंग से व्यक्त करने की क्षमता भी विद्यमान है। इसी तरह की शक्ति, प्रवाह, गम्भीरता व विशदता संस्कृतेतर भाषाओं के प्रयोग में भी समान रूप से मिलती है।

शैली

स्तोत्र ललित-साहित्य की एक-विधा है। साथ ही वे मुक्तक-काव्य होने से पूर्वापर सम्बन्धनिरपेक्ष सहज रसपेशल भी होते हैं। उनमें किसी तरह का कथा प्रवाह नहीं होता। हाँ, भावों का प्रवाह उतना ही अनिवार्य है। आचार्य ने अपने स्तोत्रों को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए सार्थक शब्दों का प्रयोग किया है। इसी तरह छन्द प्रयोग भी भावगुरुता की दृष्टि से हुआ है। छोटे अनुष्टुप् या आर्याछन्द से लेकर बड़े-बड़े दण्डक छन्दों

का प्रयोग भी जिनप्रभ ने किया है। वह योग्यता-प्रदर्शन मात्र के लिए न होकर भावाभिव्यक्ति के सौकर्य्य के कारण ही हुआ है। आचार्य को अपने इस उद्देश्य में अतीव सफलता मिली है। कहीं-कहीं चमत्कारों के कारण भावग्रहण में कठिनाई अवश्य होती है। फिर भी आधिक्य को प्रमाण मान कर उनकी शैली को प्रसन्नगम्भीर कहा जा सकता है जिसमें कहीं-कहीं सहजप्रसन्नता कुछ क्षणों के लिए विलुप्त प्राय सी देखी जा सकती है। प्रसंग व भावानुभूतियों की सघनता पर केन्द्रित कहीं माधुर्य की, कहीं प्रसाद की और कहीं ओज की छटा देखने को मिलती है। सरलता, स्वच्छता व परिवर्तनशीलता उनकी शैली की विशेषता है।

वर्णन वैचित्र्य : विविध प्रयोग

जैनाचार्यों को कभी चमत्कार प्रदर्शन का लोभ नहीं रहा। कहा जाता है कि राजा भोज ने एक बार मयूरभट्ट के 'सूर्यशतक' और बाणभट्ट के 'चण्डीशतक' के भावनिधि पर मुग्ध होकर उसकी प्रशंसा करते हुए जैनाचार्य मानतुंग से भी इस प्रकार का चमत्कार-प्रदर्शन करने के लिए कहा। आचार्यजी ने केवल आत्मा के परम चमत्कार को ही सर्वोत्तम बताकर प्रदर्शन से इन्कार कर दिया। कहते हैं कि राजा भोज ने आचार्य को बंदीघर में बन्द करके ४८ ताले लगवा दिये और आचार्य ने 'भक्तामर स्तोत्र' की रचना करके बन्दीगृह से मुक्ति पाई। कदाचित् उक्त घटना को जिनप्रभ ने ध्यान में रखा और भाषा व भावसम्बन्धी सबसे अधिक प्रयोग करके पाठकों के लिए आश्चर्य की स्थायी सम्पत्ति छोड़ गए।

आचार्य जी के स्तोत्रों में पद-पद पर भाषा तथा भाव सम्बन्धी चमत्कारों के दर्शन होते हैं। उनके कोई स्तोत्र यमक, श्लेष, अनुप्रासादि से ओत प्रोत हैं तो किसी अन्य रचना को गुम्फित देखा जा सकता है। यमक प्रयोग भी अनेक प्रकार से हुआ है—कहीं एक चरण को दूसरे में दोहराया गया है तो कहीं चारों चरण एक ही हैं। शब्द-यमक से तो कदाचित् किसी स्तोत्र का कोई स्थल अछूता न होगा। एक स्तोत्र में

कातंत्र व्याकरण का संधिसूत्र गुम्फित है तो दूसरा उपसर्गहर स्तोत्र की पादपूर्ति से युक्त है, एक अन्य पंचकल्याणकमय है, तो दूसरा लक्षण प्रयोग-मय है। एक षड्ऋतु-वर्णनमय है तो अन्य नवग्रहगर्भित है। क्रियागुप्त रचना तो एक नितान्त अद्भुत प्रयोग है। अनेक भाषाओं का एक साथ प्रयोग तो है ही। हीयाली यद्यपि अपूर्ण प्राप्त है फिर भी इतना पता चल जाता है कि इसमें अनेक प्रहेलिकाएँ हैं। कहो आगमों के नाम स्तोत्रों में गुम्फित हैं तो किसी में आगम-सिद्धान्तों का उल्लेख है। कहीं छन्दों के नाम भी स्तोत्रों में आये हैं तो अन्य अनेक स्थानों पर आचार्य ने अपना नाम ही अनेक प्रकार के कलात्मक ढंगों से गुम्फित किया है। छोटे-से छोटे व बड़े से बड़े छन्दों का प्रयोग भी कम चमत्कार जनक नहीं है। राजा भोज इन विविध प्रकार के चमत्कारों को देखा होता तो उसका गुणग्राही मन विभोर हुए बिना न रहता।

प्राप्य स्तोत्रों के आधार पर कुछ चमत्कारों का नामोल्लेख मात्र यहाँ किया गया है। यदि ७०० स्तोत्रों की रचना करने की बात सत्य हो, तो पता नहीं लुप्त या अप्राप्य स्तोत्रों में कितने चमत्कार भरे पड़े होंगे। जो हो, प्राप्य स्तोत्रों व उनकी विशेषताओं के आधार पर ही हम आचार्य जिनप्रभ की प्रतिभा के प्रति नत होने को बाध्य हैं।

चित्र काव्य

प्राप्य स्तोत्रों में एक स्तोत्र चित्रकाव्यमय भी है। यद्यपि चित्रकाव्य को काव्यालोचकों ने अधमकोटि का काव्य कहा है; किन्तु फिर भी इतना मानना पड़ेगा ही कि बिना भाषा पर असाधारण अधिकार प्राप्त किए कोई भी कवि चित्रकाव्य की सृष्टि नहीं कर सकता। आचार्य जिनप्रभ ने अपने 'वीरजिनस्तव' में इस प्रकार का प्रयोग किया है और वे इसमें सफल भी हुए हैं। इस कार्य में उनकी सफलता को देख कर यह सोचने के बाध्य होना पड़ता है कि इस प्रकार के प्रयोग के बिना कदाचित् उनके

स्तोत्र-साहित्य का एक अंग विच्छिन्न रह जाता। चित्रकाव्य की रचना करने से अधिक सफलता उन्हें उसी क्रम से स्तोत्र में अपना नाम गुम्फित करने में भी मिली है।

उपसंहार

जिनप्रभाचार्य की इन विशेषताओं पर विचार करने के बाद हम निस्सन्देह कह सकते हैं कि न केवल जैन साहित्यकारों में वरन् भारतीय स्तोत्र-साहित्य में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। सफल भाषा प्रयोग, उच्च-कोटि के भावों का उद्भावन, अनुभूति की सघनता, विविधचमत्कारिक प्रयोग किसी भी दृष्टि से देखा जाय उनका स्थान अपने सहयोगी जैन-साहित्यकारों में शीर्ष-कोटि का है। उनके सम्पूर्ण स्तोत्र प्राप्त होने पर निश्चय ही वे उत्तरकालीन साहित्य की परम्पराओं के उद्भावक व अनेक शृंखलाओं को जोड़ने वाली कड़ी के रूप में निरउल्लेखनीय गौरव के अधिकारी समझे जायेंगे। हम निस्सन्देह उन जरामरण भयरहित सम-सिद्धकवीश्वर के समक्ष श्रद्धानत हैं।

माघ शुक्ल पूर्णिमा : २०१७
३१-१-६१ : कोटा

●

जिनप्रभसूरि गुणवर्णन छप्पय

—:o:—

तिन्नि वार सुलितानु जासु पुच्छवि हक्कारइ,
निय करि कर संगहइ अप्प सरखइ बइसारइ।
अतीत अनागत वर्तमान पूछै जं भावइ,
हसि हसि उत्तर देइ सुगुरु रायहं रंजावइ।
असपत्ति राउ दिल्ली तणउ, जसु एवडु आयरु करइ।
भट्टारक सूरि जिणप्पह हं सूरि न को सरभरि करइ ॥ १ ॥

रयणपाल निम्मल-विसाल-कुलि-कमल-दिवायर,
हीर-खीर-डिंडीर-विमल-गुणमणि-रयणायर।
तिहुयण-जण-लोयण-चकोर-उल्हासण-ससहर,
विसम-विषय-जाला-कराल-दावानल-जलहर।
खेतल्लएवि-वर कुक्खिसर, रायहंस सुंदर चरिय।
सुव सरिसु जिणपहसूरि गुर, गछि गछि नहु आचरिय ॥ २ ॥

तां तित्तउ तडफडइ जाम सिच्चाणु पयट्टइ,
तां कुरंगु मयमंतु जाम चित्तउ संघट्टइ।
मयंगलु तामउ करइ जाम नवि केहरु पिक्खइ,
तां पव्वय उत्तुंगु जाम गिरि मेरु न पिक्खइ।
पंडियहं ताम गव्वु वहइं जां जिनप्रभ न वसि पडइं।
यहु सत्य हरिय अवहत्थियह वा अगल हीसउं झडइं ॥ ३ ॥
को जग्गावइ काल-सप्पु सुत्तउ निद्दहं भरि,
कवण होइ दप्पिट्ठ, पिट्ठ अग्गेसरि केसरि।

पउमावइ-देविय पत्तवर, तुव नरित्त कित्तिय भणउं ।
सिरि सूरि जिणप्पह अगण गुण, इक्क जीह किम करि थुणउं ॥ ८ ॥

सरसइ-कंठाभरण पवर वाइय-गय-संकल,
विज्जा-सत्तागार वाइगय-अंकुस निम्मल ।
मयल वाइ-गय-गंधहत्थि वाइय विड्डारण,
जिणसासण-वण-सिंह वाइ-गय-घड-पंचाणण ।
हम्मीर वीर वंदिय चलण, मिच्छरज्जि अक्खलिय-पसर ।
जिणपह-मुणिंद इत्तिय विरुद, तुव छज्जइ पर हत्थु घर ॥ ९ ॥

लोह न कंचण सरिस मेरु सम अवर न भूघरु,
गरुड सरिस न हुँ पंखि इंद सम अवरि न निज्जरु ।
रवि सम इयर न गयरु न मणि चिंतामणि संनिह,
कप्परुक्ख सम सरिस इयर न हु दीसइ भूरुह ।
जिणसिंघसूरि सीसप्पवर, भुवब्भुय गुण उक्करिस ।
सिरि सूरि जिणप्पहसूरि तलि, सूरि न दीसइ तुव सरिस ॥१०॥

अंब निंब अंतरउ जेम अंतरु बक हंसहं,
जक्ख घणह अंतरउ जेम नारायण कंसहं ।
चिंतामणि पाहणहं जेम अंतरु ससि तारहं,
रयणायर सरवरहं रंक अंतरु जिम रायहं ।
इयरे वि सूरि चाउद्दिसिहिं, सीह सरस जिम अंतरउ ।
भट्टारक सूरि जिणप्पह हे, न ल्हवइउ पट्टंतरउं ॥११॥

—अपूर्ण—

[श्री साराभाई नवाब संग्रह, वि० सं० १५५८ राजसुंदर लिखित गुटके के आधार से साभार उद्धृत]

छप्पय क्रमांक ५ एवं ६ प्रक्षिप्त मालूम होते हैं ।

जिनप्रभसूरि पट्ट पद–

जुग्गिनि पुरि विस्तरउ सयल संसारिहि जाणिउ।
सुगुरु सूरि जिनप्रभु माहि बुलाइ समाणिउ।
पूछइ सुंदालम्मं सुणि निरूं वातहू म्हारी।
इसि देवहि यथा शक्ति, दूनी पूजइ विसतारी
त च साहि महमद (को) पीउ चडि पोसालइं आवियउ।
पद्मावति समरि जिनप्रभुसूरि, श्री महावीर बोलावीउ॥१॥
शक्ति करइ सुलतान, दुनी आलम ए का (य) म।
इह गालि कु विशयासह सः,ऐक दीम दादम।
हाजतिअ-वहु भयइ, जिके तुम्ह माझन भाविइं।
पुज्जइ मनि थरि स्वामि, मन वांछित फल पावइं।
तिहां मोरू मल्लिका इमरा, सडा आगन किसिहि सवोउं।
श्री महावीर अतिसय कीउ, जिन शासनि दश चडाईउं॥२॥
काजी नर मुस इम कुटिल्ल जमि तें हुवरारियां।
तुम्ह हु रोग गइद दुनी, ए जम विसधारियां।
इहू जिन तानी सास नेक मनि थरं दोरं।
तालिक अवाक रात जिमिइं अडइने पो दोरं।
. तब साहि महमद प्रउदम् जइ गुराइ न हु डर करउं।
अति यास मेलि काजी, मुग्गा दंडि मोलिपर पारो कराउं॥३॥

इति पट्ट पद समाप्त
(१६ वीं शती, गुटका विनयसागरजी संग्रह)

•

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१७	प्रभावगा	पमावगा
	२२	साहित्कारों	साहित्यकारों
२	१४	अत्याश्यक	अत्यावश्यक
२	२४	विद्वता	विद्वत्ता
६	११	असन्तुष्ठ	असन्तुष्ट
११	११	वनई	वनाई
१२	६	प्रवल	प्रवल
	९	है।	हैं।
	१५	अम्मोहर	अम्भोहर
१४	२	चायोत्कट	चापोत्कट
१५	३	फरडो हट्टी	करडी हट्टी
१६	१५	बहुश्चुत	बहुश्रुत
	२६	६२००	६२०००
१७	७	अनुत्तरोपपातिक०	अनुत्तरोपपातिक
	१६	सेठी नदी	सेढी नदी
१८	२	आगामों	आगमों
	१८	है।	हैं।
	२०	हो गये ।	हो गये थे ।
१९	१७	चित्रकूटीय वीरचैत्य प्रशास्त	चित्रकूटीय वीरचैत्य प्रशस्ति
	१७	भवारिवारण स्तोत्र	भावारिवारण स्तोत्र
	२५	स्वप्नसवृत्तिका	स्वप्नसप्ततिका
२०	३	हुम्ब	हुम्बड

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२०	४	शुक्ल १	शुक्ला १
२०	१०	यह	×
	१६	विक्रमपुग	विक्रमपुर
	२२	मन्नवादी	मन्त्रवादी
२१	२२	सर्वाधिष्टात्री	सर्वाधिष्टायी
२२	५	आध्यात्मगीतानि	अध्यात्मगीतानि
	११	मादी	भाद्रपद
	१९	गच्छनामक	गच्छनायक
२३	५	भादों	भाद्रपद
	६	मालप्रदेश	मालप्रदेश
२४	२	निजपतिसूरि	जिनपतिसूरि
	३	प्रतिमा	प्रतिभा
	२४	पृ० २५३४	पृ० २५ से ३४
२५	४	वृहद्वार	बृहद्वार में
	५	ने किया	ने शास्त्रार्थ किया।
	१३	प्रतिमा	प्रतिभा
२६	३	दों	द्वितीया
२६	४	वीरप्रभा	वीरप्रभ
	५	आषाठ	आषाढ़
	६	वृहद्वार	बृहद्वार
	११	सर्वदेवसूरि नामकरण किया गया।	सर्वदेवसूरि ने जिनपतिसूरि की आज्ञानुसार इनको आचार्य-पद प्रदान कर जिनेश्वरसूरि नामकरण किया।
२६	१९	[illegible]	[illegible]
२७	२	[illegible]	[illegible]

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२७	१८	गलितकोटकपुर	गलितकोटकपूर,
	२०	के	का
	२१	पंचशती	पंचशती में
२८	२	सेतलदेवी	खेतलदेवी
	१०	द्वितीय आचार्य जिनेश्वरसूरि	आचार्य जिनेश्वरसूरि (द्वितीय)
	१८	रमणपाल	रयणपाल
	२०	ख० पट्टावली ३० पांच पुत्र में तृतीय नंबर	ख० पट्टावली ३ के अनुसार पाँच पुत्रों में से तीसरे।
	२३	पंच	पंचशती
	२४	बल्लभभारती	बल्लभभारती
३०	४	यह	×
	७	मूलगच्छा	मूलगच्छ
	८	जिनचन्द्रसूरि	जिनसिंहसूरि
३१	१	प्रभावती	पद्मावती
	२५	मोहिलवाणी	मोहिलवाडी
३२	२६	पंच	पंचशती
३३	१६	१४१८	१३१८
	१९	१३४७	१३४१
३४	९	प्राप्त का	प्राप्ति का।
	१३	अष्टभापाम	अष्टभापामय
	१३	'निरवधिरुचिर ज्ञानमय,	'निरवधिरुचिरज्ञानं'
	१६	नन्दाप्तोरुविशुद्धयोग'	नन्दाप्तोरुविशुद्धयोग-
	१७	शास्त्तं	शास्त्तं
	१९	दन्ताज्ञानरमां	रन्ता ज्ञानरमां
३५	१२	ग्रन्थों का निर्माण किया।	ग्रन्थों का किया।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	१८	वित्तपवनं	वित्तवपनं
	१९	समाजस्तु ताथ	समाजस्तुतान्
४३	४	पुराश्रीजिनप्रभसूरिभिः	पुरः श्रीजिनप्रभसूरिभिः
	४	पुरसारं	पुरस्सरं
	७	चित्रद्धान्दो	चित्रच्छन्दो
	१३	तपोरमतकुट्टनशतं	तपोटमतकुट्टनशतं
	१७	२९ वीं	२० वी
	२०	समुदाय पिप्ट	समुदाय की दृष्टि
४४-४,६		गुच्छाग्रह	गच्छाग्रह
	८	रुद्रपल्ल	रुद्रपल्ली
	१५	सोमसुंदर	सोमतिलक
४५	१	प्रतिरोध	प्रतिबोध
४६	१०	आचार्य ह्री ने	आचार्यश्री ने
	११	रखकर	रचकर
	२५	जिनदेवसूरि	जिनदेवसूरि[1]
४७	९	की	के
	२२	रजित	रचित
	२३	अमरनाम	अपरनाम
४८	६	(युगप्रवरागम जिनपति सूरि के चाचा)	युगप्रवरागम जिनपतिसूरि के चाचा,
	७	सङ्पेप	सङ्घे
	९	याणप्ट	याणाप्ट.
	१५	वियमपुर	विक्रमपुर
	१८	उपरयुक्त	उपर्युक्त
	१९	कन्यानयनवर्त मान कालानूर	कन्यानयन वर्तमान कालानूर

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६०	२२	पृपत्कं विपयां कंमिते[१२]	पृपत्कं विपयांकंमिते[१२]
	२४	यात्रोत्सवोपतत:	यात्रोत्सवोपनत
६१	२०	प्रभावती देवी	पद्मावती देवी
६४	२	यह	×
६५	१	मुहम्मदशाह	महम्मदशाह
	१	सत्कार	सत्कृत
	२	राघवचैतन्य	राघवचैतन्य
	५	भी	ही
	८	प्रभावती	पद्मावती
	२३	शार्क भरीश्वर	शाकम्भरीश्वर
	२४	द्विजागुणी	द्विजाग्रणी
	२६	टशे	हशे
६६	१७	कर्तव्य	आश्चर्य
६९	१९	बिया	दिया
७१	२०	दें	वांछित दें
७३	२४	वैठ	बैठ
७४	५	देने का	देने को
	१२	नागरिकों	नागरिकों ने
	२६	करे ।	करें ।
७६	६	१७४	? १३७४
	७	लेरसमए	तेरससमए
७७	१	तथा	तपा
७८	३	जिनप्रभ	जिनप्रभ ने
	२४	शिलोञ्छा	शिलोञ्छ
७९	१	कर्म	कई
	८	वाचनार्य	वाचनाचार्य

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९२	१३	सिरिजणवल्लह-	सिरिजिणवल्लह
	१७	पसाया ओं	पसायाओं
	१९	ससिसूरपई वा	ससिसूरपईवा
९३	७	पच्चवखाणठाइं	पच्चवखाणठाणाइं
	९	सुवहुविट्ठाणेसु	सुवहुविहाणेसु
९४	३	पद्पदकाव्यटीका	षट्पदकाव्य टीका
	९	समर्पिता	समर्थिता
	१४	श्रीजिनप्रभसूरीकृत	श्रीजिनप्रभसूरिकृत
	१५	भापाकाव्यावचूरी:	भापाकाव्यावचूरि:
९५	४	सुगता हि सेवा-	सुगतांह्लिसेवा-
	६	विधा	विधाय
	२६	समर्पितः	समर्थितः
९६	१	अश्वानवोधतीर्थकल्प	अश्वाववोधतीर्थकल्प
	१२	चतुरशीतिमहातीर्थ-नामङ्ग्रहकल्प,	चतुरशीतिमहातीर्थनामसंग्रहकल्प
	१६	मृदुविगदयदा-	मृदुविशदपदा-
	१८,२१,	जिणपट्टसूरीहिं	जिणप्पहसूरीहिं
	२०	पूसवक्कवारसीए	पूसवकवारसीए
	२३	चिट्ठमिय-	जिट्ठसिय-
	२४	नशधरहृपोकाक्षि-	दाशधरहृपोकाक्षि-
	२७	रितिविरचयां चक्रु:	रिति विरचयांचक्रु:
९७	२	आमरकुण्ड-	अमरकुण्ड-
	१०	पुपत्कविपयिकिमिते	पुपत्कविषयार्कमिते
	११	यात्रोत्सवो-	यात्रोत्सवो-
	११	जिनप्रमोस्य	जिनप्रमाह्यः

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११२	१८	कथादत्तकोप	कथारत्नकोप
	२१	ह० ५६२	ह० ५६२
	२५	लालक	लालचंद
११३	९	८ गाथा, ११	८ गाथा, पृष्ठ ११
	१०	गा० ९।१५	९ गाथा, पृष्ठ १५,
	११	गा० ५ १०३	५ गाथा, पृष्ठ १०३
	१२	गा० ६ १०३	६ गाथा, पृष्ठ १०३
११४	३	प्रतिष्ठाविधान	प्रतिष्ठाविधान का
११७	९	वर्धमानविधकल्प	वर्धमानविद्याकल्प
	२०	वर्धमानविधाकल्प	वर्धमानविद्याकल्प
११८	८	में गायत्री आचार्य	में आचार्य
१२०	१९	'संदेह 'विपौपधि'	'सदेहविपौपधि'
१२१	११	१२६४	१३६४
१२३	११	तात्त्वज्ञ	तत्त्वज्ञ
	२५	इसमें	इनमें
१२४	११	चतुर्विंशति	चतुर्विंशति
	१५		
१२५	९	सपहृयोदय:	सप्तहृयोदय:
	१०	नवमांमल	नयमांमल
	१९	भवनाथनिमानन	भनाथनिमानन
	२४	के	को
१२६	९	रतिर्जयिनं	रतिपतेर्जयिनं
	१९	वंधनंधा:	वन्द्य नन्द्या:
	२२	अष्टम छन्द	२८ वाँ छन्द
१२७	१८	यस्मादघोत्ये-'	यस्मादघोत्ये-
	२४	प्रणम्यादिजिन	प्रणम्यादिजिनं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	२३	दूयभानः	दूयमानः
१३७	४	सेव्यांऽह्निशा	सेव्यांऽह्रिम्
१३८	१५	तमकसिणसप्परवयमो	तमकसिणसप्पखयमो
	१८	तुहश्चस्ति	तुहशुस्ति–
	२२	रंतूणहितयके	रंतूणहितपके
१३९	२	कुमुदमकथनिदानं	कुमुदमकयनिदानं
	१३	नन्दाप्तोरुविशुद्धयोग–	नन्दाप्तोरुविशुद्धयोग–
	१५	सिद्धरमणी	सिद्धिरमणी
१४०	१०	न ह्य	नह्य
	१५	जिणयहसूरीहि	जिणपहसूरीहि
१४२	१९	माघव	माघ
१४३	१	स्तवों	स्तव
	८	गतदनवगम	गलदनवगम
	१२	लसदवम्	लसदवम
	१५	व्यहृत	व्यवहृत
	२५	त्ववद्यमुक्तनेमे	त्वमवद्यमुक्तनेमे
१४४	२१	श्रीजिनसूरिभिः	श्रीजिनप्रभसूरिभिः
१४५	१	देवैर्य	देवैर्यः
	४	कृताविद्यो परमा	कृताविद्योपरमा
	१२	चविड चंदाणणाय	चविउं चंदाणणाए
	१५	पद्य हैं।	पद्य हैं।
	१८	जगज्जनलोचनं भृङ्ग सरोज	जगज्जनलोचनभृङ्गसरोज
१४६	७	सेविनपदे	सेवियपदे
	१३	नमने	नमते
	२५	हारिहास–	हारिहार–

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१५७	१०	पयपंकय भुसलि	पयपंकयभसलि
	१७	पप्पूरि	कप्पूरि
१५८	८	कोडाकोडोइं	कोडाकोडोउं
	१०	,छट्ठी	छट्ठो
	१६	जिणपहसूराहिं	जिणपहसूरीहिं
१५९	२०	वन्दनकतिक्रमण	वन्दनकप्रतिक्रमण
१६०	११	कुर्याज्जिन	कुर्याज्जिन
१६०	१३	स्पृहयती	स्पृहयति
१६२	५	प्रतोष्ठिता	प्रतिष्ठिता
	१७	स्पष्ट	स्पष्ट
१६४	२	पद्मभूंगिके	पद्मभृंगिके
	२४	मधुरोज्जला	मधुरोज्ज्वला
१६५	७	विग्रह	विग्रहा
	१६	श्लोक से	श्लोक के
	२६	नाम की	नाम भी
१६७	११	सान्निच्य	सान्निध्य
१७०	१७	४६	४४
	२३	किसी अन्य	किसी में किसी अन्य
१७१	२०	कौ	को
	२५	के वाच्य	के लिये वाच्य
१७२	१	विच्छिन्न	अपूर्ण

नोट—पृष्ठ ७९ पंक्ति ८ वाचनाचार्य चारित्रवर्द्धन शीर्षक से लेकर पृष्ठ ८८ पंक्ति १३ तक का अंश पृष्ठ ८९ पंक्ति ११ पर पढ़ें।

१२. ,,	तत्त्वानि तत्वानि भूतेषु	२८ प्रकरणरत्नाकर भा० ४
१३. ,,	प्रणम्यादिजिनं प्राणी	२८ ,, ,,
१४. ,,	जितर्षभप्रीणितभव्य-	८ ,, ,,
१५. ,,	नतसुरेन्द्रजिनेन्द्रयुगादि-	९ पञ्चप्रतिक्रमण सूत्र (वीरपुत्र) ।
१६. पुंडरीकगिरिमण्डन ऋषभ-स्तव-कातन्त्र सन्धिसूत्रगर्भित	सिद्धो वर्णसमाम्नायः	२३ प्रकरण रत्नाकर भा० ३; जैन स्तोत्र संदोह भा० २ में निर्नाम ।
१७. युगादिदेवस्तव (८भाषा)	निरवधिरुचिरज्ञानं	४० प्रकरणरत्नाकर भा० २,
१८. ,,	अस्तु श्री नाभिभूर्देवो	११ ,, भा० ४; जैन स्तोत्र समुच्चय ।
१९. ,,	अल्लाल्लाहि सुराहे	११ जैन स्तोत्र समुच्चय, जैन साहित्य संशोधक खंड ३. अंक १.
२०. ऋषभदेवागमस्तव	नयगमभंगपहाणा	११ जैन स्तोत्र संदोह भा० १
२१. अजितजिनस्तव	विश्वेश्वरं मथितमन्मथ-	२१ जैन स्तोत्र समुच्चय; चतुर्विंशति जिनानन्द स्तुति-मेरुविजयकृत ।
२२. चन्द्रप्रभजिनस्तव (षड्भाषा)	नमो महसेननरेन्द्रतनूज	१३ प्रकरणरत्नाकर भा० ४
२३. ,,	दैर्घ्यस्तुष्टुवे तुष्टैः	४ ,, ,,
२४. शान्तिजिनस्तव	श्रीशान्तिनाथो भगवान्	२० ,, ,,
२५. अरजिनस्तव	जय शरदशकलशहय.	१४ ,, ,,

४२. ,,	श्रीवर्द्धमानः सुखवृद्धये	९	,, ,,
४३. वीर निर्वाणकल्याणक स्तव	श्रीसिद्धार्थनरेन्द्रवंश	१९	,, ,, काव्यमाला गुच्छक ७,
४४. वीरजिनस्तव (५ कल्याणकमय)	पराक्रमेणेव पराजितोयं	३६	,, ,,
४५. ,,	श्रीवर्द्धमानपरिपूरित	१३	,, ,,
४६. तीर्थयात्रास्तव	गिरिसत्तु जयतित्थे	९	विधिमार्गप्रपा
४७. मथुरायात्रा स्तोत्र	सुराचलश्रीजिति	१०	,,
४८. मथुरा स्तूप स्तुति	श्रीदेवनिर्मितस्तूप	४	,,
४९. स्तुति त्रोटक	नियजम्मु सफलु	५	,,
५०. ,,	ते धन्न पुत्र सुकयत्थतरा	४	,,
५१. गौतमस्तव	श्रीमन्तं मगधेषु	२१	प्रकरण रत्नाकर भा० ४; काव्यमाला गुच्छक ७,
५२. ,,	जम्मपवित्तियसिरि	२५	जैन स्तोत्र संदोह भा० १,
५३. गौतमाष्टक	ॐ नमस्त्रिजगन्नेतुः	९	,, ,,
५४. जिनसिंहसूरिस्तव	प्रभुः प्रदद्यान्मुनिप	१३	प्रकरण रत्नाकर भा० ४,
५५. सिद्धान्तागमस्तव	नत्वा गुरुभ्यः श्रुतदेवतायै	४५	काव्यमाला गुच्छक ७,
५६. शारदा स्तव	ॐ नमस्त्रिदशवन्दितक्रमे	९	जैन स्तोत्र संदोह भा० २,
५७. ,,	वाग्देवते भक्तिमतां	१३	प्रकरण रत्नाकर भा० ४,
५८. पद्मावती चतुष्पदिका	जिणसासणु अवधारि	३७	भैरव पद्मावतीकल्प (नवाब)
५९. वर्द्धमान विद्यास्तव	आसि किल दुत्तरमय	१७	वर्द्धमानविद्याकल्प
६०. चतुर्विंशति जिनस्तव	आनन्दसुन्दर	२९	जैनस्तोत्र समुच्चय में निर्नामिक
६१. वीरजिनस्तव चित्रमय	विश्वश्रीविधुरच्छिदे	२१	जैन स्तोत्र समुच्चय

जैनप्रभीय अप्रकाशित स्तोत्र

क्रमांक	नाम	आदि पद	पद्यसंख्या
१.	मंगलाष्टक	जिनमार्गदीप्ता	८
२.	पञ्चपरमेष्ठिस्तव	परमेष्ठिनः सुरतम-	७
३.	द्वित्रिपञ्चकल्याणकस्तव	पद्मप्रभ प्रभोर्जन्म	२५
४.	युगादिदेवस्तव	मेरौ दुग्धपयोधि	११
५.	चन्द्रप्रभचरित	चंदप्पहु-चंदप्पहु	२२
६.	शान्तिनाथाष्टक (पारसीभाषा)	अजि तुदु काडु सुनुवि	८
७.	पार्श्वजिनस्तव	श्रीपार्श्वः श्रेयसे भूयाद्	४४
८.	,, (फलवर्द्धि)	श्रयामन्दश्रीफलवर्द्धि पार्श्वं	२१
९.	,, ,,	श्रीफलवर्द्धि पार्श्वं	९
१०.	,, (षड्ऋतु वर्णन)	अरामणीय जओ	७
११.	,, (उवसग्गहर-स्तोत्र पादपूर्ति)	पणमिय सुरनरपूइया	२२
१२.	तीर्थमालास्तव	पवरसंति जिणिंदे	१२
१३.	विज्ञप्ति	गिरिर्यानरादेशाद्धिहिदेव	१५
१४.	सुधर्मस्वामी स्तोत्र	आगमश्रियमाद्विमस्य	३१
१५.	४५ आगमगर्भित आगमस्तव	गिरिकोदारिणं सुरगिरोद्धरं	११
१६.	परमसुखसम्बोधद्वात्रिंशिका	धर्मधर्मान्तर चक्रा	१२
१७.	कालचक्रकुलक	अवसर्पिणी उत्सर्पिणि	१४
१८.	होयाली	अपुण्ण अपुण्ण ण	४

परिशिष्ट: जिनप्रभसूरिपरम्परागीत (जिनप्रभसूरिगीत, जिनदेवसूरिगीत)

(१) मङ्गलाष्टकम्

जितभावद्विषां सर्वविदा तत्त्वार्थदर्शिनाम् ।
त्रैलोक्यमहितांह्रीणामर्हतांमस्तु मङ्गलम् ॥ १ ॥
कृत्स्नकर्मक्षयावाप्तमुक्तिसाम्राज्यसम्पदाम् ।
गुणाष्टकैश्वर्ययुषां सिद्धानामस्तु मङ्गलम् ॥ २ ॥
पञ्चाचारसमृद्धानां सुतजीवातुवेदिनाम् ।
भवच्छिदामाचार्याणां श्रीमतामस्तु मङ्गलम् ॥ ३ ॥
वाचकानां जिनवचः-पीयूषरसतृष्णजः ।
भव्यान् सूक्तिसुधावर्षैः प्रीणतामस्तु मङ्गलम् ॥ ४ ॥
साधूनां सिद्धिसम्बन्धी-लीलालालसचेतसाम् ।
सम्यग्ज्ञानक्रियावद्धो-द्यमनोमस्तु मङ्गलम् ॥ ५ ॥
जिनागमगजेन्द्रस्य स्याद्वादकरशालिनः ।
रहस्योत्सर्गदन्ताभ्यां शोभितस्यास्तु मङ्गलम् ॥ ६ ॥
कुतीर्थिमत्तेभहरेः पूजितस्यार्हतामपि ।
चतुर्विधस्यानघस्य श्रीसंघस्यास्तु मङ्गलम् ॥ ७ ॥
मङ्गलस्तोत्रमंगल्य प्रदीपस्यास्य दानतः ।
येऽर्च्चयन्ति जिनान् भक्त्या ते स्युः प्राप्तजिनप्रभाः ॥ ८ ॥

इति मङ्गलाष्टकम् ।

[अभयसिंह ज्ञान भंडार पो. १६. गु. २१८ पृ. २२३]

•

(२) पञ्चपरमेष्ठिस्तवः

परमेष्ठिनः सुरतरु-निवं नुतविदितत्रिविष्टपावरयान् ।
पञ्चापि सदा प्रयान् सुमनः प्रियसौरभान् सफलमुक्तोन् ॥ १ ॥

श्रेयांसप्रतिलम्भितैर्गजपुरे पीयूषपूरोपमै-
श्चोक्षैरिक्षुरसैर्भरेण भरिते नाथ त्वदीयाञ्जलौ।
चण्डांशुःप्रतिविम्बितः करतलं प्राप्तः प्रभो केवला-
लोकः पारणयोद्धृते वपुषि ते द्योतिस्म सोसूच्यते ॥ ७ ॥

यत् सर्वं महतां महद्व्रच इदं सत्यापयन् वत्सरं
मानः संज्वलनोऽपि वाहुबलिनः पक्षायुरप्यस्फुरत्।
तत्रास्कन्ददमूढलक्षतरता सार्वज्ञभाजस्तवो-
पेक्षापारमितैव हेतुपदवी कालादिसाचिव्यभाक् ॥ ८ ॥

आषाढे त्रिदिवादभूदवतरस्तिथ्यां चतुर्थ्यां शिता-
वष्टम्यां बहुले मधोस्तव जनुर्दीक्षा क्षणौ जज्ञतुः।
कृष्णे फाल्गुनिकस्य तीर्थपतियावेकादशे केवलं
देवैभिस्तु पवित्रतां नवमहैर्नीता विनीतापुरी ॥ ९ ॥

पूर्वाह्णे तपसस्त्रयोदशतिथौ शितयां नगेऽष्टापदे
प्रायैः षड्भिरभीचिभे व्रतभृतां पंक्त्या सहस्रैः समम्।
पर्यङ्कासनि तस्थिवानुपगतस्त्वं पूर्वलक्षा चतु-
र्युक्ताशीतिमितायुरव्ययपुरश्रीभर्तृभावं विभो ॥१०॥

जित्वा या लवणोदधि निजवपुर्लावण्यलक्ष्मीभरै-
र्ज्योतिर्ज्योतिभुजाचतुष्टयचतुश्चक्रोपदेशेन या।
तस्माद्दण्डपदेऽग्रहीद्ग्रहपुपानुच्चैश्चतुः संख्यकान्
सा त्वद्भक्तिकृतो भनक्ति विपदां चक्राणि चक्रेश्वरी ॥११॥

मामेकाक्ष मुदाहरन्ति मुनयः कस्मादितीव क्रुधा
रक्तं लोलतरालितारमुदयच्चक्षुःसहस्रं नृणाम्।
रक्ताशोकतरुः प्रसूननिकरव्याजेन संदर्शया-
मास व्याहरतो वृषं हतनतारिष्टोपरिष्टात्तव ॥१२॥

नाहारस्तव संस्कृतोऽजनि गुणैरप्यूपुषो मन्दिरं
व्याहारस्तु सुसंस्कृतोऽजनि गुणैर्गेहे यतिस्वेऽपि च।

दीप्राक्षीयितनिश्चयव्यवहृतिर्भाति क्रियाज्ञप्तिस-
दंष्ट्राढ्यो नयकेसरप्रसरवान् स्याद्वादपुच्छच्छटः।
प्रोद्यद्युक्तिनखः कुतीर्थिकरिणां जैत्रः स्फुरद्देशना-
जिह्वः सूरिमतिस्थलीषु विचरन् सिद्धान्तसिंहस्तव ॥२०॥

दिव्यालङ्कृतिभूषितं द्युपतिना क्लृप्ताभिषेकोत्सवं
त्वां वीक्ष्योद्गतविस्मयैर्मिथुनकैर्न्यस्तानि हस्तद्वये।
पादावेव तवासिचन् पुटकिनी पत्राणि वा पूरिता-
न्याकारैश्चयजपङ्कजभ्रमभुवः सा जात्यरागादिव ॥२१॥

यद्राज्यं भरतेश्वराय ददुषो मह्यं तु निर्ग्रन्थतां
तुष्टिस्ते ननु वल्लभोऽस्मि तव तन्मन्ये सुतादप्यहम्।
सारं वस्तु विभुः प्रियाय हि दिशेद्राज्यं स्वसारं यत-
स्तत्त्यक्त्वा तृणवद्भवानचकल नैर्ग्रन्थ्यमेव स्वयम् ॥२२॥

सान्द्रामोदविलासवासितदिगाभोगा नभोगामिभि-
र्मुक्तासुस्मितपुष्पवृष्टिरपतद्व्याख्यानभूमौ तव।
त्वत्संत्रासजुषः प्रसूनधनुषः सस्तेव हस्तोदरात्
प्रासूनीशरसंहतिस्त्रिभुवनं चक्रे यया प्राग्वशम् ॥२३॥

वाच्यावाच्यसदृग्विरूपसदसन्नित्यक्षयित्वात्मकं
सद्द्रव्यास्तिक-पर्ययास्तिकनयस्याद्वादमुद्राङ्कितम्।
विश्वं वस्तुनयप्रमाणघटयोत्पादव्ययध्रौव्ययुक्
त्वं ब्रूषे स्म सता यथा कुनयिभिः स्वप्नेऽपि नाप्तं तथा ॥२४॥

यद्भानुर्दिनमात्रदीप्तिकलिता नक्तंदिवंद्योतिना
स्पर्द्धां बन्धमयं व्यधत्त भगवन् सार्द्धं प्रतापेन ते।
गुप्तं गुप्तिगृहे न्यपारि विबुधैर्भास्वन्मणीकुट्टिम-
व्याख्योर्वीप्रतिबिम्बकैतवधरस्तेनागसा मन्महे ॥२५॥

त्वामुच्चैरनमाननक्रमकरं शौर्याश्रयं मत्सर-
त्यक्तं सज्जनदत्तरङ्गमुदयन्मुक्तालयश्रीजुषम्।

सुधीजनश्रोत्रसुधासुगन्धः शार्दूलविक्रीडितवृत्तबन्धः ।
सतामयं भावरिपुद्विपेषु शार्दूलविक्रीडितमातनोतु ॥३३॥
इति श्रीयुगादिदेवस्तवनं श्रीजिनप्रभसूरिविरचितम् ॥
[अभय जैन ग्रन्थालय ९५२१ पृ० १ ले० प्र० "सं० १४८६ वर्षे"]

०

(५) चन्द्रप्रभ-चरित्रम्

चंदप्पह ! चंदप्पह !, पणमिय चरणारविंदजुयलं ते ।
भविय सवणामयपवं भणामि तुह चेव चरियलवं ॥ १ ॥
धायइसंडे दीवे अहेसि तं मंगलावईविजए ।
मुणिरयण ! रयणसंचयपुरम्मि सिरिपउमनरनाहो ॥ २ ॥
सुगुरुजुगंधरपासे निक्खमिउ चिणिय तित्थयरनामं ।
तुममुप्पन्नो पुन्ननिहि ! वेजयंते विमाणम्मि ॥ ३ ॥
तत्तो इह भरहद्धे चविउं चंदाणणाइ नयरीए ।
महसेनराय-पणयिणि-लक्खणदेवीइ कुच्छिंसि ॥ ४ ॥
चित्तासियपंचमि निसि तं चउदससुमिणसूइओ नाह ! ।
अवयरिओ तिन्नाणी सयलिंदनिवेइयववयारो ॥ ५ ॥
पोसासियबारसि निसि विच्छियरासिंमि सामि ! सोमंको ।
कासवगुत्ते जाओ तं सारयससहरच्छाओ ॥ ६ ॥
छप्पन्नदिसाकुमारी-चउसट्ठिसुरिंदविहियसक्कारो ।
उज्जोइय-भुवणयलो तुह जम्ममहो य सक्कउहो ॥ ७ ॥
जणणी पइ गब्भगए अकासि जं चंदपाणदोहलयं ।
चंदप्पहु त्ति तं तुह विक्खायं तिहुयणे नामं ॥ ८ ॥
सड्ढधणुसयपमाणो अड्ढाइय पुव्वलक्खकुमरत्तं ।
सड्ढे छपुव्वलक्खे चउवीसंगे य रज्जसिरिं ॥ ९ ॥
परिवालिय लोयंतिय-विबोहिओ वरिसकयमहादाणो ।
सिबिया मणोरमाए सहस्संबवणम्मि छट्ठेणं ॥१०॥

(६) पारसी भाषा चित्रकेण

शान्तिनाथाष्टकम्

[१]

अजि कुद काफु जुनूवि शहरि हथिणापुरगोवनि
वजिपातसाहि विससेणु खिम्मिति ओ राया जेवनि
कौम्यो ऐरादेवि तविहि सीतारा मानइ
जुजि यकि सूहरि पास दिगरि हिम पियरा दानइ
आं दिगरि रोजि पुफलसि पुसे दर निगार रवानै निपो
छारिदह चाविअह संदिवइ आपरि सो विनइ हमो ।

[२]

नेकिस्पे नरगाउ पीलि दरियाउ निशाना
वा नरगिसि पुरु होदु कुम्कु उजुलू सदियाना
शमस कमर पुरु सुबो दिगरि मोंहरिसा तूदा
कसरि अजनितिफमारिष्टिगां सेरि आतसि हर्पसिदा
गह सुबुहु सुदा वेदार सुदु, रल्फु गुल्फु वरिसूइ यो
माविनी ख्वाव दीदौमि सो चि सवइ योदिहु काम गो ।

[३]

पातसाहि विससेणु पेसि अइरादिवि गोयइ
पिसरि तु हमची मवइ मुलुकि दुनिए उर जेउइ
विस्ती दो चो चिनी कवो पुसि गुदु दिलि पासा
दमलु नेकि परवरइ निको सीरति मे यासइ
पू हल्फु रोजि मुह माहु मुदु, दाव दुपास दरि पुल्कि गह
यिहुतरी वल्कि तालिहि निको, पिसरि जादु उ हम चु मह ॥

[४]

दरं सहरि मक्कूर रास्सि शादी इवि कवदनि
कुव्वा जाइ पि जाइ ववल नुह्व गाना विजनि
मीर मुकद्दम साहि दरां शादीहरिवयामा
पातसाहि विससेणि दादु हमगा रा जामा
द्वाज्द हमि रोजि सुदु नामि उर, संतिनायु ष्यामदि महं,
वुजुरुकु सुदे मिस्तो तप्ति, मुलुकु विरानइ दरिजहा।

[५]

गोहरि पाक दुहलकु गंजि नुह्व जरि पेरा वा
फंदलि कुननि फेरिप्टिगा शांजूदह जारि हमा वा
सस्तुष्यरि हज्जारि कोमि दरि हमि निकोतरि
लम्व हप्टादु छहारि पीलि व अस्पि व अस्तरि
शशिनवदु क्रोडि दिहहा मिही कियाणि पयादा हम चुनी
यवलाति सी उदु हजारि मो राया पि हम व हम दुनी ॥

[६]

रोजि दिगरि दानिस्तु मेसि हिचि दरी जमाना
हरि चि ईमाति नुमाद अवियक शाति न माना
सदका दादा गिरिल्फुजरों दीनार न मुकरा
यफ कुरोहि लम्प हप्टि दिहइ हररोजि मदरे
से सदु व हप्टि हप्टा कुरोडि हप्टा लश यकि शालि दादु
ई चुनी मुलुकि दोलति विनी, तरफि गिरिल्फा शेप मुदु ॥

[७]

हल्पु तवक आममा जमी हर हल्कु मुनोवारी
चीनद हमचु परागु हपि दरि दुर्गा मुनोवरि
मे दाने दरि गैवि हमा मुश्किल हम शिदुनं
रहनुमाई गुमरहा वमह पजगारी विजनद

ई चुनी सक्लित आपरि उमरि दरि सवावि सालहा सुदु
अल उमरि चूकि पि तमामि मुदु, भिष्टि रल्फु एमिना सुदु ।

[८]

नामि तुव्वामदि संतिनाह हरि कि से कि गोयदु
हमा चीजि उर सवइ फुल्लुइव्वुनो वुगोयदु
अजि सेवस्तां गहिल कुंउ पंज्या उ सलामति
खाना विरसादारि पि हम इज्जति जरि दौलति
मिजुम्लै गुनहा वकसिमे बुकुं रहमलुरुफु ईं कदरि
अजि अदावि दुनीए निगहदारि, मरा भिष्टि वरियो बुवरि ।

[९]

अजि तेरीप मुहम्मद सन खमस व तिसईन सित्त मिय ।
फितिरोदो शशिमिसरा कउदांमु दौलती वामी ॥
इति पारसीभाषा चित्रकेण श्रीशान्तिनाथाष्टकम् ।

[अभय सिंह ज्ञान भंडार, पो. १६ ग्र. २१८. पृ. १४३-१४२. ले. १६ वी]

०

(७) पार्श्वस्तवः

श्रीपार्श्वः श्रेयसे भूयादलितालसमानरुक् ।
अनन्ता संसृतिर्येन दलिताऽलसमानरुक् ॥ १ ॥
अज्ञा न मे दुरध्वान्तकारिणस्त्वद्गुणानलम् ।
अज्ञानमेदुरध्वान्त-मानोऽभिष्टोतुमीश गीः ॥ २ ॥
तथापि नुन्नोन्तर्भक्तिरंहसा महितायते ।
गुणलेशं स्तवीम्युच्चैरंहसामहिताय ते ॥ ३ ॥
अपारे कामरागेण भ्रान्तोस्मि भववारिधौ ।
अपारेका मरागेण दर्शनेन विना तव ॥ ४ ॥

प्राप्येदानीं दर्शनं ते नरामरसभाजनम् ।
स्पृहयामि प्रभो राज्यं न रामरसभाजनम् ॥ ५ ॥
नेच्छा च मेऽप्सरोलोकं सकाममनसं प्रति ।
रुचये मुक्तिकान्तापि सका मम न साम्प्रति ॥ ६ ॥
पुण्योदयादक्षमया मुक्त त्वद्दर्शने सति ।
पुण्यो दयादक्ष मयास्वात्मायं परिनिश्चतः ॥ ७ ॥
जिनास्यसारसंसार किं नेदानी वराक रे ।
जिनास्यसारसं सार-मद्य यद्दीक्षतं मया ॥ ८ ॥
धन्यास्ते प्रणतास्तुभ्यं यासवाप्र्मेयशक्तये ।
यातुं जगत् सर्वगुणा-धास धामेय शक्त ये ॥ ९ ॥
कल्याणगिरिधीरे मे त्वयि चेत् परमेश्वर ।
कल्याणगिरि धी रेमे करस्थाः सर्वसम्पदः ॥ १० ॥
तवाङ्गे लीनदृष्टिल्या-दूरीकृततमालभे ।
जीवन्मुक्तिदशां कर्हिदूरीकृततमा लभे ॥ ११ ॥
कमलायतनेत्राभि-रक्ष्व्यमनसस्तव ।
कमलायतनेऽप्राऽभिरमेतां मद्दृशौ मुखे ॥ १२ ॥
दृष्टे तवमुखे प्रीत्या रजनीश्वरकोमले ।
न निर्वाणपदे स्यात्नु-रजनीश्वर कोऽमले ॥ १३ ॥
अशोभं गंभीरहितं तवागम्य वचः प्रभो ।
अशोऽभंगं भीरहितं निष्कर्मा लभते पदम् ॥१४॥
पीत्वा यशोऽमृतं तेऽत्तकलि कामधुगहितम् ।
मेने जनैः स्वर्गतरोः कलिकामधुगर्हितम् ॥१५॥
क्रमतामरसद्वन्द्वसेवने तव सादरम् ।
क्रमतामरसद्वन्द्व मामकीनं मनः सदा ॥१६॥
भिवस्तवागमो दद्यात् वितता नयगोमितः ।
यस्तवैवं विशेषरसाद् वितान यशोऽमितः ॥१७॥

अलं ते पदराजीवाऽभ्यर्चनैकरताः प्रभो ।
अलंते पदरा जीवा मुक्तिदुर्गस्वयं ग्रहे ॥१८॥
वशीचक्रे भवान् मुक्तिमहिलां छित्तविग्रह ।
स्वैगुणैस्त्रातराकालमहिलाञ्छित्तविग्रह ॥१९॥
सदानमस्तपापाय गत्या जितवते गजम् ।
सदानमस्तपापायमेघश्यामाङ्गकाय ते ॥२०॥
यस्त्वामेकाग्रधीः स्तौति देवपद्मावतीनतम् ।
इष्टार्थलाभैरऽचिरादेव पद्मा वतीन तम् ॥२१॥
सदानं दंतिना मोघमाप्य चाद्वीयमुत्र के ।
सदा नन्दंति नाऽमोघ त्वद्भक्तिकृतनिश्चयाः ॥२२॥
ये नम्रास्त्वयि वन्द्यार्मदनागविराज ते ।
तेषां च रूपर्द्धिरतिमदना गवि राजते ॥२३॥
अहीनेन सदारेण सेव्यमान कृपानिधे ।
अहीनेन सदा रेण दूनं पाह्यांतरेण— ॥२४॥
हित्वां तरारीस्त्वदाज्ञाविद्यास्मरणभूपिताः ।
जयलक्ष्मीं वयं नाथ विद्यास्म रणभूपिताः ॥२५॥
नमो हराजेनब्रह्मशक्रादीनपि जिष्णुना ।
न मोहराजेन ब्रह्मयोनमे विजिताय ते ॥२६॥
यः स्यात् त्वत्पादपद्मार्चारुचिरंजितमानगः ।
सर्वत्र लभते सौख्यं रुचिरं जितमान सः ॥२७॥
सर्वकपायमोहेलापतये द्रुह्यतस्तव ।
सर्वं कपायमो हेलाप्रामराद्रूपमं वचः ॥२८॥
सरस्वती पातु तवोपदेशामृतपूरिता ।
यत्प्रभावाज्जनैर्मुक्तिपदेशाभृतपूरिता ॥२९॥
कामदे हतमोहेऽलिनीलवर्णे नतास्त्वयि ।
कामदेह तमोहेलितुल्ये नाऽस्तुवते श्रियम् ॥३०॥

स्वर्गयति यशो विश्वप्रकाशं ते मरीचयः।
यस्याग्रे नैव शीतांशोः प्रकाशन्ते मरीचयः ॥३१॥
दर्पकोपरताऽऽयासच्छिदे मुनिगणाय ते।
दर्पकोपरतायास स्पृहयालुर्नकः खलु ॥३२॥
कल्याणानां पंचतयं मुद्यत्कुवलयद्यु ते।
कस्य न प्रीतये जातमुद्यत्कुवलयद्युते ॥३३॥
कमलाक्ष तपस्त्यागश्रीभुजंग जिनेश्वर।
कमलाक्षतपस्त्या गस्तिमिरार्कपुनीहि माम् ॥३४॥
त्वदाननं जगन्नेत्रमुदारामघनोदकम्।
निर्मिमीतां मम प्रीतिमुदारामघनोदकम् ॥३५॥
यैस्त्वं क्षतो मनः कृत्वा प्रमदाभोगभागिनः।
भवेयुर्दिवि ते दिव्यप्रमदाभोगभागिनः ॥३६॥
नाथ वाऽरितमोहंस मुक्तशर्मापि दुर्लभम्।
नाथ वारितमोहंसत्तेपामकलुषात्मनाम् ॥३७॥
युग्मम्
आनन्दतो यदच्छाय जन्तुजातं ननाम ते।
आनन्द तोयदच्छाय मुक्तिर्थीस्तत्र रागिताम् ॥३८॥
येन त्वदागमः स्वामिन् स्याद्वादेनोपराजितः।
निर्णीतः स कुतीर्थ्यानां स्याद् वादे नो पराजितः ॥३९॥
स्मरामि नस्यते भव्यसमूहायाऽभयप्रदम्।
स्मरा मित्रस्य ते भव्यधियो धाम पदद्वयम् ॥४०॥
भव्यहृत्वशिणां धारक्षणदानाय काननम्।
त्वां पर्युपासते धन्याः दानदानायकाननम् ॥४१॥
जननभ्रमनाधीर भीयामेव भवे भवे।
जननभ्र मना धीर नृपाः स्वामी त्वमेव मे ॥४२॥
त्वद्गुणस्तुतिरंऽभोदशान्ते मगकहारिणी।
भव्यानवतु विश्रामं कान्तैयमहारिणी ॥४३॥

इति प्रभो ते स्तवनं पठन्ति ये मुक्तिश्रियः प्रेत्य लुठन्ति ते हृदि ।
जिन प्रभा चार्श्रमभाति शायिनी जागर्ति तेषामिह पण्डितव्रजेः ॥४४॥

इति श्रीपार्श्वनाथ स्तवनम् ॥
[अभय जैन ग्रन्थालय ९५२६ प० १. ले० १६वीं शुद्धतम]

०

(८) फलवर्द्धिपार्श्वस्तवः

जयामल श्रीफलवर्द्धिपार्श्व पार्श्वस्थनागेन्द्र पृथुप्रभाव ।
भावल्लरीचेष्टितदिग्वितान तानर्चयामः स्तुवतेऽत्र ये त्वाम् ॥ १ ॥
दूरस्थितोऽपि स्मृतिवर्त्मना त्व-मारोपितः सन्निहितत्वमुच्चैः ।
पिपर्षि चिन्तामणिवन्नराणां परः सहस्रा अभिलापभङ्गी ॥ २ ॥
दुरुत्सहम्लेच्छहृत प्रतापी कृतान्यतीर्थे कलुपैककोशे ।
कुतूहलोत्तालहृदस्त्ववैव कलौ कलामाकलयन्ति सन्तः ॥ ३ ॥
विस्फोटकश्लेष्मसमीरपित्त-लूताज्वरश्चित्रभगंदराद्याः ।
त्वद्ध्यानसिद्धौपधवृद्धबुद्धि न व्याधयो वाधितुमुत्सहन्ते ॥ ४ ॥
शुकच्छदाभैस्तव देहभासि—रालिङ्गिताङ्गीः प्रणता विभान्ति ।
संवीय वर्मा य समाहवो यो—द्धताः समं मोहमहीभुजे या ॥ ५ ॥
येऽनन्यसामान्यकृपाकृपाणी छिन्नातुरार्तिं स्पृहणीयमूर्तिम् ।
त्वां भूर्भुवः स्वस्त्रयगीतकीर्तिं सवासनोल्लासमुपासते न ॥ ६ ॥
सिंहोभ वैश्वानरवैरिवार दस्यूदकाशीविषजन्यजन्यैः ।
वैतालभूपालभवैश्च कश्चिन्न स्पृश्यते नान्यभयैः श्रियस्ताम् ॥ ७ ॥
त्वदाननेन्दुद्युतिसंप्रयोगाद् विवेकिनां लोचनचन्द्रकान्तौ ।
प्रमोदवाष्पोदकबिन्दुवृन्द—निष्यन्दभाजामुचितं भवेताम् ॥ ८ ॥
पश्यन्ति नश्यत् कलिकालखेलं निलिम्पलोकायितभूमिगोनम् ।
हर्षाश्रुवर्षामृतसिक्तगात्रा यात्रा महस्ते महनीयभाग्याः ॥ ९ ॥

सप्तोपरिष्टात्फणभृत्फणास्तैः ग्रतां प्रवेशप्रतिषेधनाय ।
एकाग्रपण्णां नरकावनीनां द्वारापिधाना इव भान्ति सज्जाः ॥१०॥
तवाङ्गरोचिर्जलदैः करांहिनखांशुशंपास्फुरितैः परीते ।
शचीशचापं रचयन्ति चित्राः फणामणीनां घृणयोऽन्तरिक्षे ॥११॥
तव क्षणं नोज्झति पादपद्मं पद्मावती तावदियं निरूढिः ।
तद्यस्य चित्ते वसति क्वचित्सा सान्निध्यमस्या तनुते न चित्रम् ॥१२॥
भव्याश्वमीक्ष्णं भवतः प्रभावं—श्चमत्कृतं यद्वत् ते शिरांसि ।
अमान्तमन्तः प्रमदं शरीरे गमायपन्ते तव वश्यमेते ॥१३॥
तवास्यपद्माङ्कुरतो निपीय निपीय लावण्यरसोतिलौल्यात् ।
भव्यात्मनां लोचनचञ्चरीकै-र्मुदमकदम्मादि न वम्यते न ॥१४॥
अहो मुखेन्दुस्तव कोऽपि दोषा निहन्ति यो यत्र विलोकिते च ।
पद्मानि कामं दधति प्रबोधं भवेन्न दीनोप्यपचीयमानः ॥१५॥
जयत्यपूर्वोभवदाननेन्दुरालोकमात्रेण जिनेश यस्य ।
भयाम्बुराशिः परिशोषमेति विकस्वरी स्यु-र्नयनाम्बुजानि ॥१६॥
तवापि माहात्म्यकलाविशेषाः केषांचिदुर्व्वंस्तरपातकानाम् ।
मनांसि नाथ व्यथयन्ति दन्ति-दन्तांशवांशुप्रकराः सुधांशोः ॥१७॥
घटाः करीणामिव सिंहनादात् प्रालेयपातादिव पङ्कजिन्यः ।
त्वद्ध्यानमात्रादपयान्ति पीडाः, प्रणेमुषां देहमनः समुत्थाः ॥१८॥
अशान्तिभाजामपि शान्तिशान्त-स्यापादमापादितनेत्र धैर्यम् ।
धैर्यं तवा.....तविमानमान-मानन्दयेत्कं न समेतमेतत् ॥१९॥
तवैव वैवस्वतशासनाति-क्रान्तस्य कान्तस्य विमुक्तलक्ष्म्याः ।
भवे भवेदास्पदं प्रपद्ये यथा तथा नाथ मयि प्रमोद ॥२०॥
इत्थं श्रीफलवर्द्धिपार्श्वविभुवने विश्वेन्दिरा नर्तकी
नाट्याचार्यजिनप्रभं अनणुभामीदेन सेव्यक्रम ।
श्रेयःश्रीपरिरम्भ संभवगुणव्यापातपञ्चोदयं
विश्लोर्णं विनिगृह्य महामुदयं विश्राणय श्रेयसाम् ॥२१॥

इति श्रीफलवर्द्धिपार्श्वनाथस्तोत्रं समाप्तम् ॥

[अभय सिंह ज्ञानभंडार पोथी ११ प्र० २१८ । प० १५९-१६०] •

(९) फलवर्धिपार्श्वजिनस्तवः

श्रीफलवर्द्धिपार्श्व-प्रभुमोंकारं समग्रसौख्यानाम् ।
त्रैलोक्याक्षरकीर्तिं लक्ष्मीबीजं स्तुवेऽर्हताम् ॥ १ ॥
नमिऊण तुह पयजुयं भत्तीए पासनाह जोइ नरो।
सिहणिज्ज संनिहाणो विसहरवसहस्स धरणस्स ॥ २ ॥
तुह उवरि जिण फुरंता फणिफणरयणिंकुराविरायंति ।
पाववणडहणपजलिरज्झणानलफुडफुलिंगुव्व ॥ ३ ॥
मायावीयं कम्मं खविउं पत्तस्स परमपयरज्जं ।
सिरिइंदविंदवंदिय अरहंत नमो नमो तुज्झ ॥ ४ ॥
इय मंतसरूओ तं जियचिंतारयणकप्पतरुदप्पो ।
हियपकुसेसेकोसे निवसंतो पूरसिमणिट्ठं ॥ ५ ॥
कलिकुंड-कुक्कडेसर, संसेसर-महुर-कासि-अहिछत्ता ।
थंभणय-अजाहर पवर नयर करहेड नागदहो ॥ ६ ॥
सेरीसअं-तरिक्खमिणिचारुप्पढिपुरी पमुहा ।
दिट्ठा तित्थविसेसा पइं पहु दिट्ठे गुणगरिट्ठे ॥ ७ ॥
तुह नामक्खरजावेण पडिहया जंति विलयमुवसग्गं ।
किं गरुडपक्खवाएण पियाऊसरांति फणी ॥ ८ ॥
विक्रमवर्षे करवसुशिखिकु १३८२ मिते माघवासितदशम्याम् ।
व्यधित जिनप्रभसूरिस्तवमिति फलवर्द्धिपार्श्वप्रभोः ॥ ९ ॥

इति श्रीफलवर्द्धिपार्श्वस्तवनं समाप्तम् ।

[अभयसिंह ज्ञान भंडार पोथी १६ प्र० २१८ पृ० २२१]

●

षड्ऋतुवर्णनागर्भित-
(१०) पार्श्वस्तवः

असमसरणीय जओ निरंतरामोय सुमणमहमहिओ।
भमरहिओ पियसुहओ जय इव संतुब्व पासजिणो ॥ १ ॥
परिवड्ढियभूमियसो अहराई उवचाया यचइकरणे।
वंभपहुतराभूमी पासजिणो जयइ गिम्हु व ॥ २ ॥
पयडियविज्जुज्जोओ विरइय मे हुन्नइ हरिपमोओ।
नंद उदयाभिरामो पहूपासो पावसुव्वचिरं ॥ ३ ॥
उवसंतपंकमग्गं विमलियभुवणासयं अमलविरायं।
सियपक्खाणंदयरं सेवह सरयं य पासजिणं ॥ ४ ॥
परमहिमार्कपिय जय जियभुवणाभोगसुहयर विमोह।
निव्वाणलयपराख्ह जयसि तुमं पास हेमंत ॥ ५ ॥
खवियारविंदवारो सयलागमपत्त गणहरो जयइ।
सिसिरव्व पासनाहो तण,तेयप्पसर, हरियासो ॥ ६ ॥
रिउछक्कवं न गेणं जिणपहसूरीहिं संथुयं पासं।
जो सरइ हुंति सययं छावि रिऊ तस्स अणकूला ॥ ७ ॥

इति षड्ऋतुवर्णनागर्भितं श्रीपार्श्वस्तवनं समाप्तम्।
[अभयसिंह ज्ञान भंडार पो० १६ प्र० २१८ पृ० २२३-२२४]

●

उवसग्गहरस्तोत्रस्य समग्रपादपूर्तिरूपं
(११) पार्श्वजिनस्तोत्रम्

पणमिय सुरवरपूइया, पयकमलं दुरियपुंडरीयपासं।
मंदवस भत्तिभरओ भणामि भवभमणभीमभओ ॥ १ ॥

उवसग्गहरं पासं पणमह नट्ठट्ठकम्मदढपासं ।
रोसरिउभेयपासं विणहियलच्छीतणयवासं ॥ २ ॥
जं जाणइ तेलुक्कं पासं वंदामि कम्मघणमुक्कं ।
जो झाइऊण सुक्कं झाणं पत्तो सिवमलुक्कं ॥ ३ ॥
विसहरविसनिन्नासं रोसगइंदाइभयकयविमाणं ।
मेरुगिरिसन्निकासं पूरिअआसं नमह पासं ॥ ४ ॥
मरगयमणितणुभासं मंगलकल्लाणआवासं ।
टालियभवसंतापं थुणिमो पासं गुणपयासं ॥ ५ ॥
विसहरफुलिंगमंतं सच्चं निच्चं मणे धरिज्जं तं ।
कुणइ विसं उवसंतं भवियाईय मुणह निब्भत्तं ॥ ६ ॥
पयपणयदेवदणुओ कंठे धारेइ जो सया मणुओ ।
सो हवइ विमलतणुओ नामक्खरमंतमवि अणुओ ॥ ७ ॥
तस्सग्गह रोगमारी पराभवं न करेइ दिसभारी ।
जो तुह सुमरणकारी संसारी पत्त भवपारी ॥ ८ ॥
तस्सइ सिज्झइ कामं दुट्ठजरा जंतिउवसामं ।
संथुणइ जोयकामं अभिरामं तुज्झ गुणगामं ॥ ९ ॥
चिट्ठउ दूरे मंतो जो कायइ निच्चमेव एगंतो ।
तुह नाम मसंभंतो सो जाइ लच्छिमइभंतो ॥१०॥
न डराइ दुट्ठभोई तुज्झ पणामो वि बहुफलो होइ ।
तुह नामेण वि जोई न हवइ न पराहवइ कोई ॥११॥
नरतिरिएसु वि जीवा भमंति नरयपयकायरा कीवा ।
सामि जिण समयदीवा जो हि तुह न नामिया गीवा ॥१२॥
रिद्धि आहेवच्चं पावंति न दुक्खदोगच्चं ।
जे तुह आणा सच्चं पालंती भावओ निच्चं ॥१३॥
तुह सम्मत्ते लद्धे जीवेणं हवइ सासए सिद्धे ।
अणुवमतेयसमिद्धे अणंतसुहनाणसंवद्ध ॥१४॥

तुह सुरनरवरमहिए चिंतामणिकप्पपायवब्भहिए ।
पयकमले मलरहिए मइ वसलीव सउं मह सुहिए ॥१५॥
पावंति अविग्घेणं जीवा जइदुट्ठदोसवग्गेणं ।
न मछिज्जतिय सिग्घेणं भवपारं विहितविग्घेण ॥१६॥
सासयसुक्खनिहाणं जीवा अयरामरं ठाणं ।
लब्भंति तुह पयाणं जेसि वट्टइ मणे झाणं ॥१७॥
इय संथुओ महायस कित्ति दित्ति थियं च महपयासं ।
वयणस्य वि जिय पाम निन्नासियदूरिय हयअयस ॥१८॥
कलिमलनयरहिएण भत्तिब्भरनिब्भरेण हियएणं ।
थुणिओ हिय सहिएणं मए तुमं कम्मविहिएणं ॥१९॥
ता विव दिज्जवोहिं उवेमि जं मायमंमि तुह गेहं ।
वय पावस्सय सोहिं कुणसु भवारणभवणोहिं ॥२०॥
अवगय पवयणनिच्चंद भवे भवे पास जिणचंद ।
तुह पयपंकयमयरंद भवभसलत्तं भवउ मह वंद ॥२१॥
सिरिभद्दबाहुरइयस्स जिणपहसूरिहिं मं सपहावं ।
संथवणस्स समग्गस्स विहिय विवुहाणय पयस्स ॥२२॥

इति श्रीउपसर्गहरस्य स्तवन संपूर्णम् ।

[संवत् १७६४ वर्षे मिती श्रावण वदि १३ दिने लिपी कृतं ॥ पं० जीवराजवाचनार्थं ॥श्री:॥ अगरचंदजी लिखित प्रेस कॉपी के आधार से ।

•

(१२) तीर्थमालास्तवः

पउवीसंपि जिणिंदे नमं नमिऊणाइगरणत्थं ।
सत्ताऽत्ताहिम तित्थं नाम संकित्तणं,

सेत्तुंज-रेवय-व्वुय तारण-सच्चउर-थंमणपुरेसु ।
संखेसर-फलवद्धी भरूयच्छाएसु जिणा णमिया ॥ २ ॥
साकेय सत्ततित्थी रयणपुरे नागमहिय धम्मजिणो ।
उज्जेणी खउहंसे चक्केसरि उवरि रिसहजिणो ॥ ३ ॥

सावत्थि संभवपहु कोसंबिपुरि पउमपहसामी ।
सीयलकुंयुप्पभागे पासजिणो कन्नतित्थमि ॥ ४ ॥
पास-सुपासा वाणा-रसीय पाडलपुरम्मि नेमिजिणो ।
चंदापुरीय चंदप्पहो य गंगानईतीरे ॥ ५ ॥

काकंदि पुप्फदंतो कंपिल्लपुरम्मि विमलजिणचंदो ।
वैभार नग य देवा मुणिसुव्वयवद्धमाणाई ॥ ६ ॥
खत्तियकुंडग्गामे पावा नालिंद जंभियग्गामे ।
सुयरगामि अवज्झा विहार नयरीय वीरजिणो ॥ ७ ॥
मिहिलाए मल्लिनमी उसमजिणो पुरिमतालदुग्गम्मि ।
चंपाइ वासुपूज्जो नेमिजिणो सोरियपुरम्मि ॥ ८ ॥

सिरिसंतिकुंथुअरमल्लि-सामिणो गयउरंमिपुरमहिया ।
अहिछत्त महुर पासो बहुविहमाहप्पभावा सो ॥ ९ ॥
भद्दिलपुर सीहपुरछट्ठावय सम्मेयसेलपमुहाइं ।
तित्थाइं बंदियाइं निक्केवलभावजत्ताइं ॥१०॥
एए तित्थविसेसा जिणपहसूरिहिं वंदिया विहिणा ।
सव्वेवि निरुवसग्गं दितु सुहं सयलसंघस्स ॥११॥
जो धारइ रसणग्गे थवणमिणं भावसिद्धिसंजणणं ।
ठाणट्ठिउ वि पावइ सुतित्थजत्ताफलं विउलं ॥१२॥

इति श्री तीर्थमालास्तवनं समाप्तम् ।।छ।।

[साराभाई नवाब सं० १५५८ लि० गुटके से]

(१३) विज्ञप्तिः

सिरिवीरराम देवाहिदेव सव्वनु जणिय जयरिक्ख ।
विन्नवणिज्ज जिणेसर विन्नत्ति मुझ निसुणेसु ॥ १ ॥
सामिय समत्थु जय जंतुसरयनित्थारणे समत्थेण ।
भीमंमि मवारन्ने किमहं वीसारिउ तुमए ॥ २ ॥
पहु कम्म पयावयणा चउगयभयचक्कमज्झयारंमि ।
मही पिडव्व अहं हा बहुल्वीकओ बहुसो ॥ ३ ॥
हा पहु मोहनिवेणं पावेणं पाडिऊण पहुरहिउ ।
अवहरिय सहमावसरि भीमं भवचार ए सित्ते ॥ ४ ॥
वेरासिऊ ण सामिय सया विसयवासिएहि विसएहि ।
तह हं गइरियउ जह अज्जवि पउणो न हा होसि ॥ ५ ॥
हा हा कसायमुहडेहि ताडिउ तह पमायदंडेण ।
तिजयपहु संयमं पि हु जह ठाणं न हु लहेमि ॥ ६ ॥
तुह विरहे तिहुयणगुरु कयत्थिउ कत्थ कत्थ न हुएहिं ।
रागाइवेरिएहि अणेग हा हा भवारन्ने ॥ ७ ॥
तुह सामित्ताभावे जं पहु पीडंति मह महापावा ।
मिच्छा य पमाय रागा य वेरिणो तं न हु विरूवं ॥ ८ ॥
जं पुण तुमंमि मंते सरणागयरक्खणपरमे नाहे ।
याहि ति य हु ता पहु हा सरणं कस्स गच्छामि ॥ ९ ॥
अहवा को तुह दोसो पहुआणाभंगपावणं दट्ठुं ।
दट्ठु रुट्ठंति मम्म पहुमि चित्ते ठिया एए ॥१०॥
तुम्हं पिय किरिभिन्ना मोहाइ अम्नाहा कहन्नाह ।
जो सासणे विवट्टइ तुम हं सं चेव निवट्टंति ॥११॥
अहह अणिज्जेण मए अवज्ज गज्जेण विणयमज्झेण ।
अवमाणिओ तुमंपि हु तिहुयणचिंतामणी देव ॥१२॥

एयावत्तं नीउजेहिं गुरु अंतरंगसत्तूहिं ।
पोसेमि सामि तं चिय हट्ठो मह मूढया महई ॥१३॥
वसिउ सह गेहिं सयं वेसासिओ मुसंति तं चेव ।
स गिहाओ उट्ठिउसिहिं अहह कहं विज्झवेमि अहं ॥१४॥
जं तुण आणा रहिउ विवहाइ सामि वच्छम्मि ।
पंवखाइ विणा मूढो तुमहं उड्डेउ मिच्छामि ॥१५॥
मुंचामि नो पमायं पत्थेमि पुणो सुहं सरूवायं ।
भविसउ मिच्छामि अहं तुयरिओ कोपरणेमि अहं ॥१६॥
इक्कं अकज्जसज्जो अन्नं पुण पुक्करे पहु पुरओ ।
गामं पिपीलिवेउं छट्ठो पगरेमि वाहरणं ॥१७॥
मग्गामि तुम्ह सरणं वसामि मोहस्सरायहाणीए ।
अन्नस्स कडोवडिओ अन्नस्स वहेमि धणमाणं ॥१८॥
मोहाएहिं मुसिओ न नामि देहिं रक्खियं सक्को ।
णीया तुयंगमेव छड्डु विज्जइ कह सरेहिं ॥१९॥
पहुपसभा मय पाणं तुमाउ पत्तं गयं मह पमाया ।
सिरि सुत्तस्स य गच्छइं पहुणा विणयरियं अहवा ॥२०॥
अह किं पयासिएणं तुह भव भावाविभावमाणस्स ।
माया मह गिह थुणणं किरउ किं माउ पुरउवि ॥२१॥
जयवि अहं उल्लंठो तहा वि मनु चक्खिउं तुह न जुत्तं ।
अम्माप्पिउणो किं पु पहु वालं उज्झंति कय हाणं ॥२२॥
वम्मह सिरि यद्धाणं मोहमहाराय पासवद्धाणं ।
रागाइनिरुद्धाणं तं चिय सरणं जए इक्को ॥२३॥
तारियतरूवरहारिणिय अंतरंगारिगहण सेनाउ ।
मुत्तूणं पुमं सामिय सरणं मे नत्थि कोइ जए ॥२४॥
जाणामि सामि धम्मं अमग्गसि सिहरो सहावि अहं ।
वह निअ पहु देस सरणं मज्झ असरणस्स रहियस्स ॥२५॥

जय जिणनाह न हुंतो तुमं असंयंपबंधबोधणियं ।
नो हं कस्स सयासे सरणं भुवणम्मि मग्गंतो ॥२६॥

पहु पाय पोय मुक्को अपारसंसारसायरे घोरे ।
जम्मजरमरणजलचरगमणाहं भवमणं जाओ ॥२७॥

हा नाह तारय एंदाओ भीमभवसमुद्दाओ ।
तारिउं को सक्को मुत्तूण तुमं तिहुयणे वि ॥२८॥

भयवं भवाडवीए मइ भमंतेण भूरि रिद्धीउ ।
लद्धा उ सुरावेणं न चेव तुह दंसणं पत्तो ॥२९॥

किमए तुमं नं दिट्ठो दिट्ठोवि न वंदिओ सहावेण ।
जेणज्जवि जगबंधव बंधस्स न होइ वुच्छेउ ॥३०॥

कप्पद्दुमस्स चिंतामणिस्स लंभाउ अहिय हरिसेण ।
गंयउ दिट्ठोसि तुमं पुव्वज्जियपुन्नजोगेण ॥३१॥

जाए तुह सेवाए सिवगणं सामि तुह पयविउगो ।
अहं न करेमि तयं पहु पुण संसारो अहो कट्ठं ॥३२॥

मन्ने न नाह सुवलं सुवरोवि मुणिंद मुणिय परगरत्था ।
पहु पायाणं पुरउ जह जाए मे गुट्ठंतस्स ॥३३॥

किं बहुणा भणिएणं भवभयभीमो मगामि मगणमिनं ।
काउं दयं दयाउर जत्य तुमं तत्थ मन्नेसु ॥३४॥

इय विन्नत्तो सिरिजिणपहेंण पाठेमि जेण परमपहं ।
तंमि मणोमहल्लीणं निच्चं निय कुणसु यं राया ॥३५॥

कृतिरियं श्रीजिनप्रभसूरीणां विज्ञप्तिका समाप्ता ।

[लि० प्र० "संवत् १५९६ वर्षे फागुन सुदि ५ बुधवासरे । श्रीमरुमण्डल-कपुरनरे । श्रीदण्डागण्डलराजराजः सुलिंत्रानिश्वर । प्रभुविजये राज्ये । लिखितं श्रीमत्खरतरगच्छे श्रीजिनसिंहसूरि । श्रीजिनप्रभसूरिविजये । श्री-जिनराजसूरिशिष्यहेमकुंजरमुनिना । श्रीमामान्वये श्रीभंडारीगोत्रे सा. जिनदेव तत्पुत्र साह जाल्हा पुत्र पवित्रचतुरसिंह साह श्रीजसमंसिंह । तत्पात्मज परमश्रावक सकलकलाशोभितवंशजन चतुर्दशविद्यानिधान । उपाद-विद्याप्रधान । परउपकारसार मूर्ति निजवंशावतंसोद्धारौधि । श्रीपार्श्वनाथ श्रीधीरोद्धीनयमनेन निजपठनार्थं लिखापितं । श्रु । कल्याणमस्तु ।

(१४) सुधर्मस्वामि-स्तवनम्

(बहुविधच्छन्दोजातियुक्तम्)

आगमत्रिपथगा हिमवन्तं संसृतेर्नतसमूहभवन्तम् ।
नौ समानमभिनौमि सुधर्म-स्वामिनं महति मोहपयोधौ ॥ १ ॥
स धर्मिलो नंदितधर्मिलोकः सा भद्रिला भद्रनिधिर्मुदे नः ।
त्वां सद्गुरोऽजीजनतां नतांह्रि सुरासुरैरादरभासुरैर्यौ ॥ २ ॥
प्रादुर्भावक-दिव्यपंचकचमत्कुर्वाण सच्चेतसो,
वीरस्यादिमपारणेन बहुलाभिख्य द्विजाद्भाविना ।
श्रीकोल्लाकनिवेशनं कथमपि ज्ञात्वेव पावित्र्यवद्,
तत् स्वामिन्निजजन्मनोऽधिकरणीभावं भवान्नीतवान् ॥ ३ ॥
इह भवत्यसुमान् खलु यादृशः
परभवेऽपि स तादृगुतान्यथा ।
इति जिनः श्रुतिवाक्यविचारणा-
परशुना तव संशयमच्छिदत् ॥ ४ ॥
सा पूर्नन्दतु मध्यमपापा
यत्र जिनो महसेनवने त्वाम् ।
माधवधवलवलिन्दमतिथ्यां
तथ्यां संयमसंपदमनयत् ॥ ५ ॥
बोधः प्रव्रज्यामान्तिपत्यञ्चशत्या
गाणेश्वर्यश्रीः सूत्रणं द्वादशाङ्ग्याः ।
सद्योऽभूद्यत्रं भाग्यसामग्र्यमग्र्यं
त्वादृक् कोऽन्यत्र क्वापि किं देवुतीति ॥ ६ ॥
हलास्त्र हर्यरिधरवानमन्तराद्य-
नुत्तरान्तगुरतृतीयवर्ष्मणाम् ।
यथोत्तरं विलसति रूपवैभवं
ततोऽधिकं गणधरदेव तत्तव ॥ ७ ॥

त्वद्दृष्ट्यैव द्वादशाङ्गी युगेऽस्मिन्
स्याद्वादेन ग्रास्यमाना कुतीर्थ्यान् ।
त्रैलोक्यार्च्या दीप्यते दीप्रदीप-
प्रख्या मोहध्वान्तविध्वंसनेऽसौ ॥ ८ ॥

यथा पादन्यासे दुःप्रसहमुनिनाथः किल युग-
प्रधानानां भावी अजनिष तथा धस्त्वमुदधी ।
गुणग्रामारामे विचतुरसहस्रद्वयमिता
स्तुते त्वय्येकस्मिन्नपि त इव सर्वेपि विनुताः ॥ ९ ॥

भाति ऋषिचक्रवर्तिन् षड्व्रत षट्खण्डभरतनेतुस्ते ।
निधिनवकं नवतत्त्वी रत्नानि चतुर्दशापि पूर्वाणि ॥ १० ॥

पुलाकलब्धिः परमावधिर्मनः-
पर्यायमाहारक • केवलश्रियौ ।
श्रेण्योर्द्वयं निर्वृतिसंयमत्रिके
कल्पश्च जैनोयमनुत्वपारमन् ॥ ११ ॥

तमपश्चिमकेवलिनं जम्बूनामानमानतमुनीन्द्रैः ।
स्वपदे न्यवीविशस्त्वं न परिष्ठकयति हि पात्रं कः ॥ १२ ॥
युग्मम् ।

जैनस्तेऽपि तथास्थेयं वेदे कास्वपि यस्त्वया ।
'शतायुर्वै पुरुष' इत्युक्तिः सत्यापिता प्रभो ! ॥ १३ ॥

पञ्चाशतं तव समाः सदने निवासः
छद्मस्थता वरद षट्गुणसप्तवर्षान् ।
अब्दानि कैवलिविहारयतस्तथाष्टौ
सर्वायुरित्यभगवच्छरदं (दा) शतं ते ॥ १४ ॥

अनुगमजत फाल्गुनीपूतराग - प्रधानद्विजस्थापनीपार्जनिर्वेदनादना -
भिजनजलधिचन्द्रमाःचण्डमार्तण्डतुल्यप्रतापाभिभूताभिजातप्रभः ।
क्षपितवति वर्द्धमाने जिनेन्द्रे शिवर्धीवरारम्भणोत्ता च यः पादयो-
गयमनगुपगम्य वैभारशैले द्विपःश्रीमवापाप्तवर्गं स श्रीगणीन्द्रान् ॥१५॥

अपरेऽवसानसमये निरन्वयाः
सुसदृग् गुणा अपि गणाधिपा दश ।
न्यसृजन् गणास्त्वयि यथायथं विभो !
सरितां व्रजा इव पयोनिधावपः ॥ १६ ॥

भगवन् ! गृहरत्नमेककस्त्वं
गणभृद् द्वीपपरम्परायतोऽभूत् ।
अपरे गणधारिणस्तु सूर्या-
नयदन्यत्र महः ससर्प तेषाम् ॥ १७ ॥

उन्नतिमन्तो विस्तृतशाखाः
सुमनःसेव्या अविकलफलदाः ।
येऽत्रक्षेत्रे सम्प्रति गच्छा —
स्तेषां मूलं त्वमसि वतैकम् ॥१८॥

ध्यायति प्रतिदिनं सपर्पदं
त्वां य उज्ज्वलसुवर्णरोचिषि ।
तस्य मंक्तु (मङ्क्षु) गणसंपदेधते
लब्धिभिः स सकलाभिरीयते ॥१९॥

धर्मं न्यास्ति त्रियुक्त त्रिगुणदशममायुक् सहस्रैकविंश-
त्यब्दे स्थायी यदीयो जगति सुरनृणां माननीयोऽन्ववायः ।
धीरः श्रीवीरपट्टोदयगिरिशिखरोत्तसङ्गश्रृङ्गारभानु—
र्शर्मं स श्रीसुधर्मा वितरतु गणभृत् पञ्चमः पञ्चमं नः ॥२०॥

इति पदलुठत्सौधर्मेन्द्रः सुधर्मगणाधिपः
कृतगुणकणस्तोमः स्तोत्रं कुवादिगजव्यये ।
उपचितयतु दोमस्येमश्रियं मम निर्मम
प्रभुरभजतो दूरस्य स्वं जिनप्रभवाप्त्वन ॥२१॥

इति श्रीसुधर्मस्वामिस्तवनम् ॥छ॥

(१५) ४५ नामगर्भित-आगमस्तवनम्

(आर्याच्छन्दः)

सिरिवीरजिणं सुयरय-रोहणं पणमिऊण भत्तीए।
कित्तेमि तप्पणीयं सिद्धंतमहं जगपईवं ॥ १ ॥
पढमं आयारंगं सूयडं ठावणंग समवायं।
भगवइ अंगं नाया-धम्मकहो-वासगदसा य ॥ २ ॥
अंतगडदसा-अणुत्तर-ववाइदसा वागरण नामं च।
सुहदुहविवागसुइं दिट्ठीवायं च अंगाणि ॥ ३ ॥
ओवाई रायपसेणि तह जीवभिगम पन्नवणा।
जंबूपन्नत्ती चंद-सूरपन्नत्ति नामाओ ॥ ४ ॥
निरयावलिया कप्पा-वयंसि पुप्फीय पुप्फचूलीय।
वण्हीदसाओ एए बारसुवंगाणि नामाणि ॥ ५ ॥
दसवेयालिय तह ओह-पिंडनिज्जुत्ति उत्तरज्झयणा।
चत्तारि मूलगंथा नंदी अणुओगदाराइं ॥ ६ ॥
चउसरण चंदविज्जग आउर-महपच्चक्खाणं च।
भत्तपरिन्ना तंदुल-वेयालियं च गणिविज्जा ॥ ७ ॥
मरणसमाही देविंदत्थओ य संथार दस पयन्ना य।
वीरत्थय गच्छायार पमुह पउदसगसहस्सपुरा ॥ ८ ॥

[श्रीपुण्यविजयजी संग्रह, नं. २३४८ पत्र ५, साइज ११॥" × ४॥" शुद्ध, १९वीं शती]

१. स्वागता, २. इन्द्रवज्रा, ३. शार्दूलविक्रीडित ४. द्रुतविलम्बित, ५. उपचित्रा, ६. वैतालीयो, ७. रुचिरा, ८. शालिनी, ९. शिखरिणी १०. गीति, ११. इन्द्रवंशा, १२. आर्या, १३. अनुष्टुप्; १४. वसन्ततिलका, १५. चण्डवृष्टिदण्डक, १६. मंजुभाषिणी, १७. मालभारिणी, १८. अपराजिता; १९. रथोद्धता, २०. नागरा, २१. हरिणी।

निसीह तह कप्प-ववहार पंचकप्पो दसासुयक्खंधो ।
तह महानिसीह एए सत्येया जीयकप्पो य ॥ ९ ॥
पंचपरमिट्ठसामाइयाइं आवस्सयं च छब्भेयं ।
निज्जुत्ति-चुन्नि-वित्ति विसेस आवस्सयाइं जुयं ॥१०॥
इय जिणपहेण गुरुणा रइया सिद्धंतमालनामेण ।
पणयालीसपमाणं णिय-णियणामेण णायव्वा ॥११॥

इति ४५ आगमस्तवनम् ॥
अभय जैन ग्रन्थालय प्र० सं० ९५५० पत्र १ साइज १०' × ४'
ले० प्र० "पं० कनकसोमेन लिखितं" श्री० भरहो पठनार्थं"
अनुमान १७ वीं शती]

●

(१६) जिनप्रभ-रचिता
परमतत्त्वावबोधद्वात्रिंशिका

धर्माधर्मान्तरं मत्वा, जीवाजीवादितत्त्ववित् ।
ज्ञास्यसि त्वं यदात्मानं तदा ते परमं सुखम् ॥ १ ॥
यदा हिंसां परित्यज्य कृपालुस्त्वं भविष्यसि ।
मैत्र्यादिभावना भव्य-स्तदा ते परमं सुखम् ॥ २ ॥
न भाषसे मृषा भाषां विश्वविश्वासघातिनीम् ।
सत्यं वक्ष्यसि सौहित्यं तदा ते परमं सुखम् ॥ ३ ॥
परपीडां परिज्ञाय यदाऽदत्तं न लास्यसि ।
परार्थं हि परार्थाय तदा ते परमं सुखम् ॥ ४ ॥
यदा सद्धर्मगमनान्मैथुनात्त्वं विरज्यसि ।
ब्रह्मव्रतरतो नित्यं तदा ते परमं सुखम् ॥ ५ ॥
यदा मूर्च्छां विधायोच्चै-र्धनधान्यादिवस्तुषु ।
परिग्रहग्रहान्मुक्त-स्तदा ते परमं सुखम् ॥ ६ ॥

स्वरे श्रव्ये च वीणादौ खरोष्ट्रीणां च दुःश्रवे ।
यदा सममनोवृत्तिस्तदा ते परमं सुखम् ॥७॥
दृष्टेऽनिष्टे यदा दृष्टे वस्तुनित्यस्तदास्तधीः ।
प्रीत्यप्रीतिविमुक्तोसि तदा ते परमं सुखम् ॥८॥
घ्राणदेशमनुप्राप्ते यदा गन्धे शुभाशुभे ।
रागद्वेषौ न चेत्तत्र तदा ते परमं सुखम् ॥९॥
यदा मनोज्ञमाहारं यद्वा तस्य विलक्षणम् ।
समासाद्य तयोः साम्यं तदा ते परमं सुखम् ॥१०॥
सुखदुःखात्मके स्पर्शे समायाते समो यदा ।
भविष्यसि भवाभावी तदा ते परमं सुखम् ॥११॥
मुक्त्वा क्रोधं विरोधं च सर्वसंतापकारकम् ।
यदा शमसुधासिक्तस्तदा ते परमं सुखम् ॥१२॥
मृदुत्वेनैव मानाद्रिं यदा चूर्णी करिष्यसि ।
मत्वा तृणमिवात्मानं तदा ते परमं सुखम् ॥१३॥
यदा मायामिमां मुक्त्वा परवंचनतापराम् ।
विधास्यस्यार्जवं यर्यं तदा ते परमं सुखम् ॥१४॥
यदा निरीहतानावा लोभाम्भोधिं तरिष्यसि ।
सन्तोषपोषपुष्टः सन् तदा ते परमं सुखम् ॥१५॥
कषायविषयाक्रान्तं भ्रमस्त्वां (?) तमनारतम् ।
यदात्मारामविश्रान्तं तदा ते परमं सुखम् ॥१६॥
यदा गर्वान्वितां व्यर्थां विमुच्य विकथात्मकाम् ।
वचोगुप्त्याप गुप्तोसि तदा ते परमं सुखम् ॥१७॥
अंगोपांगानि संकोच्य कूर्मवत्संवृतेन्द्रियः ।
यदा त्वं कायगुप्तोसि तदा ते परमं सुखम् ॥१८॥
निरसिष्यसि मनंपौरं रागोरगमहाविषम् ।
यदा सदागमास्वादात्तदा ते परमं सुखम् ॥१९॥

यदा कृपा कृपाणेन रागद्वेषौ विनापिहि।
हनिष्यसि सुखान्वेषी तदा ते परमं सुखम् ॥२०॥
यदा मोहमयीनिद्रां ध्रुवं विद्रावयिष्यसि।
अस्ततंद्रः सदाभद्र-स्तदा ते परमं सुखम् ॥२१॥
प्रमादं परिहृत्याशु यदा सद्धर्मकर्मणि।
समुद्यतोसि निश्शंक-स्तदा ते परमं सुखम् ॥२२॥
यदा कामं प्रकामं तु निराकृत्य विवेकतः।
शुद्धध्यानधनोपित्वं तदा ते परमं सुखम् ॥२३॥
यदा हर्षं विषादं च करिष्यसि कदापि न।
सुखे दुःखे समायाते तदा ते परमं सुखम् ॥२४॥
यदा मित्रेऽथवामित्रे स्तुति-निन्दा विधातरि।
समानं मानसं तत्र तदा ते परमं सुखम् ॥२५॥
लाभाऽलाभे सुखे दुःखे जीविते मरणे तथा।
औदासीन्यं यदा ते स्या-त्तदा ते परमं सुखम् ॥२६॥
यदा यास्यसि निःकर्मा साधुधर्मधुरीणताम्।
निर्वाणपथसंलीन-स्तदा ते परमं सुखम् ॥२७॥
निर्ममो निरहंकारो निराकारं यदा स्वयम्।
आत्मानं ध्यास्यसि ध्यायं तदा ते परमं सुखम् ॥२८॥
निश्शेषदोषमोक्षाय यदिष्यसि यदा सदा।
परात्मगुणतां यात-स्तदा ते परमं सुखम् ॥२९॥
योक्ष्यसे सद्गुणग्रामैरात्मानं परमात्मना।
यदा त्वं तत्स्वरूपः सं-स्तदा ते परमं सुखम् ॥३०॥
यदात्मज्ञानमग्नस्त्वः परमानंदनन्दितः।
पुण्यपापविनिर्मुक्त- स्तदा ते परमं सुखम् ॥३१॥
आत्म-पद्मवनं ज्ञान-भानुना योध्य लप्स्यसे।
यदा जिनप्रभां चर्या तदा ते परमं सुखम् ॥३२॥

इति श्रीजिनप्रभसूरिकृता
॥ परमतत्त्वावबोधद्वात्रिंशिका ॥

शास्त्रसंग्रह छाणी की प्रति से

(१७) हीयाली

अकुलु अमूलुअ जोणी संभवु निर्मल वण्णु सो दीसइ
हरिहर बंभु न सिद्धु नु गोरसु इंदु चंदु न सलीसइ ॥ १ ॥
आ आ बूझहु पंडित विचारू। संनु निरंजणु घानु जु
भणियइ,तहि निवसइ निरधारु ॥आंचली॥
फिरइ न मरइ न जीउ धरइ सो न पियइ नीक न जेमइं ।
हासण कर करिस विहूणउं धरण न आई केमई ॥ २ ॥
कदा कालि दृष्टि गोचरि आवइ ध्यानु जुगति नहु पारइ
अकलु सकलु अति रूपि मनोहरु देखत जन मुहुकारइ ॥ ३ ॥
इसउ पुरिपु तउ परओखलि लसिमइ जउगुरु करइ पसाउ ।
परमारथ चिति इकु पर जाणइ जिणप्रभसूरि मुणिराउ ॥ ४ ॥

●

हीयाली

पहाड़िया रागः

धारि चलण चउ सवण चउरभुज बंधण करइ पचारि
बूझहु सकल सयाणा पंडित कागु पहुतं गा गारी ॥ १ ॥
गंनेहा चे कारणिगारे अति गाहइ अति लीगी
हुंकारइ पर हुइ न भुयंगी धारि

●

(१८) कालचक्रकुलकम्

अवसप्पिणि उसप्पिणि भेएणं होइ दुविहउ कालो ।
सागरकोडाकोडीउ वीसा एगो समप्पेइ ॥ १ ॥
सुसमसुसमाइ सुसमा सुसमदुसमा य दुसमसुसमा य ।
पंचमिया पुन दूसम छट्ट दूसमदूसमा छट्टी ॥ २ ॥

तत्थ चत्तारिसागर-कोडाकोडीउ सुसमसुसमा य ।
तिन्नि सुसमाइ नामं दुन्नेवय सुसमदुसमाए ॥ ३ ॥
दूसमसुसमा एगा-कोडाकोडींदूचत्तसहसूणा ।
इगवीसवरिस सहसा दूसहं तह दूसमाणं तु ॥ ४ ॥
इय दसकोडाकोडी अमराणवसप्पिउपरिमाणं ।
एमेवोसप्पिणि पुण दुण्हं पि हु वीसाकोडीउ ॥ ५ ॥
अवसप्पिणि छ अरया एमेवोसप्पिणं ईव चरीया ।
एवं वारस अरए विवट्टइ कालचक्कमिणं ॥ ६ ॥
पढम दु तिरयाणं ति-दु-इग पलिउव आउयं कमसो ।
ति दु इग कोसुच्चत्तं ति दु इग दिवसाण आहारो ॥ ७ ॥
कप्पदुमफलाणं सत्तठ्ठवगु इगुणसीई ७९ बालंमि ।
सोलसवग्गद्धं पिट्ठींवसा मुणेयव्वा ॥ ८ ॥
मज्जंकपालपल्लंक तूरजोइयफुल्लभोयणयं ।
भूसणगेहागार वत्तंगा दसविहा रुक्खा ॥ ९ ॥
चुलसीइ पुव्वलक्खा तिवरसद्धद्धमाससेसाओ ।
तइयर भरहपिया जाउ उसहो भरहवासे ॥१०॥
तेवीसं तित्थयरा अजियाईया चउत्थ अरयंमि ।
तह बारस ए चक्की हरि-बल-पडिवासदेव नव ॥११॥
चउत्थारय धुरि पणसय धणूसया पुव्वकोडियरिसाओ ।
अंते य सत्ताहत्थी वरग सयाऊ नरा हुंति ॥१२॥
इगुणनवइ पक्खंसो चउत्थ अरयम्मि निव्वुओ वीरो ।
इगुणनवइपक्खंते नवमे अरये पउमजम्मो ॥१३॥
चुलसीयं च सहस्सा वासासत्तेय पंचमासा य ।
वीरमहापउमाणं अंतरमयं मुणेयव्वं ॥१४॥
वीरजिणे सिद्धिगए धारसवरसम्मि गोयमो सिद्धो ।
तह वीराउ सुहम्मो वीसहिं वरसेहिं सिद्धिगओ ॥१५॥

घोऽमुहमंसभक्खग कसिणा चिविडा जंति तिरिनरए।
छट्ठंते इगहत्था विलवासी सोलवरिसाउ ॥२९॥
नव नव दु तडासन्ने रहचक्कवाहाण गंगसिंधूणं।
सव्वे विलवाहभरि वेयद्धे आरओ पुरओ ॥३०॥
छव्वरिस गब्भधरित्थी छ सत्त अरए तहेव अट्ठमए।
पुक्खलसंवट्टयखीर अमियरसयं च मेह हमे ॥३१॥
इक्कित्तको सत्तदिणे वरिसेहि तत्थहि भुई पुढवें।
पढमो बीओ धन्नं तेहं तइउ चउत्थो य ॥३२॥
पोसेइ उ सहिओ तह रस दव्वाइं पंचमं मेहो।
अह नवमे अरयम्मि य सलाण पुरिसाण ते वट्ठी ॥३३॥
अबुहजणवोहणत्थं(तहा अ) अप्पणो समासेण।
कालचक्कस्स गाहा जिणपहसूरीहिं संठविया ॥३४॥
इति कालचक्ककुलकं समाप्तं
[ले० १७वीं० 'सुखनिखान पठनार्थम्' अभयजैन ग्रन्थालय
प्रति २१८४]

•

श्री जिनप्रभसूरि परंपरा गीतम्

खरतर गच्छि वर्द्धमान-सूरि, जिणेसर सूरि गुरो।
अभयदेव सूरि जिणवलह सूरि जिणदत्त जुगपवरो ॥ १ ॥
सुगुरु परंपर थुणहु तुम्हि, भवियहु भत्ति भरि।
सिद्धि रमणि जिम वरई सयंवर नव नविय परि ॥ आंचली ॥
जिणचन्दसूरि जिणपतिसूरि, जिणेसर गुणनिधानु।
तदनुक्रमि उपनले सुगुरु, जिणसिंघसूरिजुगप्रधानु ॥ २ ॥
तासु पाटि उदयगिरि उदयले, जिनप्रभ सूरि भाणु।
भविय कमल पडिवोहवु, मिच्छत तिमिर हरणु ॥ ३ ॥

रावमहंमद साहि जिणि, निय गुणि रंजियऊं ।
मेड मंडलि ढिल्लिय पुरि, जिण धरमु प्रकट्ठ किऊं ॥ ४ ॥
तसु गछ धुर धरणु भयलि, जिणदेवसूरि सूरिराऊं ।
तिणि थापिउ जिणमेरसूरि, नमहु जसु मनइ राऊ ॥ ५ ॥
गीतु पवीतु जो गायए, सुगुरु—परंपरह ।
सयल समीह सिझहि, पूहविहि तसु नरह ॥ ६ ॥

जिनप्रभसूरीणां गीतम्

के सलहउ ढीली नयरहो, के वरनउ वखाणु ए ।
जिनप्रभसूरि जग सलहीजइ, जिणि रंजिउ सुरताणु ॥ १ ॥
चलु सखि वंदण जाह गुण गरुयउ जिनप्रभसूरि ।
रलियइ तसु गुण गाहि राय-रंजणु पंडित-तिलउ ॥ आंचली ॥
आगमु सिद्धंतु पुराणु वखाणिइ, पडिबोहइ सब लोइ ए ।
जिणप्रभसूरि गुरु सारिखउ हो विरला दिसउ कोई ए ॥ २ ॥
आठाही आठमिहि चउथी, तेडावइ सुरिताणु ए ।
प्रहु मिलु मुख जिनप्रभसूरि चलियउ, जिमि ससि इंदुविमाणिए ॥३॥
"असपति" "कुतुबदीनु" मनि रंजिउ, दीठेल जिनप्रभसूरी ए ।
एकंतिहि मन सासउ पूछइ, राय मनोरह पूरी ए ॥ ४ ॥
गामस्रिय पटोला गज धन, सूंपउ देइ सुरिताणु ए ।
सूरि जिनप्रभगुरु कंपि नई छइ, तिहुअणि अमलिय माणु ए ॥ ५ ॥
बाजे दमामा अरु नीसाणा, गहिरा बाजइ तूरा ए ।
इन परि जिनप्रभसूरि गुरु आवइ, संघ मनोरह पूरा ए ॥ ६ ॥

श्री जिनप्रभसूरि गीत

उदय कि खरतर गच्छ गयणि, अभिनवउ सहस करो ।
सिरि जिणप्रभसूरि गणहरो, जंगम कल्पतरो ॥ १ ॥
वंदहु भविय जन जिनशासन, घट भव मणंशो ।
छत्रीस गुण संजुतौ चारित्र सयपत्र कमल सोहो ॥ आंचली ॥

तेर पंचासियइ पोस सुदि आठमि, सणिहिं वारो।
भेटिउ असपते "महमदो" सुगुरि ढीलिय नयरे ॥ २ ॥

आपुणु पास बइसारए, नमिवि आदरि नरिन्दो।
अभिनव कवितु बखाणिवि, राय रज्जइ मुणिंदो ॥ ३ ॥
हरखितु देइ राय गय तुरय, घण कणय देस गामो।
भणइ अनेवि जे चाह हो, ते तुह दिउ इमो ॥ ४ ॥

लेइ णहु किंपि जिणप्रभसूरि, मुणिवरो अतिनिरीहो।
श्रीमुखि सलहिउ पातसाहि, विविह परि मुणिसीहो ॥ ५ ॥
पूजिवि सुगुरु वस्त्रादि कहिं, करिवि सहिथि निसाणु।
देइ फुरमाणु अनु कारवाइ, नव वसति राय सुजाणु ॥ ६ ॥
पाट हथि चाडिवि जुगपवरु, जिणदेवसूरि समेतो।
मोकलइ राउ पोसालहं वहु, मलिक परिकरीतो ॥ ७ ॥

वाजहि पंच सबुद गहिर सरि, नाचहि तरुण नारि।
इंदु जम गइंद सहितु, गुरु आवइ वसतिहिं मझारे ॥ ८ ॥
धम्म धुर धवल संघवइ सघल, जाचक जन दिति दानु।
संघ संजूत वहु भगति भरि, नमहिं गुरु गुणनिधानु ॥ ९ ॥
सानिधि पउमिणि-देवि रम, जगि जुग जयवन्तो।
नंदउ जिणप्रभसूरि गुरु, संजम सिरि तणउ कंतो ॥१०॥

जिनदेवसूरि गीत

निरुपम गुण गण मणि निधानु संजमि प्रधानु।
सुगुरु जिणप्रभसूरि पट उदयगिरि उदयले नवल भाणु ॥ १ ॥
वंदहु भविय हो सुगुरु जिणदेवसूरि ढिल्लिय वर नयरि देसणउ।
अमियरसि वरिसए मुणिवरु जणु ऊनविउ ॥ आंचली ॥
जेहिं कन्नाणापुर मंडणु सामिउ वीर जिणु।
महमद राइ समप्पिउ थापिउ सुभलगनि सुभदिवा ॥ २ ॥

नाणि विन्नाणी कला कुसले विद्या वलि अमेउ ।
लक्षण छंद नाटक प्रमाण वक्खाणए आगमिगुण अमेउ ॥ ३ ॥
धनु कुलधर कुन्त्रि उपनं इहु मुणिरयणु ।
धणु वीरिणि रमणि चुडामणि जिणि गुरु उरि धरिउ ॥ ४ ॥
धणु जिणसिंघसूरि दिखियाउ धनु चन्द्र गछु ।
धणु जिणप्रभसूरि निज गुरु जिणि निज पाटिहि थापियउ ॥ ५ ॥
हलि सखे 'हाणउ सोहावणिय रलियावणिय ।
देसण जिणदेवसूरि मुणिरायहं जाणउ नित सुणउ ॥ ६ ॥
महि मंडलि धरमु समुधरए जिणसासणिहि ।
अणुदिण प्रभावन करइ गणधरो, अवयरिउ वरसिरिधाम ॥ ७ ॥
वादिय मयगल-दलणसीहो विमल सीलधरु ।
छत्तीस गुणधर गुण कलिउ निरु जयउ जिणदेवसूरि गुरु ॥ ८ ॥

"इति श्रीआचार्याणां गीतपदानि"